राम कृष्ण- विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदीयुगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
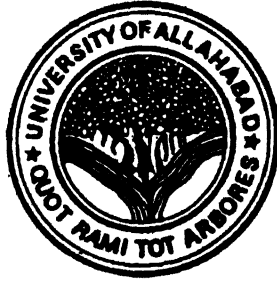
निर्देशिका :
डॉ० (श्रीमती) शैल पाण्डेय
रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्ता :
गिरिजा प्रसाद मिश्र
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

भूमिका

ससारके कोटि-कोटि मनुष्यों के मध्य, समय-सयम पर कुछ ऐसे दैवी सम्पदा से युक्त सत्पुरुषो का आविर्भाव होता है, जिनकी आभा से सम्पूर्ण मानव समाज देदीप्यमान हो उठता है । उनके नाम से ही उस देशकाल परिस्थिति को जाना और पहचाना जाता है। जिस प्रकार रामायण-काल को राम के नाम से एव महाभारत काल को कृष्ण के नाम से जाना जाता है, उसीप्रकार यदि हम वर्ममान काल-खण्ड को परमहस रामकृष्ण देव एवं उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के नाम से अभिहित करे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वामी विवेकानन्द को विश्व-कल्याण की औदार्यपूर्ण भावना के कारण ही 'युग-नायक', युग - द्रष्टा; 'विश्वबन्धु','विश्व-वरेष्य' आदि उपाधियो से अलंकृत किया गया है । मानव-मात्र के प्रति कल्याण की भावना के कारण ही रामकृष्ष देव एवं स्वामी विवेकानन्द अपने महाप्रयाण के शताधिक वर्षो के बाद भी आज अनेक लोगो की प्रेरण के स्रोत बने हुये हैं ।

मेरा यह परम सौभाग्य रहा है कि मेरा जन्म इन महापुरुषों से प्रभावित एक परिवार मे हुआ। मेरे पिताजी मास्टर महेन्द्र कृत रामकृष्ण वचनामृत के तीनों भागों का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात उसके मूल - तत्व को सूत्र रूप में अपनी निजी डायरी में लिपिबद्ध किये हैं । रामकृष्ण के धर्म तथा आध्यात्म के गूढ़ तत्वो को छोटी-छोटी कहानियों एवं दृष्टान्तों के द्वारा सरलतम् रूप में व्यक्त करने की क्षमता ने उन्हे अत्यधिक प्रभावित किया और समय - समय पर वे उनके उद्धरणों एव दृष्टातों की चर्चा- परिचर्चा किया करते हैं । रामकृष्ण देव एव माँ शारदा के त्याग एवं तपोमय जीवन की कहानियॉ पिता जी के द्वारा मैं बचपन से ही सुनता चला आ रहा हूँ, जिससे इन महापुरुषो के व्यक्तित्व का प्रभाव स्वाभाविक रूप से मेरे ऊपर पड़ा ।

प्रयाग क्षेत्र में संगम तट पर, माघ माह में प्रतिवर्ष धार्मिक मेले में, लगने वाला रामकृष्ण मिशन का शिविर मेरे आकर्षण का केन्द्र रहा है । यहॉं आकर रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के चित्रपरक जीवनी देखने, इनके सम्बन्ध में मिशन के संन्यासियों के विचार सुनने एवं इनसे सम्बन्धित सत्साहित्य पढ़ने से मेरा ज्ञान इस सम्बन्ध में और भी बढ़ा । कालान्तर में और भी

बहुत कुछ जानने की इच्छा से मैं इलाहाबाद स्थित 'रामकृष्ण मिशन' मे आने - जाने लगा।

रामकृष्ण देव की निष्कपटता, सरलता एव भावप्रवणता ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। रामकृष्ष देव के जीवन एव उनकी भावधारा से अवगत होने के पश्चात, मैने पाया कि गीता मे उल्लिखित ज्ञान, भक्ति एवं कर्म की तीनो धारायें, इनमें एकाकार होकर जीवन्त हो उठी हैं। जिस प्रकार गीता मे किसी मत, पंथ और सम्प्रदाय की स्थापना का आग्रह अथवा विरोध नहीं किया गया है, उसी प्रकार रामकृष्ष देव ने भी कभी किसी मत पंथ या सम्प्रदाय की स्थापना अथवा विरोध नहीं किया। यही कारण है कि इन्हे हम ज्ञान,भक्ति एवं निष्काम कर्म के जिस भाव से देखते है, हम उन्हे उसी रूप में पाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द बचपन से ही ध्यानसिद्ध, तीक्ष्ण मेधा - शक्ति से युक्त, तथा दीन - दुःखी के प्रति दया का भाव रखते थे। इनके अन्दर प्रबल तार्किक क्षमता होते के कारण ये किसी भी बात को तर्क की कसौटी पर कसे बिना मानने को तैयार नहीं होते थे। ईश्वर एव उसके गूढ रहस्यों को प्रति इनके हृदय में तीव्र जिज्ञासा थी। इसी क्रम में विवेकानन्द का मिलन रामकृष्ष देव से होता है। यहॉ आकर उद्धता, तार्किकता ने, सरलता के समक्ष आत्म - समर्पण कर दिया और उन्होंने इन्हें साधना की आग में तपाकर ऐसा कुन्दन बना दिया, जिसकी चमक से सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो उठा। विवेकानन्द को हम धार्मिक दृष्टि से देखें तो इनसे बडा कोई धर्मपरायण और धर्मवेत्ता नही है, राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय तो इनसे बड़ा कोई देशभक्त नहीं है। सामाजिक दृष्टि से देखें तो इनसे बडा कोई समाज सेवक नहीं दीखता और आर्थिक उत्थान एवं उसकी उन्नति के लिये किये गये प्रयासों को देखने पर इनसे बड़ा कोई अर्थशास्त्री भी नही दीखता। गुरू ओर शिष्य की इन भावनाओं का समाज पर स्वाभाविक रूप से व्यापक प्रभाव पड़ा।

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सामाजिक परिवर्तन साहित्य को, एव साहित्यिक गतिविधियॉ समाज को पभावित करती हैं। रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द की भावधारा से युगीन एव परवर्ती साहित्य निःसन्देह व्यापक रूप में प्रभावित हुआ है, किन्तु दुःख और आश्चर्य का विषय है कि हिन्दी साहित्य मे पड़ने वाले इनके प्रभाव का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं किया गया है। हिन्दी साहित्य में इन महापुरुषों के प्रभाव व प्रदेय को

जानने- समझने के लिए बहुत कार्य होना शेष है साहित्य पर पड़ने वाले, इनके प्रभाव का उचित मूल्याकन न होने के कारण मेरी इच्छा इस सम्बन्ध में कार्य करने के लिये जागृति हुई, परन्तु इतने बड़े महापुरुष के सम्बन्ध मे अपनी अल्पज्ञता के कारण लेखनी चलाने का साहस नहीं कर पा रहा था । इस विषय पर कुछ करने की इच्छा से, दिशा - निर्देश प्राप्त करने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की रीडर डा० (श्रीमती) शैल पाण्डेय से जब मैं मिला तो उन्होने मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए उत्साहित एवं प्रेरित किया और उन्हीं के परामर्श से शोध-कार्य का विषय- 'द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य' पर केन्द्रित करते हुए उसका नाम'- रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' रखते हुए कार्य प्रारम्भ किया ।

रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा के द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव को व्यक्त करने के लिए विषय को पॉच अध्यायों में बाँटा गया है - प्रथम अध्याय- 'रामकृष्ण- विवेकानन्द जीवन वैशिष्ट्य' को दो उपभागों मे विभाजित किया गया है । क- 'रामकृष्ण देव' मे रामकृष्ण देव के जीवन के अलौकिक पक्षो को छोडकर, उनका लौकिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। इस भाग मे उनके बाल्यकाल के मानवीय गुणों से सम्बन्धित पक्षों तथा प्रेम करुणा, दया, सरलता, भावविह्वलता, निश्छलता आदि के साथ-साथ ईश्वर - प्राप्ति की उनकी उत्कट अभिलाषा का दिग्दर्शन करते हुये कालान्तर में उनके द्वारा किये गये विविध धर्मों की साधना आदि का वर्णन किया गया है । भाग ख- 'स्वामी विवेकानन्द' में विवेकानन्द के जीवन के आरम्भिक काल से ही उनमें विद्यमान - साहस, निर्भीकता, दयालुता एवं विद्वता का वर्णन करते हुए, धर्म को तत्व से जानने की उत्कट इच्छा के क्रम में रामकृष्ण देव से उनका मिलन तथा कालान्तर में शिकागो के धर्म महा सम्मेलन में भारतीय धर्म एवं संस्कृति के पक्ष में उनके द्वारा दिया गया ओजस्वी वक्तव्य जिससे पूरी मानव - जाति चमत्कृत हो उठी, आदि घटनाओं का उल्लेख किया गया है ।

द्वितीय अध्याय - 'रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा' मे रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के भावों तथा विचारों का वर्णन किया गया है । यहॉ पर रामकृष देव एव विवेकानन्द के विचारों को अलग करके नहीं देखा गया है और यह सम्भव भी नही है, क्यों कि

रामकृष्ण देव के विचारों को ही विवेकानन्द ने अपना स्वर दिया है, वे कहते भी थे-" मैं जो कुछ बोल रहा हूँ , उसके पीछे मेरे गुरू खड़े हैं ।" इस तरह कहा जा सकता है कि रामकृष्ण देव यदि मूल हैं तो विवेकानन्द उनके भाष्य । उनके विचारों को मुख्यतः चार भागो मे बॉटकर समझा गया है - क- धार्मिक भावधारा - इसमें रामकृष्ण देव का धर्म व दर्शन, स्वामी विवेकानन्द का नव वेदान्त आदि का वर्णन किया गया है। ख- राष्ट्रीय भावधारा- इसमे स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्रभक्ति , देश प्रेम , देश की सभ्यता - संस्कृति और उसके अतीत के प्रति गौरव का भाव, स्वाधीनता प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा आदि राष्ट्रीय चेतना से युक्त भावों का वर्णन किया गया है । ग- सामाजिक भावधारा मे - रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के समाजिक चिन्तन को दर्शाते हुये उनके मानवतावाद दीन - दु खी के प्रति प्रेम, मानव एवं मानव के प्रति किसी भी प्रकार के भेद-भाव का विरोध, नारी उत्थान की भवना तथा उनके प्रति आदर्शभाव रखना, शिक्षा का महत्व तथा उसकी उन्नति की भवना, किसान एवं मजदूरो के प्रति प्रेम, अन्धविश्वास एसं कुरीतियो का विरोध आदि समाजोत्थान विषयक भावनाओं का वर्णन किया गया है घ- आर्थिक भावधारा में - स्वामी विवेकानन्द के देश की आर्थिक उन्नति के प्रति चिन्तन एव उनके विचारों को दर्शाया गया है ।

तृतीय अध्याय 'द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य' में द्विवेदी युग की परिस्थितयॉ एवं साहित्य की प्रवृत्तियो का वर्णन करते हुए युगीन साहित्यकार एव उनकी कृतियों का परिचय कराया गया है ।

चतुर्थ अध्याय 'रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन काव्य पर प्रभाव' मे इस युग की कविताओं पर रामकृष्ण एवं विवेकानन्द की भावधारा के प्रभाव को चार भागों मे बॉटकर दर्शाया गया है अ- धार्मिक प्रभाव, ब - राष्ट्रीय प्रभाव, स - सामाजिक प्रभाव द- आर्थिक प्रभाव ।

पंचम अध्याय 'रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन गद्य पर प्रभाव' को चार भागों में विभाजित करके अवलोकन किया गया है, क- भावधारा का निबन्ध पर प्रभाव - इसमें रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द के धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, दोनों रूपों में विश्लेषण किया गया है । ख- भावधारा का उपन्यास पर प्रभाव

ग- भावधारा का कहानी पर प्रभाव घ- भावधारा का नाटक परप्रभाव को धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एव आर्थिक परिप्रेक्ष्य में इनके अवदेययो का मूल्यांकन किया गया है।

इस शोध कार्य को करने मे 'रामकृष्णमिशन पुस्तकालय' एवं 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन सग्रहालय इलाहाबाद' का अप्रतिम सहयोग मिला। इनके कर्मचारियों का मैं हृदय से आभारी हूॅ। जिन लेखकों कवियो की रचनाओ और उनकी पत्र - पत्रिकाओ से मैने तथ्यो का सकलन किया है, उनके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध निर्देशिका डा० (श्रीमती) शैल पाण्डेय के कुशल निर्देशन एव पथ प्रदर्शन के अभाव मे यह शोध कार्य पूरा न हो पाता। इस सम्बन्ध में मुझे जब भी दिशा - निर्देश की आवश्यकता पड़ी, उन्होंने अत्यधिक व्यस्त होने के बाद भी अपना अमूल्य समय एव सुझाव देकर उचित समाधान प्रदान किया। इस कार्य के लिए उन्होंने अपनी व्यक्तिगत पुस्तकों को प्रदान करके भी मेरा सहयोग किया। अपने तुच्छ आभार को व्यक्त करके मैं इनके इस महती योगदान से उऋण नही होना चाहता।

इस कार्य को पूर्ण करने में पिता जी (श्री दया शंकर मिश्र) के द्वारा भी बहुमूल्य सुझाव एवं सहयोग, समय-समय पर प्राप्त हुआ, उनके इस योगदान को कम करके नहीं देखा जा सकता।

दिनांक : ३०.१०.२००२

गिरिजा प्रसाद मिश्र

गिरिजा प्रसाद मिश्र

विषयक्रम

रामकृष्ण– विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

प्रथम अध्याय

राम कृष्ण देव – स्वामी विवेकानन्द : जीवन वैशिष्ट्य

(क) रामकृष्ण देव

(ख) स्वामी विवेकानन्द

(क) रामकृष्ण देव

आज समस्त मानव जाति जड़वाद और भोगवाद की सस्कृति में लिप्त होकर जीवन के मूल उद्देश्यों से भटक कर दु:ख और सत्रास को प्राप्त हो रही है । धर्म जनकल्याण और समन्वय का वाहक न होकर द्वेष व द्वन्द्व का कारण बन गया है । विभिन्न मत के धार्मिक लोग, सकीर्णता की अंधी सुरंग मे भटक कर अपनी - अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के मिथ्या दम्भ मे एक दूसरे से जूझ रहे हैं । 'परोपकार' एवं 'मानववाद' की उपेक्षा कर ऐहिक सुखोपयोग हेतु जीवन जीने की शैली से सर्वत्र क्षोभ और अशान्ति व्याप्त हो गया है। ऐसे विघटन और बिखराव के युग में हमारा ध्यान बरबस ही सहज, सरल त्यागी एवं मानववाद की भावना से ओत प्रोत महापुरूष रामकृष्ण देव के जीवन विधान की ओर आकर्षित हो जाता है ।

रामकृष्ण देव का जन्म बगाल के हुगली जिले के 'कामारपुकुर' नामक ग्राम के एक ब्राम्हण परिवार में १७ फरवरी १८३६ ई० फाल्गुन शुक्ल द्वितीया दिन बुधवार को हुआ था। इनके पिता क्षुदिराम ईश्वर परायण तेजस्वी एवं सत्यवादी व्यक्ति थे । वे अपने सिद्वान्तो और आदर्शो के प्रति अटल रहते थे । मॉ चन्द्रमणि देवी सरलता दया और ममता की साकार मूर्ति थी। जमींदार के पक्ष में पिता द्वारा झूठी गवाही देने से इंकार कर देने के कारण इस परिवार को अपना पैतृक गॉव व जमीन छोड़ कर सदैव के लिए निर्वासित होना पड़ा । प्रिता और पूर्वजों के रक्त में विद्यमान यह सत्यनिष्ठा और दृढ़ता रामकृष्ण को भी बाल्यकाल से ही प्राप्त थी । पिता मानते थे कि यह पुत्र उन्हें भगवान विष्णु के आर्शीवाद से प्राप्त हुआ है इस लिए बालक का नाम गदाधर रखा गया ।

गदाधर जब पॉचवे वर्ष में प्रविष्ट हुये तो पिता ने विद्यारम्भ संस्कार कराकर उन्हे गॉव की पाठशाला में पढ़ने को भेजा । पाठशाला में गदाधर की अच्छी प्रगति होने लगी । थोड़े ही दिनो में बालक ने पढ़ना लिखना सीख लिया । नित्य नयी रचनात्मकता, अनुकरणशीलता, देवी देवताओं की मूर्ति गढ़ने व चित्र बनाने में गदाधर ने विशेष प्रतिभा का परिचय दिया । वे श्रुतिधर व स्मृतिधर भी थे । एक बार वे जो देख या सुन लेते किसी भी प्रकार नही भूलते थे । गॉव में

नाटक व गान आदि तो सदा होते ही रहते थे। गदाधर ने इनसे सुन - सुन कर बहुत से गीत , भजन, पौराणिक आख्यान व नाटकों के सवाद याद कर लिये थे । क्षुदिराम ने लक्ष्य किया कि बालक पूर्णरूप से निष्कपट और निर्भीक है । वह अपनी गलतियो को कभी नही छिपाता। कितना भी डर क्यो न हो वह झूठ कभी नही बोलता था। बालक के इन सद्‌गुणो से पिता को यह आभास हो गया कि भविष्य मे यह कुल का नाम उज्जवल करेगा ।

यह कहना कठिन है कि श्री रामकृष्ण के जीवन में दिव्य भाब का विकास सर्वप्रथम कब हुआ था, पर उसका स्वरूप शैशव काल मे ही प्रकट होने लगा था । उस समय उनकी आयु केवल छह साल की थी । जिस आयु में संसार के सभी बच्वें खेल कूद मे मस्त रहते हैं उसी आयु मे उन्हे बिना किसी साधन के ही प्रथम भावावेश हुआ । परर्वती काल मे दक्षिणेश्वर मे उन्होंने इस घटना का जो वर्णन किया वह उन्हीं की भाषा में वर्णित है - "ज्येष्ठ या असाढ़ का महीना था तब मेरी आयु छह या सात वर्ष की रही होगी एक दिन सवेरे मैं छोटी से डलिया मे मुरमुरा लेकर चबाता हुआ मैदान के बीच की पगडडी पर चला जा रहा था । आकाश में सुन्दर सजल बादल मडरा रहे थे । मै उसी पर दृष्टि जमाये मुरमुरा खा रहा था । देखते ही देखते काली घटा ने सारे आकाश को ढक लिया । ठीक उसी समय दूध के समान सफेद बगुलों की पंक्ति उन काले बादलों के बीच से उड़ती हुयी निकली । कैसी अनूठी शोभा ! उसे देखते देखते मैं एक अननुभूत भाव में तन्मय हो गया । मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि बाहर का कुछ भी होश नही रहा । मै गिर पड़ा । सारा मुरमुरा जमीन पर विखर गया । मै नही जानता कि उस हालत मे कितनी देर पड़ा रहा । लोगों ने देखा तो उठा कर मुझे घर ले आये यही पहला अवसर था जब मैं भाव में होश खो बैठा था ।"[१] इस घटना से गदाधर के माता पिता बहुत चिन्तित हो गये । यद्यपि गदाधर ने बार बार कहा कि वह बेहोश नही हुआ था और उसे कोई बिमारी नही हुयी थी । मन प्राण के एक अपूर्व आनन्दपूर्ण भाव मे विलीन हो जाने के कारण ही उसे उस आनन्दमय अवस्था की प्राप्ति हुयी थी । फिर भी वे गदाधर के लिए शान्ति स्वस्त्ययन,झाड़ फूक और चिकित्सा की व्यवस्था करके ही सन्तुष्ट हुए ।

सात वर्ष की आयु में ही पिता के अकस्मात निधन के फलस्वरूप बालक को बहुत धक्का लगा । उसका पाठशाला जाना बन्द हो गया और उसके विवेकशील मन में ससार का सच्चा

१ श्री रामकृष्ण सक्षिप्त जीवनी तथा उपीदेश - स्वामी अपूर्वानन्द पृ० ६

व यथार्थ स्वरूप भाषित हो उठा। जिस प्रकार बुढ़ापा रोग और मृत्यु देखकर गौतम बुद्ध ने जीवन की अनित्यता की उपलब्धि कर सन्यास ग्रहण किया था, ठीक उसी प्रकार पितृवियोग की इस एक घटना ने गदाधर के हृदय में ससार के प्रति तीव्र वितृष्णा पैदा कर दी। बालक के जीवन में जो गीत नृत्य अभिनय विनोद और रगरसप्रियता थी उसका स्थान गंभीर भाव तन्मयता ने ले लिया। अब उसका अधिकांश समय 'भूतिर खाल' नामक श्मशान मे या मणिक राजा की अमराई मे चिन्तन करते हुये व्यतीत होने लगा। अन्य समय वह माॅ के काम काज में हाथ बटाता। इन्हीं दिनो से गदाधर का आकर्षण साधु संन्यासियो की ओर बढ़ने लगा। सन्यासी भी इस सुन्दर बालक को भजन सिखाते शास्त्र आदि पढ़ाते और हृदय से आर्शिवाद देते।

गदाधर अपनी माॅ से अतिशय प्रेम रखते थे। वे छाया की भाॅति सदैव माॅ के साथ रहते एव उनके हर एक कार्य में हाथ बटाते। इस तरह कुल देवता रघुवीर और शोकातुर जननी की सेवा में उनका समय व्यतीत होने लगा। गदाधर की आयु नौ वर्ष की होने पर माॅ चन्द्रमणि देवी ने बड़े पुत्र रामकुमार से उनके उपनयन की तैयारी करने को कहा। नि:सन्तान बाल - विधवा धनी लुहारिन को गदाधर माॅ कहकर पुकरते थे। एक दिन धनी ने आॅखों में आॅसू भर कर गदाधर से अनुरोध किया कि वह उसे यज्ञोपवीत के समय भिक्षा माता बनाये। गदाधर ने धनी की अभिलाषा पूरी करने का वचन दे दिया।

उपनयन के अवसर पर गदाधर ने अपने बड़े भाई से अपने दिये हुए बचन की बात कही तो सुनते ही राम कुमार दृढ़ स्वरमें बोले "ऐसा कैसे हो सकता है ? धनी का जन्म नीच कुल मे हुआ है। हमारे वंश में न तो कभी ऐसा हुआ है और न कभी ऐसा होगा।" पर गदाधर अपनी सत्य रक्षा के लिए अड़े रहे और जिद करते हुए बोले "सत्य भ्रष्ट, मिथ्यावादी व्यक्ति को ब्राह्मणोचित यज्ञोपवीत धारण करने का कदापि अधिकार नही है।"[१] रामकुमार व्याकरण काव्य और स्मृति शास्त्र के पंडित थे। वे नौ वर्ष की आयु वाले इस अपरिपक्व बुद्धि बालक के मुख से ऐसी बाते सुन कर चकित हो गये। अन्त में उनके पिता के मित्र 'धर्मदास लाहा' ने मध्यस्थता की और गदाधर की बात मान ली गयी। सत्य की विजय हुई। परवर्ती काल में रामकृष्ण देंव ने इस घटना के परिप्रेक्ष्य में कहा भी था कि "सत्य वचन कलिकाल की तपस्या है।" आजीवन मन वाणी

१- श्री रामकृष्ण - संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ८

और कर्म से सत्य पालन, श्रीरामकृष्ण देव के जीवन का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है ।

गॉव के कथा वाचक पंडित जब पुराणादि का पाठ करते उस समय गदाधर एकाग्रचित्त हो सुनते रहते । उन्होने रामायण महाभारत और भागवत् आदि की बहुत सी कथाएँ कठस्थ कर ली थीं । अपने सतुलित कंठ से धर्म ग्रन्थों का पाठ व व्याख्या करके वे सभी को मुग्ध कर देते थे । वे बिना किसी भेद भाव के सभी के घर जाकर भजन कीर्तन किया करते थे । इससे कामारपुकुर एव आस पास के गॉव नित्य उत्सवमय हो गये । गॉव के सभी लोग उनके प्रति देवता के समान श्रद्धा एवं भक्ति रखते थे । कोई - कोई तो उन्हे अवतार मान कर उनकी पूजा भी करते थे । गदाधर अब न तो पाठशाला जाते और न पढ़ाई - लिखाई करते । दिन प्रति दिन उनकी ईश्वर तन्मयता बढ़ती जा रही थी । उनका बहुत सा समय ध्यान और भजन मे ही बीतता था ।

रामकुमार ने कलकत्ते के झामापुकुर मुहल्ले मे एक संस्कृत पाठशाला खोल रखी थी । पूजा पाठ करने मे वहॉ उनकी अच्छी ख्याति फैल गयी थी । बीच मे घर आने पर यह देख कर की गदाधर पाठशाला जाना बन्द कर दिया है उन्हे अपने इस पितृहीन छोटे भाई के भविष्य के बारे मे विशेष चिन्ता हुयी। घर मे रह कर उसकी पढ़ाई लिखाई नही होगी यह सोच कर अपनी माता से परामर्श लेकर गदाधर को अपनी पाठशाला मे पढ़ने के लिए कलकत्ता ले आये । वहॉ वे जिन घरों में पूजा किया करते थे उनमें गदाधर को लगा दिया । थोड़े ही दिनों में इस सुन्दर किशोर के भाव-पूर्ण गायन भक्तिपूर्ण पूजन और मधुर व्यवहार ने यजमान परिवारों में उन्हें बहुत लोक-प्रिय बना दिया । पढ़ने लिखने में वे अब भी उदासीन ही रहे । महीनों तक उनकी गति-विधि का निरीक्षण करने के बाद एक दिन रामकुमार ने थोड़ा कड़ा रुख अपनाया और कुछ रूखे स्वर में उनसे कहा - ''क्या बात है ? देखता हूँ कि पढ़ना लिखना तो तुमने बिल्कुल ही छोड़ दिया है,तुम्हारा काम कैसे चलेगा ?'' थोड़ी देर चुप रहने के बाद गदाधर ने सहज भाव से कहा - ''यह दाल चावल इकट्ठा करने वाली विद्या सीखने की मेरी कोई इच्छा नही है। मैं तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ जिससे सच्चा ज्ञान मिले ।''[१] उत्तर सुन कर रामकुमार अवाक रह गये और सोचने लगे कि यह कैसी बात कर रहा है, पढ़ाई को कहता है दाल चावल समेटने की विद्या ! बाद में सुविधा अनुसार उसे समझा

---

१ श्री रामकृष्ण : सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ० ११

लेगे यह सोच कर रामकुमार उस समय चुप लगा रह गये । उन्हे अपने भाई की भाव प्रवणता एव ईश्वर-तन्मयता का बोध नही था ।

इसी समय कलकत्ते की जान बाजार निवासिनी रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर मे गगातट पर ६० बीघा जमीन खरीद कर लाखो रुपये व्यय करके विशाल काली मंदिर, सभा मण्डप, बारह शिव मंदिर, राधाकान्त जी का मन्दिर, चॉदनी, सामने पक्का घाट, भंडार, अतिथिशाला, भोगघर तथा नौबत-खाना आदि का निर्माण करवाया था । ३१ मई १८५५ ई० को विराट समारोह के साथ इस नवनिर्मित रत्न-भूषित मन्दिर मे भवतारिणी काली माता की प्रतिष्ठा हुई। काली मन्दिर में प्रधान पुजारी के रूप मे शास्त्र एव कर्मकाण्ड में निष्णात रामकृष्ण के अग्रज पडित रामकुमार नियुक्त किये गये । रामकृष्ण भी झामापुकुर से कभी - कभी इस मदिर में आया जाया करते थे । कालान्तर मे वे इसी मदिर के पूजा कार्य में नियुक्त कर दिये गये । उस समय उनकी आयु इक्कीस या बाईस वर्ष की थी ।

कुछ दिनों तक काली मंन्दिर में पूजा करने के उपरान्त रामकृष्ण के भावुक मन में यह प्रश्न उठने लगा - "मैं जो पूजा कर रहा हूॅ वह किसकी कर रहा हूॅ ? मृण्मयी मॉ की या चिन्मयी मॉ की ? मॉ यदि चिन्मयी है तो मेरे इतने रोने पीटने के बाद भी दर्शन क्यों नहीं देती ?" जगन्माता के दर्शनार्थ रामकृष्ण की व्याकुलता दिन पर दिन बढ़ती गयी । मंन्दिर में मॉ की पूजा करने तथा उन्हें पुष्प चन्दनादि से जी भर कर सजाने आदि में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होने लगा । देवी के श्री अंग का स्पर्श करने पर उन्हें कोमलता की अनुभूति होती तो वे सोचते कि मॉ पाषाणमई नही चिन्मई है ।

दिनों दिन रामकृष्ण की तन्मयता बढ़ती ही जा रही थी । उनका असामान्य व्यवहार दिव्यभावावेश तथा दृढ़ अनुराग मन्दिर के अन्य पुजारी एवं कर्मचारियों के समझ के परे था । वे आपस मे कानाफूसी करते, रामकृष्ण का सिर फिर गया है । कोई कहता उन्हें भूत ने पकड़ रखा है । इन सब विचारों से परे उनका मन और प्राण दिन प्रतिदिन जगन्माता के भाव समुद्र में डूबता ही जा रहा था । पूजा समाप्त हो जाने के बाद भी वे जगन्माता के पास बैठ कर मार्मिक प्रार्थना व मधुर भजनों के द्वारा अपने हृदय की तीव्र व्याकुलता व्यक्त करते थे । भाव में इतने विह्वल हो जाते कि

अपनी सुध - बुध ही भुला बैठते थे। न भोजन की इच्छा होती, न निद्रा मे रूचि । धीरे धीरे व्याकुलता और भाव तन्मयता इतनी बढ़ गयी कि उनके लिए वैधी पूजा करना असम्भव सा हो गया । दिव्य उन्माद मे व्याकुल होकर वे रो - रोकर कहते थे- "मॉ एक दिन और बीत गया पर अभी तक तेरे दर्शन नही हुए । एक - एक दिन कर सारी आयु बीतती जा रही है पर अभी तक तेरी दया नही हुई । अभी तक तूने मुझे अपनाया नही ।"[१] काली की मूर्ति के सामने छाती पीट-पीट कर ऐसा रुदन करते की पत्थर भी पसीज कर पानी पानी हो जाए ।

प्रारम्भ के वर्षों में विविध भावों से जगन्माता में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त ही रामकृष्ण के जीवन की गति अवरुद्ध नही हुई । वह तीव्र वेगवती नदी के समान अनन्त भाव समुद्र की ओर बहती चली जा रही थी ।

कामारपुकुर में मॉ चन्द्रमणि देवी तथा अन्य संबधियों के पास यह खबर पहुॅची कि गदाधर को उन्माद हो गया है और वह मन्दिर में पूजा आदि करने में असमर्थ है तो मॉ के प्राण अधीर हो गये । उन्होंने पत्र आदि लिख कर अपने पुत्र को घर बुलवाया । विभिन्न प्रकार के तंत्र मंत्र औषधि आदि की व्यवस्था की गयी, पर फल कुछ न हुआ । रामकृष्ण सदा मॉ, मॉ कहते हुये और 'भूतिर खाल' तथा 'बुधुई मोड़ल' नामक श्मशानों में जाकर अकेले तरह - तरह की साधनाएँ करने में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे । अपने पुत्र को बाहर से कुछ शान्त देख कर चन्द्रमणि देवी अन्य सगे सम्बन्धियों से विचार-विमर्श करके गुप्त रूप से उनके विवाह आयोजन का प्रयास करने लगीं । भय था कि जान जाने पर वे उसमें बाधा उत्पन्न करेंगे । उन दिनों लड़की जितनी कुशल और सुन्दर होती विवाह के लिए पैसे भी उतने अधिक देने पड़ते । धनाभाव के कारण मॉ अधिक पैसा देने में असमर्थ थी जिससे विवाह में अड़चन पड़ रही थी । कुछ दिनों की खोज के उपरान्त संयोग से जयरामवाटी के रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या को विवाह हेतु पसन्द कर लिया गया । सब तो ठीक था किन्तु कन्या की उम्र बहुत कम थी फिर भी होनहार जान कर मॉ ने कन्या (मॉ शारदा) के साथ पुत्र का विवाह सम्पन्न कर दिया ।

विवाह के उपरान्त कुछ दिनो तक कामारपुकुर में रहने के उपरान्त रामकृष्ण अपने साधना

---

१ श्री रामकृष्ण - सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ० १३

पीठ दक्षिणेश्वर लौट आये। यहॉपहुंच कर उन्होने पूजा के दायित्व को पुन: सम्भाल लिया। नाना प्रकार की साधनाएँ भी साथ ही साथ चलती रही। थोड़े ही दिनों मे उनका वही पुराना उन्माद तीव्र रूप मे उमड़ पड़ा। फिर वही गात्रदाह फिर वही अस्थिरता,छाती सदा लाल रहती,अपलक दृष्टि से निरन्तर मॉ - मॉ का करुण क्रन्दन करते हुए रोते रहते थे।

काली मन्दिर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि उनके दामाद मथुर बाबू और मन्दिर के कर्मचारियो की रामकृष्ण की यह दशा देख कर विस्मय की सीमा न रही। विवाह के बाद तो मन शान्त हो जाने की बात थी पर यहॉ तो उल्टा ही हो गया। रामकृष्ण के प्रति मथुर बाबू के अतिशय श्रद्धा व भक्ति रखने के कारण कलकत्ते के सर्वोत्तम वैद्य गंगाप्रसाद सेन की चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया। नाना प्रकार की चिकित्सा चली परन्तु कोई लाभ नही हुआ। रोग के लक्षणों को समझने के बाद वैद्य ने देखा कि यह तो दिव्योन्माद की अवस्था प्रतीत होती है। यह योगज़ विकार है जो योग साधना के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। यह चिकित्सा से ठीक नही होगा और हुआ भी वैसा ही। वीमारी दूर होने की बात तो दूर रही उसमे क्रमश: वृद्धि ही होती गयी।

वेदों की वाणी है 'मातृ देवो भव' 'पितृ देवो भव' रामकृष्ण की मातृभक्ति असाधारण थी। वे अपनी गर्भधारिणी मॉ चन्द्रमणि देवी की देवी बोध से सेवा किया करते थे। दक्षिणेश्वर मे रहते समय प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर वे सर्वप्रथम नौबत खाने में जाकर अपनी माता को प्रणाम करते, तत्पश्चात कुशल प्रश्न पूछ कर थोड़ी देर तक उनके पास बैठते, फिर मन्दिर में भवतारिणी काली का दर्शन करने जाते। मझले भाई रामेश्वर के देहावसान के बाद वे अपनी शोक सन्तप्त मॉ को कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर ले आये थे और तब से आजीवन उन्हें अपने पास ही रखा था। मॉ के मन को आघात न पहुँचे इस लिएं उन्होंने छिपकर संन्यास ग्रहण किया था। वृन्दावन में साधिका गंगा माता के विशेष अनुरोध पर वे वहॉ यह सोच कर अधिक दिन तक नही रह सके कि दक्षिणेश्वर में उनकी मॉ को उनकी अनुपस्थिति में कष्ट होगा। माया मोह से परे विज्ञानी की अवस्था में प्रतिष्ठित होते हुए भी वे मॉ के दिवंगत होने पर अधीर होकर रोये थे। वे शास्त्र विधि के अनुसार संन्यास लेकर सन्यासी हो गये थे और सन्यासी को माता - पिता की अन्त्येष्टि क्रिया में अधिकार नही होता है। अतः उन्होंने गंगा जी में खड़े होकर अश्रुनीर से माता का तर्पण करते हुए

पुत्र के कर्तव्य का पालन किया था। इस तरह हम देखते हैं कि रामकृष्ण ने आत्मनिष्ठ सन्यासी होते हुए भी सामाजिक मूल्यों की उपेक्षा नही की।

ममतामयी मॉ की मृत्यु के पश्चात रामकृष्ण देव अन्य अनेक कठोर साधनाओ मे निरत हो गये। 'समलोष्टाश्म काचन'[१] मिट्टी पत्थर और स्वर्ण समान है, इस ज्ञान मे प्रतिष्ठित होने के लिए उन्होंने रुपया और मिट्टी हॉथ मे लेकर समत्वबुद्धि से 'रुपया मिट्टी है' 'मिट्टी रुपया है।' कहते हुए उन्हे गगा जी में छोड दिया। जिसके फलस्वरूप धन के प्रति उनकी आसक्ति सदा के लिये चली गयी।

अब तक श्री रामकृष्ण देव ने किसी गुरू की सहायता नही ली थी। एकमात्र अपने मन रूपी गुरू के निर्देशानुसार ही चल कर उन्होंने सभी उपलब्धियॉ प्राप्त की थी। शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित साधना मार्ग की सत्यता सिद्ध करना अभी शेष था। सम्भवत इसी की पूर्ति के लिए शास्त्रो में पारगत निष्णात साधिका योगश्वरी भैरवी ब्राह्मणी का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ। भैरवी ने रामकृष्ण से कहा - 'मैं तुमसे तत्र मत की साधना कराऊॅगी। धर्म के गूढ रहस्यों के जिज्ञासु रामकृष्ण भैरवी के निर्देशन में तत्र साधना मे रत हुए। शास्त्र विधि के अनुसार पचवटी में विल्व वृक्ष के नीचे वे साधना में इतने तल्लीन हो गये कि उन्हे दिन और रात का भी ध्यान नही रहा। छ मास के अन्दर चौसठ तत्रो की सभी साधनाओं का सिद्धिलाभ कर लेने से भैरवी विस्मित रह गयी। वह आनन्द से विभोर होकर बोली, ''अब तुम दिव्य भाव में प्रतिष्ठीत हो गये।''

इसके पश्चात रामकृष्ण ने वैष्णव तत्र के अनुसार पच भावों की साधना की। सर्व प्रथम वे जटाधारी नामक सिद्ध 'रामायत पथी' साधु से राम मत्र की दीक्षा लेकर वात्सल्य भाव की साधना मे लग गये। साधना करते हुए श्री रामकृष्ण स्वय को मॉ कौशल्या मानते थे। वात्सल्य भाव में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात उनके मन में मधुर भाव की साधना करने की इच्छा बलवती हो गयी। वैष्णव शास्त्रो में मधुर भावो को पचभावों का सार और पराकाष्ठा कहा गया है। इस भाव की साधना मे उन्होंने नारी वेश धारण किया। इस अवस्था में वे स्वय को श्रीराधा का अश मानने लगे।हिन्दू धर्म की सभी द्वैत साधनाओं में चरम सिद्ध प्राप्त करने के उपरान्त श्री रामकृष्ण के मन में

---

१ श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय - ६, श्लोक - ८

'एक मेवाद्वितीयम्' ब्रह्म की उपासना ब्रह्म साधना, अद्वैत साधना करने की प्रबल इच्छा हुई । सयोग से इसी समय ब्रह्मदर्शी जटा-जूटधारी नागा सन्यासी तोतापुरी अप्रत्याशित रूप से दक्षिणेश्वर आ पहुँचे। सुदीर्घ कठोर साधना से उनका मन ब्रह्म ज्ञान में प्रतिष्ठित हो चुका था । रामकृष्ण को देख कर उन्होने पहचान लिया कि वे वेदान्त साधना के उत्तम अधिकारी हैं । उन्हें अपने शिष्य के रूप मे स्वीकार करके अद्वैत की साधना प्रारम्भ करा दी ।

साधना प्रारम्भ करने के पूर्व रामकृष्ण को शास्त्र विधि के अनुसार श्राद्ध आदि कराके सन्यास ग्रहण कराया । तत्पश्चात् उन्होंने शिष्य को दड, कौपीन, काषाय वस्त्र आदि से विभूषित कर ब्रह्मोपदेश देना प्रारम्भ किया । ब्रह्मज्ञ तोतापुरी ने शिष्य को महावाक्य का उपदेश देने के बाद नित्य शुद्ध - बुद्ध, मुक्त स्वरूप, निर्गुण ब्रह्म के ध्यान मे मग्न हो जाने का आदेश दिया । इस प्रसग का वर्णन बाद मे रामकृष्ण ने स्वय करते हुए कहा - "सन्यास दीक्षा देने के उपरान्त नागा (तोतापुरी) ने अनेक सिद्धान्त वाक्यों का उपदेश देकर कहा कि मैं मन को पूर्ण रूप से विषय रहित कर, आत्मा के ध्यान मे डूब जाऊँ, पर ध्यान मे बैठ कर बारम्बार प्रयास करने के बाद भी मैं अपने मन को नाम रूप की सीमा के बाहर न ले जा सका । मन में जगदम्बा की मूर्ति आकर खडी हो जाती है । बारम्बार इस प्रयास में असफल होने पर मै निर्विकल्प समाधि के बारे मे निराश हो गया । ऑखे खोलते हुए मैंने नागा से कहा मन को पूर्ण रूप से निर्विकल्प नही कर सका । नागा अत्यन्त उत्तेजित होकर बोले - होगा क्यों नहीं ? यह कह कर वे कॉच का एक टुकडा उठा लाये और उसके नुकीले भाग को मेरी दोनो भौहों के मध्य भाग मे चुभाते हुए बोले - भौंहों के बीच इस बिन्दु पर अपने मन को समेट लाओ । तब दृढ सकल्प के साथ मैं फिर समाधि में बैठा । पहले के समान ही जगदम्बा की मूर्ति पुन प्रकट हुयी, मैने ज्ञान खड्ग की कल्पना से उस मूर्ति के दो टुकडे कर डाले फिर मेरे मन मे कोई विकल्प नही बचा और वह तीव्र गति से ऊपर उठता हुआ गम्भीर समाधि में लीन हो गया ।"[१] इस तरह सिद्ध होकर छ महीने तक निर्विकल्प समाधि का आनन्द लेने के उपरान्त जगत की कल्याण साधना के लिए पुन देव भाव में आ गये । श्री रामकृष्ण अपने मन को जीव कल्याण की वासना के सहारे जागतिक भूमि पर उतार लाये ।

इस प्रकार बारह वर्ष तक निरन्तर साधना करने के पश्चात् रामकृष्ण देव ने हिन्दू मतो की

---

१ श्री रामकृष्ण सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ० २९

सभी साधना मे सिद्धि प्राप्त कर ली । इस बात को वे स्वय कहते है कि मुझे सभी धर्मो को एक - एक बार स्वीकार करना पडा है । हिन्दू मुसलमान ईसाई वैष्णव और वेदान्त इन सभी मार्गो से होकर आने पर मैंने देखा की ईश्वर एक ही है । विभिन्न मार्गो से सब उन्ही के पास चले आ रहे हैं ।'' इस स्वीकारोक्ति के सम्बन्ध मे यह द्रष्टव्य है कि वे न केवल हिन्दू धर्म की विभिन्न साधना मे निष्णात् हुए अपितु समय समय पर फकीर बन कर इस्लाम धर्म का एव गिरजाघर मे जाकर ईसाई धर्म का भी अनुशीलन किया था । इसीलिए तो त्यागीश्वर शिव, वराभयदायिनी काली, सत्यमूर्ति श्रीराम, परम प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण,क्षमाधृतिविग्रह ईसा, विश्वभ्रातृत्व के ऋषि मोहम्मद तथा चाण्डाल तक को प्रेम बॉटने वाले चैतन्य महाप्रभु इन सभी की आध्यात्मिक शक्ति एकीभूत होकर महाशक्तिशाली आध्यात्मिक आलोक पुज बन कर रामकृष्ण देव में प्रकट हुई । सम्पूर्ण विश्व में नवीन आध्यात्मिक - शक्ति का विस्तार करने वाले महाशक्तिशाली प्रकाश - यही है रामकृष्ण का सच्चा स्वरूप ।

रामकृष्ण देव उस ऊँचाई के मनुष्य थे जहॉ से सभी धर्म सत्य और सभी मत समान दिखते हैं । जहा विवाद और शास्त्रार्थ की आवाज नही पहुँचती । जहॉ धर्म अपनी सामाजिक और राजनैतिक रूढियों को तोडकर मुक्त रूप से अवस्थित रहता है । आजीवन वे बालकों के समान सरल और निश्च्छल रहे । वे सदैव उस मस्ती मे डूबे रहे जिसके दो - एक छीटों से ही जन्म - जन्म की तृषा शान्त हो जाती है । आनन्द उनका धर्म,मानवता उनकी पूजा और सरलता ही उनका जीवन था ।

अनेक धर्मो की विविध साधना से उच्चभाव मे अवस्थित होने के बाद भी रामकृष्ण समाज से पूर्णत जुडे रहे । सामान्य जन की पीडा और दु ख उन्हे उद्विग्न कर देती थी । दीन दु खियो की वेदना से वे द्रवित हो जाते थे । प्रत्येक जीव उनकी दृष्टि मे 'जागृत ईश्वर' है । जन - जन की सेवा ही ईश्वर की सेवा है । तभी वे अपने शिष्य विवेकानन्द को समाधि सुख की इच्छा पर लज्जित करते हुए विशाल वट वृक्ष बनने को प्रेरित करते हैं, जिसकी छाया में ससार के सभी दीन दु खी आनन्द और शान्ति की प्राप्ति कर सकें । मानव सेवा के इसी रोपित बीज को ही कालान्तर में विवेकानन्द ने अपने प्रखर भावधारा से अभिसिन्चित कर विशाल वट वृक्ष में रूपान्तरित कर दिया ।

श्री रामकृष्ण के जीवन मे जो दिव्यत्व और मानवीय सवेदनाओं का अपूर्व सम्मिश्रण पाया जाता है वह सचमुच ही अत्यन्त अलौकिक और माधुर्य-पूर्ण है। इनके जीवन में एक ओर जहॉ सर्वोच्च ब्रह्मानुभूति और ब्रह्म दृष्टि लक्षित होती है वहीं दूसरी ओर साधारण मानव के समान सुख-दु ख की अनुभूति तथा अन्य जीवों के क्लेश एव पीडा में असीम सहानुभूति भी दृष्टिगोचर होता है। दोनो अवस्थाओ के बीच उनका सहज आवागमन होता रहता है। कभी तो हम देखते हैं कि वे जीव जगतसे अतीत परातल मे अवस्थित हैं और दूसरे ही क्षण देखते हैं कि वे दीन द्ुखियो की वेदना से व्यथित - द्रवित हो अश्रुपात कर रहे हैं।

एक बार मथुर बाबू श्रीरामकृष्ण को साथ लेकर अपनी जमींदारी देखने गये। राणाघाट के पास कलाईघाट पहुॅचते ही वहॉ रामकृष्ण ने बहुत से ग्रामवासियों को धनाभाव से पीडित बुरी हालत में देखा। उनके जीर्ण - शीर्ण वस्त्र उनका काठ के समान सूखा शरीर देख कर वे रो पडे। उन्होने मथुर बाबू से कहा "मॉ आनन्दमयी के राज्य में इतना कष्ट, इतना दु ख, इन्हे भर पेट भोजन कराओ, एक - एक नयी धोती और सिर में लगाने के लिए तेल दो तथा इनका लगान माफ करो।" रामकृष्ण के सामने इन्हे झुकना पडा। उनकी इच्छा के अनुसार सभी को भोजन और वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट किया एव उनका लगान भी माफ कर दिया। गरीब प्रजा को खुशी से नाचते देख कर रामकृष्ण का मन आनन्दित हो गया।

रामकृष्ण अधिकाश समय निर्विकल्प समाधि मे मग्न रहते थे। बचपन से ही भगवान के साथ उनका अखण्ड लीला - विलास चला आ रहा था। भगवान के अतिरिक्त वे कुछ भी नही जानते थे फिर भी वे मनुष्य को बिसार नही दिये थे। बिसारते भी भला कैसे ? मनुष्य भगवान का प्रतिरूप जो है। इसीलिए तो उन्होंने नारायण ज्ञान से, दु खी मानव की सेवा को भगवान की सर्वश्रेष्ठ उपासना माना है। 'जीव ही शिव है।' प्रत्येक मानव उन्ही की प्रतिमा है। मनुष्य का रूप ही ईश्वर की सर्वोत्तम रचना है। इस प्रकार रामकृष्ण देव अपने मूल स्वरूप का विस्मरण कर चुकी मानव जाति को उसके दिव्यत्व का बोध कराकर उन्हें दु ख और पीडा से बाहर निकालने की सतत् चेष्टा करते रहे।

एक समय था धर्म-भूमि भारत में गृहस्थ आश्रम त्याग के आदर्श पर प्रतिष्ठित था।

काल की गति से हम वह आदर्श छोड कर बहुत दूर चले आये है । आज अधिकाश लोग यह भूल गये है कि गृहस्थ का लक्ष्य भी उसी भूमानन्द में प्रतिष्ठापित होना है । गृहस्थ आश्रमियो को अमृत का लाभ हो, वे सत्य पथ पर चले, इसके लिए रामकृष्ण ने अपने जीवन के द्वारा गृहस्थ धर्म का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किया जो सभी सीमाओं के परे केवल भारत वर्ष के लिए अनुकरणीय व अनुसरणीय है । गृहस्थों के लिए उन्होने त्याग का आदर्श दिखाकर मध्यम वर्ग का विधान करते हुए निर्देश दिया - ''दो - एक सन्तान होने के बाद दोनो ही (पति-पत्नी) ईश्वरीय प्रसग लेकर रहते हुए भाई बहन की तरह जीवन बितायें ।''

रामकृष्ण देव नें अपनी पत्नी मॉ शारदा की पूजा भी की थी । यह पूजा पाश्चात्य देशाो में प्रचलित सम्मान का दिखावा मात्र न था । यह आत्मा की पूजा थी । मातृत्व और देवीत्व की पूजा थी । समानता और समता के पक्षधर रामकृष्ण देह त्याग के पहले तक जीव त्राण और जीव कल्याण के ब्रत का निर्वहन करते रहे । इस ब्रत मे धनी - निर्धन, पडित - मूर्ख, ब्राम्हण - चाण्डाल, सुजन - दुर्जन, यहॉ तक की देश काल और जाति धर्म का भी कोई भेद भाव नहीं था । जो कोई उनके द्वार पर आया उसे बिना किसी सोच विचार के गोद मे उठा लिये और उसका त्राण किये । रामकृष्ण देव मे विकसित इसी विश्वभाव ने ही तो पूरे विश्व को सम्मोहित कर लिया है ।

ईश्वर भाव ही मानव जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है । मनुष्य ही इस ब्रह्माण्ड का सर्वोत्तम जीव है । इसका कारण यह है कि एक मात्र नरधारी जीव मे ही पूर्णता प्राप्त करने की क्षमता है । यहॉ तक की देवताओं और उच्चतर लोको के निवासीयो को भी पूर्णता प्राप्ति के लिए इस मृत्युलोक में मनुष्य योनि मे जन्म लेना पडता है । लाखों योनियों में भ्रमण करने के पश्चात मानव देह मिलती है, अपनी चेतना सत्ता का जैसा अनुभव मनुष्य योनि में होता है, वैसा अन्य किसी योनि में सम्भव नही है, इसीलिए मानव जीवन दुर्लभ है । इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव ने अपने जीवनादर्श के द्वारा दो बातों को विशेष महत्व प्रदान किया, प्रथम यह कि ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य है, दूसरा इसी जीवन में ईश्वर लाभ करना होगा, एक और नयी बात जो रामकृष्ण ने अपने जीवन के द्वारा बतलायी - वह यह कि ईश्वरोपलब्धि के लिए पहाड- पर्वत, गुफा तीर्थ, गुरूगृह या किसी अन्य दुर्गम स्थलों में जाने की आवश्यकता नहीं है । जो जहॉ है जिस धर्म में पैदा हुआ है वहीं से अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है ।

दिन पर दिन आध्यात्मिक मार्ग दर्शन के लिए उनके पास भक्तों की भीड बढने लगी । वे फिर भी बिना थके सभी के लिए उपदेश देते रहे तथा 'किसी को भी कभी निराश नहीं किया । एक दिन उनके गले मे दर्द महसूस हुआ । दर्द बढता ही गया और इलाज से कोई लाभ नही हुआ । डाक्टरों ने कहा - यह गले का कैंसर है । उस समय चिकित्सा की जितनी सुविधाएँ उपलब्ध थीं सब की गयीं, परन्तु कोई लाभ न हुआ । रामकृष्ण जानते थे कि उनका शरीर अब ज्यादा दिन अब नहीं चलेगा इसलिए वे उत्सुक थे कि उनके शिष्य भावी सघ के लिए तैयार हो जायें । उन्होंने प्रत्येक शिष्य को अलग - अलग ढग से उपदेश दिया । जिससे उनके जाने के बाद भी वे अपनी साधना करते रहे । नरेन्द्र को वे अपनी भावी सन्यासी सघ के नेतृत्व के लिए गढ कर तैयार कर रहे थे । इस लिए नरेन्द्र को अपना आशीर्वाद देते हुए उन्होने कहा था - ''नरेन्द्र आज सब कुछ तुम्हें देकर मैं भिखारी बन गया हूँ, मैंने तुम्हे जो शक्ति दी है उसके द्वारा तुम ससार का महान कल्याण करोगे ।''

अब देह त्याग के बस दो ही दिन बचे थे, श्री रामकृष्ण असाध्य रोग यत्रणा से पीडित थे । उनके रोग को लेकर सभी बहुत व्यग्र थे । नरेन्द्र उनके विस्तर के पास मुँह नीचा किये बैठे थे, अचानक उनके मन में यह विचार आया कि इस भीषण शारीरिक कष्ट के बीच भी वे यदि स्वय को अवतार कहे तभी मुझे विश्वास होगा अन्यथा नहीं । और आश्चर्य !! नरेन्द्र के मन मे यह विचार उठते ही श्री रामकृष्ण उनकी ओर मुँह करके बोल उठे - ''अभी तक अविश्वास! जो राम बने, जो कृष्ण बने, वे ही इस बार रामकृष्ण बने हैं । पर हॉ ! तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं ।'' इस देव वाणी को सुन कर नरेन्द्र लज्जित हो अपराधी की तरह सिर नीचा किये बैठे रहे ।

सासारिक नियमो के अनुसार एक दिन धीरे - धीरे रामकृष्ण की महासमाधि का समय भी निकट आ पहुँचा । १६ अगस्त १८८६ ई०, दिन रविवार को रामकृष्ण देह पिंजर को छोडकर अनन्त आकाश मे विलीन हो गये परन्तु पूरे विश्व की उन्नति व विकास के लिए एक ऐसा सूत्र छोड गये जिसकी व्याख्या कर समूचा जनमानस आज भी उससे लाभान्वित हो रहा है ।

वसुधैव - कुटुम्बकम्' की भावना करके तद्नुकूल व्यवहार करना, सासारिक बधनो

को तोडकर दूसरो के हित में जीवन जीने का साहस करना, 'करतलभिक्षा - तरुतरवास करके अपने मगल को सभी के मगल में समाहित कर देने की भावना सभी मे नहीं होती। रामकृष्ण देव ने अपने जीवन के द्वारा इन भावनाओ को साकार रूप दिया है। विराग को अपना सहचर, शक्ति को पत्नी, उपकार को व्रत और मनोनिग्रह को सत्य साधना मानने वाले ऐसे दिव्य गुणो से युक्त सतुरुष रामकृष्ण देव अपने विचारों के द्वारा आज भी जन - जन के मानस पटल में विद्यमान हैं।

(ख) स्वामी विवेकानन्द

अपने ओजस्वी विचारो के द्वारा पूरे विश्व में भारतीय धर्म एव सस्कृति की पताका फहराने वाले विश्ववरेण्य विवेकानन्द, युगद्रष्टा रामकृष्ण देव के अतरग लीला सहचर एव उनके युग धर्म सस्थापन कार्य करने के प्रमुख सहायक थे। उन्होंने सनातन वैदिक धर्म पुनरुज्जीवित कर समस्त विश्व में उसका चैतन्य भर दिया। आध्यात्मिक एव मानवीय चेतना से परिपूर्ण उनका समग्र जीवन अत्यन्त प्रेरणा दायी है। उनके तेजस्वी विचारों में किसी भी व्यक्ति मे सजीवन का सचार करने की सामर्थ्य निहित है। आज हमारे राष्ट्रीय जीवन मे ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका हल हमे उनकी शिक्षाओ मे न मिल जाय। इसी सन्दर्भ में उनके जीवन-चरित् पर सक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी १८६३ ई० में पौष कृष्ण सप्तमी तिथि के दिन कलकत्ते के शिमला मुहल्ले मे विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र के रूप में हुआ। पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध एटार्नी थे। वे अग्रेजी तथा फारसी भाषा के विद्वान थे। उदार हृदय के कारण वे अपने सगे सम्बन्धियों के प्रतिपालक थे। माता भुवनेश्वरी देवी का भी चरित अनुपम था। वे रमणी कुल की दया व दान स्वरूपा थी। माता की भक्ति व सरलता एव पिता की उदारता व दानशीलता का पुत्र पर गहरा प्रभाव पडा। बालक का नाम नरेन्द्र रखा गया।

शैशव से ही नरेन्द में असामान्य प्रतिभा एव अदम्य शक्ति के चिह्न दृष्टिगोचर

होने लगे थे। आरम्भ से ही वे बडे मेधावी बुद्धिमान निर्भीक साहसी और मित्र प्रिय थे। रोज रात को सोने के पहले किसी वृद्ध आत्मीय के मुख से 'मुक्तबोध' व्याकरण के सूत्र सुन - सुनकर ही उन्हे वह प्राय पूरा कठस्थ हो गया था। माता के मुख से रामायण एव महाभारत के कई अश सुनकर बालक उसे बडे सुन्दर ढग से दुहरा लेता था। वे श्रुतिधर एव स्मृतिधर थे। स्मृतिधर होने के कारण एक बार जो पढते व सुनते वह सदा के लिये उनके स्मृति पटल पर अकित हो जाता। अद्भुत् क्षमता सम्पन्न राम भक्त हनुमान बालक के आदर्श प्रतीक थे। इसी लिये बल वीर्य साहस एव पवित्रता के आदर्श को उन्होंने अपने जीवन मे उतारा ।

नरेन्द्र के नटखटपन की कोई सीमा नहीं थी। डराने - धमकाने, डाटने - फटकारने के बावजूद भी उन्हे रोकना मुश्किल हो जाता था। तब बालक को गोद मे लेकर माता कहती - "काफी सिर धुनकर शिवजी से एक पुत्र माँगा था, पर उन्होंने भेज दिया एक भूत" कालान्तर मे विवेकानन्द की पाश्चात्य शिष्याओ के समक्ष उनकी जननी ने पुत्र के बचपन के शरारत का वर्णन करते हुए कहा था - "अरे। तुम्हे क्या बताऊँ उसे सम्भालने के लिए दो महरियाँ आठो पहर उसके पीछे - पीछे घूमा करती थीं।"

ध्यानपरायणता के लक्षण नरेन्द्र में बचपन से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे। एक दिन वे साथियों के साथ खेल - खेल मे मकान के तिमजिले पर शिवजी के मूर्ति के समक्ष ध्यान करने बैठे, थोडी देर बाद एक बालक साँप - साँप कह कर चिल्ला उठा। साथ के सभी बालक दरवाजा खोल कर निकल भागे किन्तु नरेन्द्र ध्यान मग्न बैठे रहे कुछ समय बाद साँप अपना फन समेट कर चला गया, बहुत ढूढने पर भी उसका सुराग नही मिला। बाद में यह बात सुन कर नरेन्द्र ने कहा —"मुझे तो कुछ पता ही नही चला।"

छह वर्ष की आयु होने पर नरेन्द्र को पढने के लिए पाठशाला भेजा गया किन्तु थोडे ही दिनो मे पिता ने पाठशाला जाना बन्द करा कर घर पर ही शिक्षक नियुक्त कर उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। कुछ वर्षों बाद उन्हे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रोपोलिटन इस्टिट्यूशन में पढने हेतु लाया गया। यहाँ वे अग्रेजी पढने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नही हुए। उनका कहना था - "वह तो विदेशी भाषा है, उसे क्यो पढूँ? उससे तो अपनी भाषा सीखना

ज्यादा अच्छा है ।'' बाद में बालक के मन में परिर्वतन आया फिर वह बडे उत्साह से अग्रेजी सीखने लगा ।

स्कूल का पाठ तैयार करने में नरेन्द्र को अधिक समय नही लगता था । मास्टर साहब पढते जाते और नरेन्द्र ऑख मूँदे लेटे - लेटे सुनते रहते, इसी से उन्हे सब याद हो जाता था । अब बचा हुआ समय कैसे बिताया जाये ? अत वे मुहल्ले के बालकों के साथ व्यायाम, नाटक आदि कितने ही चीजो मे भाग लेने लगे और खेल - कूद, तैराकी आदि में सबसे आगे रहते थे । जन्म से ही उनमें नेता के गुण विद्यमान थे । समय के साथ उनका शरीर सुदृढ और बलिष्ठ हो गया । अब एक ओर वे अश्वारोहरण में निपुण और व्यायाम कुशल हो गये थे तो दूसरी ओर दर्शनादि विभिन्न शास्त्रो मे विद्वान, नृत्य, गीत एव विविध वाद्यो के वादन में निपुण तथा हास्य विनोद प्रिय बन गये थे । गभीर चिन्तनशील पवित्रचित्त, ध्यानपरायण, अध्ययनशील एव बहुविध गुणो से विभूषित होने के कारण वे सर्वप्रिय हो गये थे ।

परीक्षा में उत्तीण होना नरेन्द्र के लिए एक साधारण सी बात थी । वे परीक्षा से एक दो महीने पहले ही पाठ्य पुस्तकों को हाथ लगाते थे किन्तु अपनी असामान्य मेधा के फलस्वरूप वे सदैव सम्मान के साथ उत्तीर्ण होते थे । पाठ्य पुस्तकों की क्षुद्र सीमा में बँध कर इनकी ज्ञान स्पृहा तृप्त नही होती थी । प्रवेशिका परीक्षा के पूर्व ही उन्होंने भारत के इतिहास पर लिखे प्राय सभी ग्रन्थो एव प्रसिद्ध लेखकों द्वारा रचित साहित्य आदि का अध्ययन कर विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अपने ज्ञान भण्डार को समृद्ध बना लिया था ।

बचपन से ही दीन - दु खियो का कष्ट एव उनकी वेदना देखकर नरेन्द्र के प्रॉण रो उठते थे और उन्हे देने के लिए पास मे कुछ नही होने पर वे अपने अग के वस्त्र ही दे डालते थे । निर्धनों को कुछ देकर उन्हे परम सन्तोष का अनुभव होता था । दीन - दुखियो की पीडा व कष्ट का वे अत करण से अनुभव करते थे और उनके दु ख दूर करने का उपाय सोचने में उनका चित्त व्यग्र हो उठता था । दीन - दलित एव उपेक्षितों के प्रति कल्याण की भावना बचपन से ही उनमें व्याप्त थी, यही भावना आगे चल कर उनके महान जीवन ब्रत के रूप में परिणीत हो गयी । इस सम्बन्ध में उन्होने कहा भी था - ''जो लाख लाख उपेक्षित नर नारी दिन - प्रति दिन दु ख के अन्धेरे गर्त में

अधिकाधिक डूबते जा रहे हैं, जिन्हे सहायता देने वाला या जिनके बारे में सोचने वाला कोई नही, जो दीन - हीन व पीडित है उनके द्वार तक सुख - स्वछन्दता, धर्म - नीति एव शिक्षा ढोकर पहुँचा देना होगा। यही मेरी आकाक्षा और यही मेरा व्रत है। मैं उसे पूरा करूँगा या मृत्यु का वरण करूँगा।'' भारत की हृतसर्वस्व जनता के उद्धार का सकल्प लेकर उन्होने विश्व कल्याण की भावना में अपना जीवन समर्पित कर दिया। वे दीनो के त्राता थे। यही उनके जीवन का महत्तम पहलू था। समाज सेवा के इसी महान कार्य के लिए ही उन्होने देह धारण किया था।

तरुण होने के साथ ही वे साधन, भजन, कठोर तप और अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन मे मग्न रहने लगे। कितनी ही राते वे बिना सोये, ध्यान मे बिता देते। अन्तर्मन मे उठने वाले अनेकों प्रश्नों के समाधान हेतु उन्होंने ब्रह्मसमाज में आना जाना प्रारम्भ कर दिया और समाज की प्रार्थना आदि मे सम्मिलित होकर आनद का अनुभव करने लगे। सुकठ गायक नरेन्द्रनाथ ब्रह्मसमाज की रविवासरीय उपासना के समय मधुर भजन गाकर सबको आनन्दित कर देते थे। थोडे ही समय मे वे अपने विशेष गुणों के कारण केशवचन्द्र सेन आदि नेताओ के प्रिय भाजन बन गये। ब्रह्म समाज के सदस्य बन कर निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना एव हिन्दू धर्म की रूढियो तथा रीति - रिवाजो की निंदा के साथ स्त्री शिक्षा एव नारी स्वाधीनता आदि के कार्यों मे रत रहने लगे।

धर्म के वाह्य क्रिया - कलापो के साथ ही अब उनका मन धर्म के मूल उद्देश्य 'ईश्वर लाभ' की पूर्ति के लिए अधीर हो उठा। उस चिरन्तन सुख की खोज में उनका प्राण आकुल हो गया और इसी व्याकुलता के कारण वे कलकत्ते के भिन्न - भिन्न धर्म प्रचारकों के पास आने - जाने लगे। इसी क्रम मे एक दिन वे महर्षि देवेन्द्रनाथ के पास जा पहुँचे। उपासना एव ध्यान चितन की सुविधा के लिए महर्षि, उस समय गगा तट पर एक नाव मे विद्यमान थे। नरेन्द्र पागलो की तरह उस नाव में प्रवेश कर सहसा पूँछा – ''महाशय क्या आपने ईश्वर को देखा है ?'' महर्षि ऐसे प्रश्न के लिए तैयार नही थे और युवक की ओर ताकते रह गये। नरेन्द्र बडी आशा से इनके पास आये थे परन्तु कुछ न पाकर वापस लौट आये। उनके मन की अशान्ति और भी बढ गयी। अब तो उनके हृदय में यही विचार आने लगा - ''ऐसे तत्वदर्शी महापुरुष कहॉ मिलेंगे जो भूमानन्द की प्राप्ति का मार्ग दिखा सके ?''

इसी बीच कालेज के अध्यापक 'हेस्टी महाशय' ने 'शेली' की एक कविता पढाते समय उसमे भावाविष्ट हो भाव जगत में खोने की बात आने पर अपने छात्रों से कहा कि - "तुम दक्षिणेश्वर जाकर देख सकते हो कि व्यक्ति कैसे भावाविष्ट हो जाता है ।" केशवचन्द्र सेन के भाषण तथा उनके द्वारा सचालित पत्रिका आदि में रामकृष्ण के सम्बन्ध मे बाते होती रहती थीं । हेस्टी महाशय एव केशवसेन की बाते सुन कर नरेन्द्र का मन रामकृष्ण से मिलने को उत्सुक हो उठा।

अठ्ठारह वर्ष की आयु होने तक वे एफ० ए० परीक्षा की तैयारी के साथ पूर्वी एव पश्चिमी दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन कर सदेहवाद तथा नास्तिकवाद से परिचित हो गये । वे सगुण ब्रह्म के उपासक थे । मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे । इस विश्व, ससार का कोई नियामक है भी या नहीं ? यदि है, तो कौन है ? क्या उसे देखा जा सकता है? दयामय ईश्वर के राज्य में इतना दु ख, इतनी विफलता, इतना अन्याय क्यो है ? इन प्रश्नों का समाधान उन्हे खोजने से भी नहीं मिलता, ससार में इतनी विषमता, धनी एव निर्धन के बीच ऐसी गहरी खाई किसने बनाई ? जब सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं, तब ब्राह्मण और चाण्डाल के बीच दुर्लंघनीय अतराल का सृजन कैसे हुआ ? इस प्रकार के सैकडो विचार उनके तरुण हृदय को मथ रहे थे।

कलकत्ता के सिमुलिया मुहल्ले के निवासी सुरेन्द्रनाथ मित्र ने एकदिन अपने मकान में श्रीरामकृष्ण एव इनके भक्तों को सादर आमत्रित किया । भजन गाने के लिए अच्छे गायक की आवश्यकता थी । सुरेन्द्रनाथ अपने पडोसी विश्वनाथ के पुत्र सुकठ नरेन्द्रनाथ को बुला लाये । नरेन्द्र ने हृदय खोलकर भजन गाया जिसे सुन रामकृष्ण देव मग्न हो भावाविष्ट हो गये । भजन समाप्ति के बाद रामकृष्ण ने नरेन्द्र से दक्षिणेश्वर आने का आग्रह किया । शिष्टाचारवश नरेन्द्र ने आने का वचन दे दिया ।

इस घटना के कुछ सप्ताह बाद नरेन्द्र को एक अग्नि - परीक्षा का सामना करना पडा । पिता ने किसी सम्पन्न परिवार की कन्या के साथ उनका विवाह निश्चित कर दिया । प्रस्ताव सुनते ही नरेन्द्र ने इसका विरोध किया और दृढता पूर्वक कहा — , "मै किसी भी दशा में विवाह नही

करूँगा ।'' इस घटना से नरेन्द्र के वैराग्य - प्रवण मन में ईश्वर की अभिलाषा और भी तीव्र हो गयी । उनका ब्रह्म समाज में आना - जाना और बढ गया ।

एक दिन पडोसी सुरेन्द्रनाथ ने उन्हे दक्षिणेश्वर चलने का निमत्रण दिया । रामकृष्ण को दिये वचन को याद कर वे सुरेन्द्रनाथ की गाडी मे बैठ, दक्षिणेश्वर चल दिये । वहॉ ज्ञानी, गुणी आत्मविश्वासी और युक्तिवादी 'नरेन्द्र' का मिलन निर्धन, निरक्षर, ब्राह्मण पुजारी रामकृष्ण से हुआ, जो दक्षिणेश्वर मे भवतारिणी काली माता की पूजा में रत थे । जीवन में उन्होंने भगवान के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं चाहा था । न कभी भाषण दिये, न कभी प्रचार किये, फिर भी केशव चन्द्रसेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, शिवनाथ शास्त्री आदि ब्रह्मसमाज के शीर्ष नेतागण इस निरक्षर अद्भुत् पुरुष के चरणों तले स्तब्ध होकर घन्टों बैठे रहते, मत्र मुग्ध होकर उनके श्री मुख से भगवत् प्रसग सुनते रहते । उनकी भाव समाधि देखकर वे विस्मित हो जाते । सोंचते, शास्त्र आदि कुछ भी न पढ कर भी ऐसी सुन्दर बाते, जो हमे भी नही मालूम है ? ये कैसे बताते हैं । दिखने मे पागलो की तरह इन्हे अपने वस्त्रों का ख्याल भी नही रहता किन्तु माता का नाम व गुणगान करने लगते तो सुनने वालो के हृदय मे तीर की तरह जा विंधता ।

रामकृष्ण के पास आकर नरेन्द ने अपना वही पुराना प्रश्न दुहराया - भगवान को कभी देखा जा सकता है या नही ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री रामकृष्ण ने आशा भरे शब्दों में कहा - ''हॉ जी, उन्हे देखा जा सकता है । मैं जैसे तुम्हे देख रहा हूँ, तुमसे बात चीत कर रहा हूँ ठीक वैसे ही बल्कि उससे भी अधिक स्पष्ट रूप से ईश्वर को देखा जा सकता है । किन्तु भला उन्हे चाहता कौन है ? लोग स्त्री पुरुष के शोक मे घडो ऑसू बहाते हैं । सम्पत्ति, धन, दौलत के लिए कितना रोते हैं, पर भला बताओ तो भगवान लाभ नहीं हुआ इसलिए कौन रोता है ? उनकी प्राप्ति नही हुयी इस दुख से यदि कोई रो - रो कर उन्हे पुकारे तो उसे वे निश्चित रूप से दर्शन देते हैं ।''[१] श्री रामकृष्ण के शब्दों ने नरेन्द्र के अन्त करण को छू लिया । वे स्तब्ध होकर सोचने लगे – ''पागल जैसे होने पर भी ये परम पवित्र हैं, महात्यागी हैं । इन्होने ईश्वर के दर्शन किये हैं । ये सभी मानवो की हार्दिक श्रद्धा पूजा और सम्मान पाने के अधिकारी है ।''[२]

---

१ स्वामी विवेकानन्द सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० १६
२ वही

दक्षिणेश्वर से घर लौट कर नरेन्द्र ने पढाई लिखाई में मन लगाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु वे किसी तरह रामकृष्ण को भुला नहीं पा रहे थे। दिन - रात रामकृष्ण का ही विचार उन्हे बेचैन किये रहता। अत में चिता से व्याकुल हो एक दिन वे अकेले ही दक्षिणेश्वर की ओर चल पडे। वहॉ रामकृष्ण नरेन्द्र को देख कर खिलाने - पिलाने एव उनकी आव - भगत करने को व्यग्र हो उठे और तरह तरह से नरेन्द्र के प्रति प्रेम प्रकट करने लगे। सध्या होने पर नरेन्द्र जब विदा लेने लगे तो रामकृष्ण ने हठपूर्वक कहा - ''बोलो फिर शीघ्र ही आओगे ना।'' उन्हे वैसा ही वचन देकर नरेन्द्र कलकत्ता लौट आये।

श्री रामकृष्ण के जीवनादर्श से अनुप्राणित नरेन्द्रनाथ के लिए चरम एव परम सत्य स्वरूप भगवान को प्राप्त करना ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य बना। सब प्रकार के सुख चैन का विसर्जन करते हुये उन्होंने कठोर ब्रह्मचारी का व्रत ग्रहण किया। वे पढाई - लिखाई में लापरवाही तो नही करते किन्तु रात्रि में व्याकुल हृदय से ईश्वर चिन्तन करने में उनका बहुत सा समय बीत जाता था।

बी० ए० की परीक्षा के बाद जब नरेन्द्र बी० एल० पढ रहे थे तब (१८८४ ई० के प्रारम्भ मे) एक दिन अचानक उनके पिता का देहान्त हो गया। उनके पिता की आय काफी थी किन्तु अपरिमित व्यय एव दान के कारण वे कुछ भी छोड कर नहीं जा सके बल्कि कुछ ऋण ही छोड गये थे। उनके देहान्त के एक दो महीने के भीतर ही नरेन्द्र के पारिवारिक जीवन में एक महान सकट मय परिस्थिति आ खडी हुयी। पहला प्रश्न था माता, भाई - बहन आदि छ सात लोगों के अन्न वस्त्र की व्यवस्था कैसे हो ? समय देख कर, लेनदार भी आ धमके। नरेन्द्रनाथ के जीवन मे निर्धनता के साथ यह पहला ही सामना था। पिता के निधन का पूरा सूतक होने के पहले ही वे नगे पैर नौकरी की खोज में घूमने लगे। माता का व्यथित मुख उनके प्रॉणो को आकुल किये देता था। छोटे - भाई बहनो का जीर्ण शरीर देख कर उनका चित्त व्यग्र हो उठता और वे नीरव ऑसू बहाते। सबेरे उठ कर पहले ही भण्डारघर की स्थिति का पता लगा लेते और कठिनाई देखने पर स्नान करके ''मुझे निमत्रण है'' कह कर निकल जाते फिर नौकरी की तलाश में भटकते हुए सारा दिन भूँखे बिता कर रात को घर लौटते। अवसर देख कर रिश्तेदारों ने मकान पर जबरदस्ती कब्जा जमा लिया। माता और भाई - बहनों को लेकर नरेन्द्र ने नानी के घर में आश्रय लिया। उच्चन्यायालय में

मामला दायर किया गया । नि सम्बल, निराश्रय परिस्थिति में पडे नरेन्द्र के चारो ओर अॅन्धेरा ही अॅन्धेरा दिखाई देने लगा ।

सैकडों प्रयत्न करने पर भी जब सासारिक दु ख, कष्टों से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं मिला, तब नरेन्द्रनाथ के मन में आया कि श्री रामकृष्ण से मिलकर कोई उपाय निकालने के लिए कहते हैं । रामकृष्ण से यह बात कहने पर उन्होंने कहा - ''अच्छा जा, मॉ से कहूँगा कि तुझे सादे अन्न वस्त्र का कभी अभाव न हो ।'' समय के साथ धीरे - धीरे उनका सासारिक अभाव दूर होने लगा । साथ ही अब वे साधना के द्वारा एक नवीन दृष्टि भी प्राप्त कर रहे थे ।

एक दिन ईश्वरीय वार्ता के प्रसग मे रामकृष्ण देव कह रहे थे - ''जीव पर दया नही शिव ज्ञान से जीव की सेवा'' इस कथन को सुना तो बहुत से लोगो ने, लेकिन इसमें निहित गहरे सत्य का अनुभव केवल नरेन्द्र ने ही किया । जैसा कि उन्होंने कमरे से बाहर आने पर कहा - ''आज ठाकुर (रामकृष्णदेव) की बातो मे कैसा अपूर्व प्रकाश दिखायी दिया । उन्होने भावावस्था मे जो कहा उसके द्वारा, वन के वेदान्त को जीवन मे लाया जा सकता है । मनुष्य अपने जीवन मे प्रतिक्षण जिसके सम्पर्क में आ रहा है, जिनके प्रति श्रद्धा सम्मान निवेदित कर रहा है, वे सभी ईश्वर के अश हैं, स्वय ईश्वर ही हैं । भगवान ने यदि कभी अवसर दिया तो आज जो सत्य सुना उसे ससार में सर्वत्र प्रचारित करूँगा । पण्डित - मूर्ख, धनी - निर्धन, ब्राम्हण - चाण्डाल सभी को इसे सुनाकर मोहित करूँगा ।''[१] और समय आने पर उन्होंने वैसा ही किया भी । मानव जाति के सम्मुख उन्होंने धर्मराज का एक नया क्षितिज उद्घाटित किया । मनुष्य के जीवन में धर्म साधना का एक नया मार्ग प्रशस्त कर दिया । शिवज्ञान से जीव - सेवा इस महामत्र में व्यष्टि मुक्ति का मार्ग निहित है । साम्य-मैत्री, विश्वबधुत्व का बीज इसी में छिपा हुआ है । स्पृश्य - अस्पृश्य एव समाज के विभिन्न जाति उपजातियो के बीच विभिन्न धर्मो या एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों अथवा मतवादों के बीच ऐक्य स्थापित करने का एक मात्र सहज उपाय है - मनुष्य मात्र की ईश्वर बुद्धि से सेवा । जीव ही शिव है, नर ही नारायण है, मानव मे ही भगवान का श्रेष्ठतम प्रकाश है । मानव की सेवा ही भगवान की श्रेष्ठतम पूजा है । विवेकानन्द मानव जाति के चिरन्तन कल्याण के लिए ससार में इस सन्देश

---

१ स्वामी विवेकानन्द सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० २३

का प्रचार करते हैं । इसके यथार्थ प्रयोग के फलस्वरूप विश्वशान्ति एव मानव जाति का कल्याण अवश्य सम्भव होगा । उनकी 'सखा के प्रति' कविता में यह भाव बडे सुन्दर रूप मे व्यक्त हुआ है –

> "ब्रह्म और परमाणु कीट तक, सब भूतो का है आधार,
> एक प्रेममय प्रिय, इन सब के चरणो मे दो तन - मन वार ।
> बहुरूपो मे खडे तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश ।
> व्यर्थ खोज । यह जीव प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश ।।"[१]

रामकृष्ण देव अब अपनी नरलीला का सवरण करने के लिए तैयार हो रहे थे । नरेन्द्र को अब वे बिल्कुल दूर नही जाने देते थे । उनको सदा पास बैठा कर जीव कल्याण रूपी कार्य के सम्बन्ध मे गूढ आदेश उपदेश देते और एकान्त में उनकी चर्चाऍ करते । अब नरेन्द्र पर वे अपने असामान्य कार्यो का बोझ सौंपने जा रहे थे । एक दिन रामकृष्ण ने एक कागज के टुकडे पर लिखा - नरेन्द्र लोक शिक्षा देगा । नरेन्द्र को इस प्रकार उन्होने अधिकार प्रदान किया । नरेन्द्र ने थोडा हिचकते हुए कहा -"मुझसे वह सब नही होगा ।" रामकृष्ण ने तत्क्षण दृढ स्वर में उत्तर दिया - "तेरी हड्डियो से होगा ।' इस तरह रामकृष्ण ने नरेन्द्र के अन्तर्मन मे 'बहुजन हित की शुभकामना जागृत कर उनके विचारों को जीव भूमि पर उतार दिया । इस तरह मानों वे उनकी गर्दन पकड कर जबरन यह कार्य करा लेना चाहते थे । विश्वास - अविश्वास नाना प्रकार के दु ख - कष्ट और सघातो के भीतर से ले जाते हुए रामकृष्ण ने अपने हॉथो से नरेन्द्र को गढा था । विवेकानन्द तो केवल रामकृष्ण की अमोघ इच्छा शक्ति के यत्र स्वरूप थे । इसीलिए तो विवेकानन्द ने पूरे विश्व मे रामकृष्ण के सन्देशो का प्रचार एव प्रसार किया ।

रामकृष्ण किसी विशिष्ट देश जाति धर्म के लिये नही बने थे । वे सनातन वैदिक धर्म के नवीनतम अभिव्यक्ति के रूप मे परम सत्य को ससार के समक्ष प्रकट करना चाहते थे । लोक कल्याण की भावना का महान उपदेश देकर १६ अगस्त १८८६ को रामकृष्ण देव का शरीर महासमाधि में विलीन हो गया । रामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात नरेन्द्रनाथ ने अपने गुरुभ्राता

---

१ मूल बगला कविता 'सखार प्रति' का हिन्दी अनुवाद

तारकनाथ की सहायता से कलकत्ता के निकट वाराह नगर के एक भूतहे मकान में मठ की स्थापना की । यथा क्रम वहाँ रामकृष्ण की व्यवहृत वस्तुएँ एव भस्मास्थि लाई गयी और कुछ त्यागी भक्त वहाँ आकर रहने लगे । नित्य पूजा - पाठ, ध्यान, भजन - कीर्त्तन, शास्त्रअध्ययन आदि चलने लगा । यहाँ गृही भक्त भी आने जाने लगे । इस तरह रामकृष्ण के निर्देशानुसार ही 'वाराह नगर' का मठ स्थापित हुआ । जनवरी १८८७ ई० मे नरेन्द्र ने अनुष्ठानिक रीति से विधवत् विरजा होम करके सन्यास ग्रहण किया । नरेन्द्रनाथ ने उस समय विदिषानन्द अथवा सच्चिदानन्द नाम ग्रॅहण किया था । अमेरिका जाते समय उन्होंने विवेकानन्द नाम ग्रॅहण किया । त्याग तपस्या एव कठोरता से पूर्ण वाराह नगर मठ का जीवन रामकृष्ण सघ के इतिहास का एक उज्ज्जवल इतिहास है । उस समय वहाँ भोजन आदि की कोई स्थायी व्यवस्था न थी । उन जैसे नवयुवको को कोई आसानी से भिक्षा भी नही देता था । इसलिए हर दिन भर पेट भोजन भी नही मिल पाता था । आगें चल कर स्वामी विवेकानन्द किस्सा सुनाते हुए कहते है – "वाराह नगर में ऐसे दिन बीते है जब खाने के लिए कुछ भी नही रहता, कुछ दिन तक नमक और भात ही चलता । पर उस ओर किसी का ध्यान भी नही था । उस समय जब हम ध्यानादि के प्रबल प्रवाह मे उतरा रहे थे । अहा ! कैसे विलक्षण दिन थे वे,वह कठोरता देखने पर भूत भी भाग जाते-- मनुष्य की तो बात ही क्या ।।"[१]

वराह नगर मठ को क्रमश एक स्थायी रूप लेते देख कर स्वामी जी ने कुछ निश्चिन्तता की साँस ली । उनके गुरुभाई अब तीर्थ - पर्यटन को जाने लगे । स्वामी जी को भी अपने अन्तर से विवेक का आवाहन सुनाई दे रहा था । वे जान गये थे कि समस्त विश्व मे उथल - पुथल मचा देने वाली एक विराट घटना उनकी प्रतीक्षा कर रही है । श्री रामकृष्ण ने उन्हें जिस कार्य का निर्देश दिया था उसके सार्थक रूपायन के लिए वे गम्भीर रूप से विचार करने में मग्न हो गये ।

अब स्वमीजी भारतके विभिन्न स्थलों का भ्रमण करने निकले । विभिन्न स्थानों मे जाने के बाद सर्वत्र जनसाधारण की निर्धन और असहाय दशा देख कर स्वामी जी का मन वेदना से भर उठा । देश के मेरुदण्डस्वरूप राष्ट्र के प्राणस्वरूप भारत के भविष्यरूप इन दीन - जन नारायणो की शोचनीय परिस्थिति को सुधारने की दशा में वे राजाओं एव राज्यकर्मचारियो को

---

१ स्वामी विवेकानन्द सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ३०

प्रोत्साहित करने लगे। मानव पीडा और व्यथा को केन्द्रित करके उन्होने अपनी समस्त शक्ति व चेष्टा, नर - नारायण की सेवा मे लगा दी। उन्होंने कहा था - "मै एक ऐसा धर्म चाहता हूँ, जो हममे आत्मविश्वास एव राष्ट्रीय स्वाभिमान का बोध जगा दे तथा हममे दीन - दु खियो को अन्न व शिक्षा देने की तथा हमारे चारो ओर फैले, दु ख और कष्ट को दूर करने की शक्ति भर दे। यदि ईश्वर लाभ करना चाहते हो तो पहले मनुष्य की सेवा करो।" स्वामी जी के उपदेशो से अनुप्राणित होकर खेतडी नरेश ने अपने राज्य में जनता की उन्नयन के लिए विविध प्रकार की व्यवस्था की। मद्रास के प्रमुख नागरिक स्वामी विवेकानन्द को शिकागो धर्ममहासभा मे हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि बना कर भेजना चाहते थे, इसके लिए वहॉ के लोगो ने बडे उत्साह के साथ धन सग्रह का कार्य किया। यात्रा की तैयारी पूरी हो रही थी कि खेतडी नरेश के विशेष अनुरोध पर (दो वर्ष पहले स्वामीजी ने खेतडी के सन्तान हीन राजा को पुत्र होने का आशीर्वाद दिया था। राजा को पुत्र लाभ हुआ था।) राजपुत्र को आशीष देने उन्हे खेतडी जाना पडा। आर्शीवाद देने के बाद विवेकानन्द जहाज पकडने बम्बई गये। वहॉ उनके प्रिय शिष्य आलासिगापेरुमल व मुशी जगमोहन लाल भी साथ गये थे। ३१ मई १८९३ ई० को जहाज पर बैठने पर मातृभूमि के लगाव से उनका हृदय व्यथित हा गया। डेक पर खडे होकर वे अपलक भारत की तट भूमि को निहारते रहे– मेरा महिमामय भारतवर्ष। हाय। पराधीन, पद - दलित भारत भूमि। भारत की सैकडो चिन्ताएँ उनके मानस पटल पर छा गयी थीं।

अनेक प्रचड बाधाओ के होते हुए भी वे शिकागो के धर्मसम्मेलन मे सम्मिलित हुए। उनके विदेश गमन के कई उद्देश्य थे, एक तो वे भारतवासियों के इस अधविश्वास को तोडना चाहते थे कि समुद्रयात्रा पाप है तथा विदेशियों के हॉथ से अन्न - जल ग्रॆहण करने से जात चली जाती है, दूसरे भारत के अग्रेजी पढे लिखे लोगों को वे दिखलाना चाहते थे कि भारतवासी अपनी आदर स्वय भले न करे परन्तु पश्चिम के लोग भारत से प्रभावित हो सकते हैं। रामकृष्ण के विश्व के सभी धर्मों की एकता के भाव को मूर्त रूप देने के लिए भी विवेकानन्द इस धार्मिक सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस सम्बन्ध में भारत से विदा होने के पूर्व उन्होने अपने गुरुभाई स्वामी तूरीयानन्द से कहा था -- "हरि भाई धर्म महासभा इसी (अपनी ओर इगित करते हुए) के लिए हो रही है। मेरा मन ऐसा ही कह रहा है शीघ्र तुम्हे इसका प्रमाण देखने को मिलेगा।"

११ सितम्बर १८९३ ई० का दिन धर्म जगत के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा, इसी दिन समग्र जगत मे विश्वबन्धुत्व का सूत्रपात हुआ था । भारत के वेदान्त धर्मके प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ने महान धर्म सम्मेलन मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया । शिकागो सम्मेलन मे स्वामी जी ने जिस ज्ञान, उदारता, विवेक और वाग्मिता का परिचय दिया उससे वहा के लोग मत्र मुग्ध हो उनके भक्त हो गये । प्रथम दिन तो विवेकानन्द को सबसे अत मे बोलने का अवसर दिया गया किन्तु उसके बाद सम्मेलन मे उनके जो भी दस बारह भाषण हुए वे भाषण सभा के अन्त मे ही दिये गये क्यों कि सारी जनता उन्ही का भाषण सुनने के लिए अन्त तक बैठी रहती थी । उनके भाषण पर टिप्पणी करते हुए 'द न्युयार्क हेराल्ड' ने लिखा था – "धर्मो की पर्लियामेन्ट में सबसे महान विवेकानन्द हैं । उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खडा होता है, ऐसे ज्ञानी देश के लिए धर्म प्रचारक भेजने की बात कितनी बेवकूफी है ।" इसी सम्बन्ध में भगिनी निवेदिता लिखतीं हैं - " शिकागो धर्ममहासभा में जब स्वामी जी ने अपना भाषण आरम्भ किया तो उनका विषय था - 'हिन्दूओ के प्राचीन धार्मिक विचार' पर जब उनका भाषण समाप्त हुआ तो आधुनिक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी । भारत की धर्म चेतना ने उनके द्वारा पश्चिम में अपने आप को प्रकाशित किया ।"[१]

इस प्रकार हिन्दुत्व को लीलने के लिए अग्रेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के रूप मे जो तूफान उठा था वह विवेकानन्द के हिमालय जैसे विशाल वक्ष से टकराकर वापस लौट गया । हिन्दू धर्म उनके इस प्रदेय पर उनकी याद उसी श्रद्धा से करेगी जिस श्रद्धा से वह 'व्यास' और 'वाल्मिकि' को याद करती है ।

विवेकानन्द की इस विजय पर सारे भारत मे उल्लास की लहर फैल गयी । दीनता और लॉछना से दबी भारत भूमि मे मानो आनन्द की सरिता प्रवाहित होने लगी । स्वामी जी की इस सफलता का प्रभाव हमारे प्रत्येक राष्ट्रीय उद्यम और कर्म पर पडा । केवल धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र मे ही नही वरन् आर्थिक और सामाजिक जीवन पर भी उसका प्रभाव बडा ही व्यापक हुआ था और उसी दिन से हमारा राष्ट्र सर्वतोमुखी विकास के पथ पर आगे बढ चला ।

---

१ स्वामी विवेकानन्द सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ४९

रोमॉरोला ने इस जागरण की ओर इगित करते हुए लिखा है – "सर्वप्रथम यहीं से भारत की उन्नति शुरू हुयी । उसी दिन से दीर्घकाय कुम्भकर्ण की नीद टूटने लगी । विवेकानन्द के निधन के तीन साल बाद नयी पीढी ने, जो बगाल का विप्लव तथा तिलक एव गॉधी का आन्दोलन शुरू होते देखा, वह तथा वर्तमान भारत के सगठित जन आन्दोलन, विवेकानन्द के ही सशक्त आवाहन के फल हैं ।" [1] स्वामी विवेकानन्द भारतीय जन जागरण के ऋत्विक है – स्वाधीनता सग्राम के अग्रदूत हैं ।

शिकागो विश्वसम्मेलन के कारण अज्ञात और अख्यात स्वामी विवेकानन्द विश्वबन्द्य हुए । जिस हिन्दूधर्म को मूर्तिपूजक कहा गया था, जिसे विश्व धर्म सम्मेलन में निमत्रण भी नही भेजा गया था, उसी हिन्दू धर्म के बिन बुलाये प्रतिनिधि के रूप में धर्म सम्मेलन में उपस्थित हो विवेकानन्द ने सनातन वैदिक धर्म के लिए सबसे उच्च सिहासन प्रदान कराया । इसीलिए इन्हे 'साइक्लोनिक हिन्दू माक'(तूफानी हिन्दू सन्यासी) और 'लाइटनिंग ओरेटर' (विद्युत वक्ता) आदि उपाधि दिये गये ।

उनके भारत आगमन की बात सुनकर पूरा राष्ट्र उनकी प्रतीक्षा अधीरता से कर रहा था । सारे देश में पूज्य विवेकानन्द के स्वागत की तैयारियॉ होने लगी । मार्ग मे कई जगह रुकने और व्याख्यान देने के बाद वे कोलम्बो होते हुए मद्रास पहुॅचे और अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा - "दीन - दु खियों और पीडितों, आर्तो के भीतर शिव की पूजा करो ।" इसके बाद रामनाद के राजा और अन्य उत्साही जन स्वामी जी की गाडी के घोडे खोल कर उसमे स्वय जुत गये । उमडते जनसमूह का प्रेम देखकर वे अभिभूत हो गये ।चारो ओर जय - जयकार और हर्ष ध्वनि के कारण वे भाषण नहीं दे सके ।

मद्रास से कलकत्ता पहुॅचने पर वहॉ के नागरिकों ने विवेकानन्द की विराट अभ्यर्थना की जिसके उत्तर में उन्होने कहा - श्री रामकृष्ण के चरणों में बैठ कर शिक्षा ग्रॅहण करने पर ही भारत का पुनर्जागरण होगा । उनके आवाहन ने सबका हृदय छू लिया । लगातार वेदान्त प्रचार और जनसेवा के कार्यों में उन्होंने अपनी सारी शक्ति व्यय कर दी, फलत उनका स्वास्थ्य टूटता गया ।

---

१ स्वामी विवेकानन्द सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ५१

चिकित्सको के परामर्श पर स्वास्थ्य सुधार के लिए उन्हे दार्जिलिग जाना पडा। पर वे ज्यादा दिन वहॉ नही रुके। इसका कारण बताते हुए उन्होने कहा - एक ही चिन्ता मेरे हृदय में आग की तरह धधक रही है, वह यह है कि भारत के जनसाधारण की उन्नति कैसे हो ?'' इस चिन्ता ने मानो उन्हे अशात कर डाला। आलम बाजार मठ लौटकर वे फिर सघटन के कार्य मे लग गये।

सगठन के बिना किसी भी कार्य को स्थायी रूप नही दिया जा सकता। इसलिए उन्होने धर्म प्रचार और जनसेवा कार्य का विस्तार करने के लिए सन्यासी और गृहस्थ को साथ लेकर रामकृष्ण मिशन नाम से एक सघ का गठन किया। इस सघ का उद्‌देश्य और आर्दश था - ''आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'' जन साधारण की सेवा और अपना कल्याण साधना। नर नारायण की सेवा का उद्‌देश्य लेकर स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित की गयी यह सस्था बेलुडमठ के सन्यासीयों द्वारा सचालित होकर आज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के रूप में अतीव विस्तार को प्राप्त हो रही है।

पर्याप्त सावधानी के बाद भी स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगडता जा रहा था। डाक्टरो की सलाह पर वे पुन दार्जिलिग गये। कुछ दिनों बाद ही उन्हें कलकत्ते में प्लेग फैलने का समाचार मिला। वे कलकत्ता लौट कर प्लेग निवारण के कार्य मे जुट गये। शीघ्र ही उनके द्वारा स्वय सेवक दल का गठन, स्वास्थ्य रक्षा की नियमावली और बस्तियों की सफाई का कार्य शुरू हो गया।

निरन्तर स्वास्थ्य बिगडने के कारण वे अचानक बेलुडमठ आ पहुँचे। वे समझने लगे कि मेरी लीला अब समाप्त होने वाली है, इसलिए वे धैर्य के साथ मृत्यु का साक्षात्कार करने को तैयार हो गये। उस समय उनके मन मे एक अद्‌भुत भाव प्रकट हो रहा था। वे सोच रहे थे - 'यदि एक और विवेकानन्द होता तो समझ पाता कि विवेकानन्द क्या कर गया है।' मात्र उन्तालीस वर्ष की अवस्था में, ४ जुलाई १९०२ ई० को उनके छोटे किन्तु उद्‌देश्य पूर्ण जीवन का अन्त काल भी असमय आ पहुँचा। उनकी आत्मा, देह पिंजर से मुक्त होकर असीम में विलीन हो गयी। पर वे जगत के लिए छोड गये - 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य, वरान्निबोधत' का अमर सन्देश, आत्मा के अमरत्व व विश्वबधुत्व का महान विचार, 'जीव ही शिव है' की विराट सकल्पना, जो भारत के ही नही अपितु पूरी मानवता के उत्थान के लिए आज भी अपनी उपादेयता सिद्ध कर रही है। इस कार्य के लिए युग - युग तक उनका स्मरण किया जाता रहेगा।

द्वितीय अध्याय

रामकृष्ण – विवेकानन्द भावधारा

(क) धार्मिक भावधारा

(ख) राष्ट्रीय भावधारा

(ग) सामाजिक भावधारा

(घ) आर्थिक भावधारा

रामकृष्ण – विवेकानन्द भावधारा

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के भारतीय परिवेश में व्याप्त धार्मिक वितण्डावाद, राजनैतिक उठापटक, सामाजिक विखण्डन एव वैचारिक विखराव के कारण आम जनता दिग्भ्रमित हो रही थी। ऐसी गहन हताशा, दु ख एव घोर अवसाद के क्षणों मे एक ऐसे सत्पुरुष का आविर्भाव हुआ जिनमे अनुभव का स्पष्ट और विस्तृत सागर, अनूभूति की गहन तीब्रता एव चिन्तन का नूतन स्वरूप विद्यमान था, जिन्हे 'रामकृष्ण देव' के नाम से जाना जाता है।

तात्कालिक परिस्थितियों मे धर्म का राजनीतिक एव साम्प्रदायिक हथियार के रूप मे विकृत प्रयोग किया जाने लगा था। प्रत्येक व्यक्ति एव सम्प्रदाय अपने धर्म को श्रेष्ठ एव अन्य को छोटा सिद्ध करने मे तत्पर था । धर्म एव ईश्वर विषयक अवधारणा मूल तत्वो से भटक कर वाह्य आडम्बरो एव विविध क्रियाकलापो में उलझी हुई थी। ईश्वर है या नही है , सगुण साकार है या निर्गुण निराकार है, मूर्तिपूजा श्रेष्ठ है या भावपूजा श्रेष्ठ है आदि वाद विवादो में जनमानस दिग्भ्रमित था। धार्मिक सक्रमण के इस काल में श्री रामकृष्ण ने धर्म को जटिल एव दुरूह मान्यताओ से बाहर निकाल कर अत्यन्त सरल रूप मे जन - जन तक प्रसारित कर दिया ।

रामकृष्ण देव के मन में किसी धर्म और सम्प्रदाय के प्रति द्वेष नही था । इनका किसी भी आन्दोलन तथा खण्डन - मण्डन से कोई सरोकार नही था । ये किसी नये धर्म की स्थापना के इच्छुक नही थे । अपनी बात प्रचारित करने के लिए न तो कभी आश्रम से बाहर गये और न ही कोई भाषण दिया । युग के अन्य धर्मनेताओ की तरह इन्होंने धार्मिको के मन मे कभी भी यह डर नही पैदा किया कि - तुम्हारा धर्म खतरे में है । इस युग मे चारो तरफ परिर्वतन, परिष्कार तथा नये प्रयोगो के द्वारा नये आविष्कार हो रहे थे । धर्म मे मूर्तिपूजा के विरोध की लहर सी चल गयी थी । पुरानी पम्परायें तोडी जा रही थीं और नये विचारों को अपनाया जा रहा था । परिर्वतन के ऐसे वातावरण में रामकृष्ण वही पुरानी सरल - सहज पूजा पद्वति (मूर्ति पूजा) की स्थापना करते हुए दीखते हैं ।

रामकृष्ण देव ने सभी धर्मो के मूल तत्व को अपने जीवन में साकार करके यह अनुभव किया कि अलग-अलग धर्म व मत तो ईश्वर तक पहुँचने के अलग अलग रास्ते हैं, जिन

पर चल कर अन्तिम लक्ष्य (मुक्ति) पर पहुँचा जा सकता है । धर्म के रास्ते अलग अलग होने पर भी वे एक ही उद्देश्य की पूर्ति कराते हैं । इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने समय समय पर विभिन्न धार्मिक मतो व पद्धतियों की साधना के क्रम में कुछ काल तक ईसाई मत का अभ्यास किया और कुछ काल तक सच्चे मुसलमान की तरह इस्लाम की साधना में रत रहे । इसके पूर्व हिन्दू धर्म की विभिन्न पद्धतियों का भी अवलम्बन करके, जिसमे कभी राधा (स्त्री) बनकर कृष्ण को रिझाते रहे, तो कभी निर्गुण निराकार में एकाकार हो गये । रामकृष्ण नें यह सिद्ध किया कि धर्मो के बाहरी रूप भले ही अलग अलग हो परन्तु उनका मूल तत्व एक ही है, इसमे से मनुष्य किसी एक को चुन सकता है और आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त कर सकता है । जब तुम अनुभूति की ऊँचाई पर हो, तब यह सोचना व्यर्थ है कि तुम हिन्दू हो या मुसलमान । इस तरह रामकृष्ण देव धार्मिक विखण्डन की भावभूमि पर सर्व धर्मसमभाव की अजस्रधारा प्रवाहित करते हैं ।

ईश्वर के सम्बन्ध मे उनका सरल एव स्पष्ट विचार था कि,- "ईश्वर है और जीव का चरम लक्ष्य ईश्वरकी प्राप्ति है ।"इन्होने जटिल, दुरूह आडम्बर युक्त व हिंसात्मक उपासना पद्धति का सदैव विरोध किया और केवल शुद्ध समर्पण भाव के द्वारा ही ईश्वर को पाने का सरल एव सहज उपाय जन-जन को बतलाया । रामकृष्ण देव कहते हैं कि पुस्तक एव शास्त्र ईश्वर के पास पहुँचने का मार्ग बताते हैं । इसे समझ लेने पर, तब स्वय अपना कार्य करना चाहिए । बहुत से श्लोक एव शास्त्र समझने मात्र से ही क्या होगा, जिसकी आसक्ति ससार और काचन - कामिनी मे है उसका शास्त्र व श्लोक सब ब्यर्थ है । जैसे पचाग में खूब वर्षा लिखी है परन्तु उसे निचोडने से एक बूद भी पानी नहीं निकलेगा । पण्डित लोग बातें तो बहुत ऊँची-ऊँची करते हैं परन्तु उनकी दृष्टि काचन - कामिनी, देह - सुख एव रूपये - पैसे पर टिकी रहती हैं । जैसे गीध तो बहूत ऊँचे उडते हैं, परन्तु उनकी नजर मरघट पर और सडे मुर्दे पर ही रहती है । इस तरह हम देखते हैं कि वे धार्मिक उपलब्धि के लिये वाह्य पदार्थो की उपेक्षा करके सरल एव समर्पण भाव से साधना करने पर बल देते हैं।

रामकृष्ण देव अपने वेदान्त दर्शन के द्वारा ब्रहम्, जीव, जगत एव माया सभी की सत्ता स्वीकार करते हैं एव सभी के उचित सयोजन की आवश्यकता पर बल देते हैं । 'बेल' का

उदाहरण देते हुए वे बतलाते हैं कि जैसे एक बेल के वजन को जानने के लिए उसके खोपडे, बीज,गूदे तीनो को तौलना होगा। खोपडे और बीज को निकालकर लोग गूदे को ही असल चीज समझते हैं परन्तु विचार करके देखा जाये तो जिस पदार्थ का गूदा है उसी का खोपडा भी और उसी का बीज भी है। पहले नेति-नेति करके समझना पडेगा जीव नेति, जगत नेति इस तरह का विचार करना पडेगा कि ब्रह्म ही वस्तु है और सब अवस्तु तब अनुभव होगा कि जिसका गूदा है, खोपडा और बीज भी उसी का है अर्थात जिसे ब्रह्म कहते हैं उसी से जीव और जगत की भी सत्ता है। जिसकी नित्यता है, लीला भी उसी की है। इसे ही 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहते हैं। अपनी इष्ट देवी 'काली' के सम्बन्ध मे वे कहते हैं कि ''जो ब्रह्म है वही काली है। 'काली' आद्या शक्ति हैं, जब वे निष्क्रिय रहती हैं, तब उन्हे ब्रह्म कहते हैं और जब वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती हैं तब उन्हे शक्ति कहते हैं, काली कहते हैं। ब्रहम और काली अभेद हैं, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अग्नि को सोचते ही उसकी दाहिका शक्ति, अग्नि को सोचते ही उसकी दाहिका शक्ति की चिन्ता की जाती है। काली को मानने पर ब्रह्म को मानना पडता है और ब्रह्म को मानने पर काली को। ब्रह्म और शक्ति अभेद है, मैं उन्हे ही 'शक्ति'- 'काली' कहता हूँ।

ईश्वर के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध मे उनका कहना था कि जो आदमी सदा ही ईश्वर का चिन्तन करता है वही समझ सकता है कि ईश्वर का स्वरूप क्या है ? वही जानता है कि ईश्वर अनेक रूपो में दर्शन देता है। वे सगुण भी है और निर्गुण भी। उस बहुरूपिये के अनेक रग है और कभी कोई रग नहीं रहता, दूसरे आदमी तर्क - वितर्क करके केवल कष्ट ही उठाते हैं।

साधना से समाधि के उच्च शिखर पर पहुँच कर अपने स्व में स्थित होने के बाद भी रामकृष्णदेव समाज का बहिष्कार कर एकान्तवासी या हिमालयगामी नहीं हुये। ब्रह्मनिष्ठ होने के बाद भी उन्होंने समाज एव मानवीय मूल्यो की उपेक्षा नही की। सामान्य ज्ञानियो की तरह इन्होने माँ, पत्नी एव परिवार की कभी भी उपेक्षा नहीं की। साधारण जन की पीडा एव वेदना उन्हें उद्विग्न कर देती थी। जनमानस के दु ख से वे द्रवित हो उठते थे। ऐसे विलक्षण सत थे कि दुर्लभ ब्रहम ज्ञान को प्राप्त करने के बाद भी 'जीव' एव 'जीवन' के प्रति गहरी सम्वेदना रखते थे।

'जीव ही शिव है', 'नर ही नारायण है' की विराट चेतना से युक्त होकर वे जन-जन

में ईश्वर का दर्शन करते थे । उनका मानना था कि दीन - हीन एव गरीब की उपेक्षा करके ईश्वर की प्राप्ति नही की जा सकती । इसकी पुष्टि करते हुये वे कहते हैं,- ''गरीब पीडित एव असहाय की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। ईश्वर इनके रूप में प्रत्यक्ष विद्यमान है। तुम इसकी सेवा क्यो नहीं करते ?''

ससार के असहायों एव गरीबो के प्रति रामकृष्ण के मन मे जो अगाध प्रेम था उसे इस उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है । एक बार वे मथुर बाबू (रानी रासमणि के दामाद जो रामकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे) के साथ तीर्थ भ्रमण के लिए जा रहे थे । गाडी से उतर कर सभी एक गाँव के रास्ते से हो कर वैद्यनाथ शिव के दर्शन करने चले जा रहे थे । रास्ते के दोनो ओर बसे गरीब आदिवासी स्त्री पुरूषो की दशा देख कर श्री रामकृष्ण का मन करुणा से द्रवित हो उठा और उनकी आँखे सजल हो गयीं । वे उन्हीं रूखे बालों, धसे आखें और दुर्बल नगी देह वाले निर्धन आदिवसियो के बीच खडे हो गये और मथुर बाबू से कहा ''तुम तो मॉ के दीवान हो । मॉ के दुखी सन्तानो की दशा देख रहे हो ? पहले तुम इन्हें सिर में लगाने के लिए तेल, एक - एक नयी धोती और भर पेट भोजन का बन्दोबस्त करो ।''[१] उन लोगों की सख्या सैकडों मे थी । अत पहले तो मथुर बाबू ने कुछ आपत्ति करते हुए कहा - ''बाबा ! तीर्थों में बहुत खर्च करना पडेगा और यहाँ लोगो की सख्या काफी दिखती है । इन सभी को खिलाने पहनाने के लिए तो बहुत से धन की आवश्यकता होगी । अत आगे चल कर रुपयों की कमी पड सकती है ।''[२] इस पर श्री रामकृष्ण ने सजल ऑखों से मथुर बाबू को झिडकी देते हुए कहा - ''दूर हो जा मूर्ख ! मुझे तेरे काशीधाम नही जाना है । मैं इन्ही लोगों के साथ रहूँगा ! इनका कोई भी नही है । मैं इन्हे छोड कर कहीं नहीं जाऊँगा ।''[३] और वे दीन सथालों के बीच जा बैठे । हार मान कर मथुर बाबू ने अन्न वस्त्रादि के द्वारा दरिद्र नारायणो की सेवा की व्यवस्था की । भूँखे नगे लोगो को सतुष्ट और आनन्दित देखने के बाद ही श्री रामकृष्ण वैद्यनाथ से काशीधाम चलने के लिए आगे बढे ।

रामकृष्ण ने मानव सेवा के इसी उदात्त भाव की ओर अपने शिष्य विवेकानन्द को

---

१ श्री रामकृष्ण सक्षिप्त जीवनी व उपदेश, पृ० ३९
२ वही,
३ वही,

प्रेरित करते हैं । समाज सेवा का कैसा अनुराग है और कैसे गुरू हैं जो ब्रह्म स्थित रहने की इच्छा रखने वाले शिष्य को धिक्कारते हुए सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं । ससार मे सर्वत्र व्याप्त दु ख और क्लेश को देख कर विवेकानन्द का मन वैरागी हो गया । उन्होंने रामकृष्ण देव से कहा- 'गुरुदेव ! मैं शुकदेव की तरह कई - कई दिन तक समाधि मे रहना चाहता हू । केवल शरीर रक्षा के लिए कुछ देर नीचे आकर पुन उसी भाव मे चला जाना चाहता हूँ।'' शिष्य के इस स्वकेन्द्रित विचार पर रामकृष्ण ने उन्हें लज्जित करते हुए कहा कि,- ''छि छि तू इतना बडा आधार है, तेरे मुँह से यह बात! मैने कहाँ सोचा था कि तूँ विशाल वटवृक्ष की भाँति होगा, जिसकी छाँव मे हजारो लोग आश्रय पायगे। पर तू केवल अपनी मुक्ति की बात करता है।''[१] गुरू के मुख से ऐसी ओज पूर्ण वाणी सुनकर विवेकानन्द का मन ग्लानि से भर उठा और उसी क्षण उन्होने जीवन पर्यन्त मानव सेवा का कठोर व्रत धारण कर लिया तथा मृत्यु पर्यन्त इस व्रत का निर्वहन करते रहे। इस तरह रामकृष्ण देव पूर्णतया समाज से जुडे सन्त थे एव समाज सेवा को ईश्वर की पूजा के बराबर मानते थे ।

रामकृष्ण देव सभी मनुष्यो मे देवत्व की भावना रखते थे । वे किसी भी स्तर पर एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के बीच भेदभाव को स्वीकार नही करते थे । ऊँच-नीच, भेद-भाव, जाति-पाति एव छुआ-छूत के वे सर्वथा विरोधी थे । नीच जाति की स्त्री को भिक्षा माता बनाकर उन्होंने व्यावहारिक रूप से इसे जनमानस के समक्ष प्रस्तुत भी किया । रामकृष्ण के जन्म के समय धनी नामक लुहारिन ने प्रसूति गृह मे सहायता के बदले उनसे अपनी भिक्षा माता बनाने का अनुरोध किया था । समय आने पर बडे भाई ने इसका विरोध किया, इस पर रामकृष्ण ने गभीरता पूर्वक कहा,-''मैं इसे वचन दे चुका हूँ और अपने वचन की रक्षा करूँगा, क्यो कि सत्यभ्रष्ट, मिथ्यावादी व्यक्ति को ब्रह्मणोचित यज्ञोपवीत धारण करने का कोई अधिकार नही है ।''[२] यहाँ हम देखते है कि बचपन से ही उनमे सत्य और नैतिकता का उदात्त भाव विद्यमान था तथा वे जाति व वर्ण व्यवस्था के बन्धनो को नहीं मानते थे ।

बचपन में वे निम्न जाति वालों के घर जाकर बिना किसी भेद भाव के प्रह्लाद

---

१ श्री रामकृष्ण सक्षिप्त जीवनी व उपदेश, पृ० ७७
२ वही, पृ० ८

चरित', 'ध्रुव चरित' तथा रामायण आदि का पाठ एव भजन कीर्तन किया करते थे, जिससे सभी जाति व वर्ण के लोग उनके प्रति अगाध प्रेम व सम्मान का भाव रखते थे। छोटी जाति के लोगो के घर ये बिना रोक - टोक के आया जाया करते थे। वे उनके साथ घुल मिल गये थे।

नारी जाति एव स्त्री समाज के प्रति रामकृष्ण के मन मे अगाध प्रेम एव श्रद्धा का भाव था। उन्होने कभी भी नारी जाति को हेय व कमजोर दृष्टि से नहीं देखा। अन्य धर्माचार्यों की तरह ये नारी को न तो पतन एव पाप का कारण मानते हैं और न ही उन्नति एव प्रगति मे बाधक। सभी नारियो मे वे जगन्माता का रूप देखते थे। गृहत्याग कर ब्रह्मस्थ होने के बाद भी ये अपनी माँ एव पत्नी के प्रति अत्यन्त उच्च विचार रखते थे। एक बार रामकृष्ण ने अपनी पत्नी माँ सारदा से कहा था "तुम्हारे अन्दर मैं सच - मुच सर्वत्र विद्यमान आनन्दमयी माँ के रूप का दर्शन करता हूँ।"

नारी होने परभी 'भैरवी ब्राह्मणी' के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए उनके अधीन रह कर कई दिनो तक वे साधना मे रत रहे एव उनके अन्दर गुरू भाव का दर्शन करते थे। यह एव धनी लुहारिन को अपनी भिक्षा माता बनाना नारी जाति के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा एव सम्मान को व्यक्त करना है।

रामकृष्ण देव 'कचन' (भौतिक पदार्थ) एव'कामिनी'(कामना बढाने वाली) को जीवन के उत्थान मे, पतन का कारण मानते थे। ये ऐसे दुर्गुण है जिससे व्यक्ति अधोगति को प्राप्त होता है। धन - दौलत, यश - वैभव तथा अन्य ससार के पदार्थो मे उनका किचित मात्र भी राग न था। ससार मे रह कर भी वे पॉकाल मछली"[१] की तरह सासारिक कीचड से पूर्णत मुक्त थे। परमार्थ एव परोपकार उनका सकल्प था। उनका मानना था कि "मनुष्य के जीवन का ध्येय, धन नहीं होना चाहिए। धन से क्या मिलेगा ? भोजन वस्त्र और मकान मगर इससे ऊपर की वस्तु धन से नहीं खरीदी जा सकती। इसलिए जीवन का उद्देश्य धन नहीं हो सकता। केवल धन और भौतिकता से मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।"

रामकृष्ण का मन बचपन से ही सासारिक पदार्थो की प्राप्ति के प्रति विरक्त था।

---

१ पॉकाल मछली - 'कीचड़ में रहकर भी कीचड के प्रभाव से मुक्त मछली

बाल्यकाल मे पढाई मे मन न लगाने पर बडे भाई रामकुमार के रुष्ट होने पर प्रत्युत्तर में रामकृष्ण ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा - ''यह दाल चावल इकठ्ठा करने वाली विद्या सीखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है । मैं तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हू जिससे सच्चा ज्ञान मिल सके ।''[१] छोटे भाई के मुँह से ऐसी बाते सुन कर रामकुमार आवाक रह गये विद्या सीखने को यह तो दाल चावल इकट्ठा करने का साधन बतलाता है । समय आने पर इसे समझा लूँगा । ऐसा सोच कर वे उस समय शात रह गये । भला उनकी साधारण बुद्धि यह कैसे देख सकती थी कि भविष्य के गर्भ मे क्या है ।

विभिन्न धर्मों के साधना के कम में रामकृष्ण देव ने अपने शरीर को प्रयोगशाला बना दिया । साधनाओ की अनुभूति परक परीक्षण एव निरीक्षण के द्वारा जिस नास्तिक ज्ञान को उन्होने प्राप्त किया उसे सरल सुबोध तथा स्पष्ट भाषा मे जन जन को प्रदान करना चाहते थे । किन्तु अनवरत साधना और कठोर तपस्या के कारण उनका शरीर जर्जर हो चुका था जिससे वे अपने ज्ञान का प्रसार करने मे अक्षम थे । इसके लिए उन्हें एक योग्य और कर्मठ शिष्य की आवश्यकता थी। कालातर मे इसकी पूर्ति विवेकानन्द के रूप मे होने से उनके ज्ञान एव अनुभव से पूरा विश्व परिचित होकर लाभन्वित हुआ।

रामकृष्ण के विचारो की नीव पर खडे होकर विवेकानन्द ने सामाजिक एव धार्मिक मूल्यों की एक ऐसी गगनचुम्बी इमारत बनायी जो पूरे जनमानस की आस्था एव विश्वास का केन्द बन गया । रामकृष्ण के सिद्धातो की महत्ता भारत मे ही नहीं अपितु विदेशो में भी स्थापित करने में विवेकानद पूर्णत सफल रहे ।

रामकृष्ण और विवेकानद की विचारधारा को अलग अलग करके नहीं देखा जा सकता। विवेकानद के दर्शन और सिद्धात के मूल मे रामकृष्ण देव का ही दर्शन और सिद्धात विद्यमान है कहीं - कहीं वाह्य कलेवर अवश्य बदल गया है, परन्तु बीज वही है । कहा जाता है कि रामकृष्ण सूत्र हैं तो विवेकानद उनके भाष्य ' रामकृष्ण गगोत्री हैं तो विवेकानद गगा' विवेकानद

---

१ श्री रामकृष्ण सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ० ११

रामकृष्ण रूपी गगा का भागीरथ बन कर उनके विचारो को पूरी अवनि मे प्रवाहित करने का पुनीत कार्य किया । 'रामकृण देव एव 'स्वामी विवेकानद शरीर से दो होते हुये भी विचार से एक ही हैं। रामकृष्ण की साधना से प्राप्त अनुभूतियों से व्यावहारिक सिद्धात निकालकर विवेकानद ने मूलत अपने गुरू के ही विचारों को अपनी वाणी प्रदान की है । अस्तु हम रामकृष्ण एव विवेकानद की भाव धारा को अलग करके नही समझ सकते। आगे हम रामकृष्ण एव विवेकानद के विचारो को एक ही भावधारा के रूप मे अवलोकन करेगे ।

भारत एव विदेशों में अपनी साधुता, स्वदेश भक्ति सम्पूर्ण मानव जाति के आध्यात्मिक उत्थान एव प्राच्य तथा पाश्चात्य के मध्य भातृभाव के सार्वभौमिक सन्देश के लिए विख्यात स्वामी विवेकानद मूलत एक ओजस्वी पुरुष थे,जिन्होंने सर्वोच्च सत्य का ज्ञान प्राप्त किया था । यह उनके व्यक्तित्व का एक असाधारण पक्ष था । इसके अतिरिक्त वह एक देशभक्त (साधारण देश भक्तो से भिन्न) सन्यासी थे वे परम्परा से हटकर सक्षम समाज सुधारक भी थे ।

आधुनिक युग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण मे हिन्दू धर्म को आवश्यकता थी एक ऐसे चट्टान की जहॉं वह लगर डाल सके, आवश्यकता थी एक ऐसी प्रामाणिक वाणी की जिसमे व्यक्ति स्वय को पहचान सके, विवेकानद के शब्दों व कार्यों में हिन्दू धर्म को यह वरदान उपलब्ध हो गया ।

अपने गुरू श्री रामकृष्ण की अनुभूतियो के परिप्रेक्ष्य मे धर्म दर्शन व वेदात के भव्य सन्देश का प्रचार करना उनके जीवन का उद्देश्य था आगे हम रामकृष्णदेव स्वामी विवेकानद की भाव धारा का धार्मिक,राष्ट्रीय सामाजिक एव आर्थिक भागो में बॉट कर अवलोकन करेगे ।

(क) धार्मिक भाव धारा—

1 धर्म

विवेकानद की दृष्टि से धर्म केवल वाह्य आडम्बर, क्रिया कलाप मत व सम्प्रदाय नहीं है अपितु उत्थान, विकास एव जीवन निर्माण की कुजी है । वे धर्म को आत्म

साक्षत्कार से जोड कर देखते हैं । तद्युगीन समाज अपने - अपने धर्म की स्थापना के लिए बल प्रयोग करने से भी नहीं चूक रहा था । प्रत्येक धर्म का अवलम्बी अपने धर्म को श्रेष्ठ एव दूसरे के धर्म को छोटा सिद्ध करने मे लगा था । हिन्दू मुसलमान व ईसाई एक दूसरे पर अपने धर्म को थोपने के नये - नये तरीके ढूॅढ रहे थे । भारत मे भी धार्मिक भाव अनेक मतों एव पथों मे विखर गया था, जहाँ पाश्चात्य प्रभावित नयी पीढी भारतीय धर्म एव मूर्ति पूजा के विरोध को ही अपना वौद्धिक विस्तार समझती थी । दूसरी तरफ ईश्वर में विश्वास न करने वाले नास्तिको की भी एक बडी फौज तैयार हो रही थी । इस युग का धार्मिक स्वरूप- सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत आदि विचारो मे उलझा हुआ था।

विवेकानन्द समय की आवश्यकता को देखते हुए धर्म की नयी व्याख्या करते हैं, जिसमे नयी पढी लिखी पीढी पुराने बुजुर्ग एव सभी मत पथ एव सम्प्रदाय के लोग अपनी आस्था व्यक्त कर सके । इस क्रम मे उन्होने सर्वप्रथम अपने गुरू रामकृष्ण की धार्मिक भावधारा को आधार बना कर सभी धर्मो में समन्वय स्थापित करने पर बल दिया । रामकृष्ण ने सभी धर्मो के तत्व को एक बताते हुए कहा था कि, ''अलग-अलग धर्म व मत तो ईश्वर तक पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं, जिन पर चल कर अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है ।'' उक्त विचार को विवेकानन्द ने अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा कि,- ''मै हिन्दू हूँ । मै अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा यही समझता हूँ कि मेरा कुँआ ही सम्पूर्ण ससार है । ईसाई भी अपने क्षद्र कुए मे बैठे हुए यही यमझता है कि सारा ससार उसी के कुऍ मे है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुए मे बैठा हुआ उसी को सारा बह्माण्ड मानता है ।''[१]

पश्चिम की महती सभा मे बोलते हुये उन्होंने कहा कि,- ''यदि एक धर्म सच्चा है, तब निश्चय ही अन्य सभी धर्म सच्चे हैं। अतएव हिन्दू धर्म उतना ही आपका है जितना मेरा । हम हिन्दू केवल सहिष्णु ही नहीं हैं, हम अन्य धर्मो के साथ- मुसलमानो की मस्जिद मे नमाज पढकर, पारसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रूस के सम्मुख नतमस्तक होकर उनसे एकात्म हो जाते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि निम्नतम जड पूजावाद से लेकर उच्चतम निर्गुण

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ६

अद्वैतवाद तक सारे धर्म समान रूप से असीम को समझने और उसका साक्षात्कार करने के निमित्त मानवीय आत्मा के विविध प्रयास हैं ।''[१] विवेकानन्द सभी धर्मो में समानता व एकरूपता का दर्शन करते हुए कहते हैं कि,-''यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा तो उस पर मै अपने हृदय के अन्तस्थल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बता देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा- 'सहायता करो, लडो मत'। 'पर-भाव ग्रहण, न कि पर भाव विनाश', 'समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह।''[२] धर्म के सम्बन्ध मे उनकी शिक्षा यह है कि सब के पीछे वही एक है, उसे गॉड, प्रेम, आत्मा, अल्लाह, जिहोवा- चाहे जो कहिये, वह है वही एक जो निम्नतम जन्तु से लेकर उच्चतम् मनुष्य तक सब जीवो को प्राणवान बनाता है।[३]

ससार के सभी धर्मो मे एकता व समरसता अतीत से ही चिन्तन का विषय रहा है। सभी धर्म के लोगों ने अपने-अपने धर्मो का व्यापक प्रचार प्रसार किया । शिकागों मे जो विश्व धर्म सम्मेलन हुआ था, उसका भी आशय था कि ससार में सर्वोत्तम धर्म कौन सा है? किन्तु उस सम्मेलन मे स्वामी जी ने जो विचार रखा उससे सब चमत्कृत हो उठे ।

उन्होने कहा कि - '' धार्मिक एकता कैसे हो इस बात की यहॉ काफी चर्चा हुयी है, परन्तु इस सम्बन्ध मे मेरा अपना मत है कि न तो ईसाई को हिन्दू बनना है और न ही हिन्दू को ईसाई । प्रत्येक धर्मावलम्बी का कर्त्तव्य है कि वह अन्य धर्मो का सार अपने भीतर पचा ले और अपनी वैयक्तिकता की पूर्णरूप से रक्षा करते हुए उन नियमों के अनुसार अपना विकास खोजे, जो उसके अपने नियम रहे है । आत्मा की भाषा एक है किन्तु जातियो की भाषा अनेक होती है । धर्म आत्मा की वाणी है। वही वाणी अनेक जातियों की विविध भाषाओ तथा रीति-रिवाजों में अभिव्यक्त हो रही है ।''[४] अपने गुरू रामकृष्ण की तरह विवेकानन्द भी धार्मिक एकता व समता के पोषक थे । इस कारण ईसाई व इस्लाम धर्म के प्रति भी उनका दृष्टिकोण उदार था । उन्होंने कहा कि,- ''यह तो कर्म का फल था कि भारत को दूसरी जातियों ने गुलाम बनाया, किन्तु भारत ने भी अपने विजेताओं

१ विवेकानन्द साहित्य - १ भूमिका से
२ वही, पृ० २७
३ वही - ४ पृ० २३३
४ युगनायक विवेकानन्द - २

में से प्रत्येक पर सास्कृतिक विजय प्राप्त की । मुसलमान भी इस प्रक्रिया के अपवाद नहीं हैं ।'' हिन्दू और इस्लाम के समन्वय पर स्वामी विवेकानन्द कहते हैं - ''हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि इसके दो धर्म, हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जायें । वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के सयोग से जो धर्म खडा होगा वही भारत की आशा है।''[१] विवेकानन्द का धर्म मानवता का धर्म है। वे कहते हैं ''मै उस धर्म और ईश्वर मे विश्वास नही करता जो विधवा के आँसू पोछने या अनाथ को रोटी देने में असमर्थ हो ।'' यहाँ हम देखते है कि उनका धर्म सामाजिक है । समाज की सभी गतिविधियो व विचारधाराओ को वे अपने धर्म मे समाहित कर लेते हैं । इनका धार्मिक बुनावट करोडो व्यक्ति के उद्धार, विकास व उन्नति के साँचे मे ढला है । वे कहते हैं कि खाली पेट धर्म नही हो सकता, पहले भूखो को रोटी दो, धर्म की बात बाद मे होगी ।

शुद्ध बनना व दूसरो की भलाई करना, सभी उपासना पद्धतियों का सार है । जो गरीब, निर्बल और पीडित मे 'शिव' को देखता है, वही वास्तव में शिव का उपासक है, पर यदि वह केवल मूर्ति में शिव को देखता है तो यह उसकी उपासना का आरम्भ मात्र है । निर्बल व गरीब की सेवा ही विवेकानन्द शिव की पूजा समझते थे । वे मानते थे कि नि स्वार्थता ही धर्म है । एक मनुष्य चाहे रत्नजडित सिहासन पर आसीन हो और सोने के महल मे रहता हो परन्तु वह पूर्णरूप से नि स्वार्थ है तो वह ब्रह्म में स्थित है और दूसरा मनुष्य चाहे झोपडी मे ही रहता हो, चीथडे ही पहनता हो पर यदि वह स्वार्थी है तो हम कहेंगे कि वह ससार में घोर रूप से लिप्त है । नि स्वार्थता ही धर्म है, परोपकार व सेवा ही धर्म है। जो जितना अधिक नि स्वार्थ है वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक, धार्मिक और शिव के समीप है और यदि वह स्वार्थी है तो चाहे वह सभी मदिरो के दर्शन कर लिए हो, चाहे सभी तीर्थों का भ्रमण कर लिया हो फिर भी वह धर्म व शिव से बहुत दूर है ।[२]

विवेकानन्द धर्म को शक्ति का मूल समझते थे। उनकी दृष्टि में धर्म की सार बात है ''शक्ति'' । कायर व शक्तिहीन का कोई धर्म नही होता। जो धर्म हृदय में शक्ति सचार न कर दे,

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३
२ विवेक ज्योति, वर्ष - ३१,अक - ३

चाहे वह उपनिषद हो या गीता अथवा भागवत, मै उसे धर्म नही मानता ।[१] सभी धर्मों मे विश्वास रखते हुए वे भारत के धर्म को विश्व के सभी धर्मों से श्रेष्ठ मानते है । एक ईसाई के प्रश्न पर कि क्या भारत मृत्यु को प्राप्त होगा ? इस पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा,–"तब तो सारी दुनिया से आध्यात्मिकता चली जायेगी । सारी नैतिकता पूर्णत नष्ट हो जायेगी । धर्म की सभी मधुर सहानुभूति लुप्त हो जायेगी । आर्दश के प्रति सारा प्रेम गायब हो जायेगा और उसके स्थान पर विलासिता तथा कामरूपी देवी-देवता आधिपत्य कर लेगे । जहाँ धन पुरोहित होगा और छल कपट जोर जबरदस्ती उसके विधि अनुष्ठान होगे तथा मानवता उसकी बलि होगी, पर ऐसा कभी नही हो सकता । सहने की शक्ति कार्य करने की शक्ति से अनन्तगुनी श्रेष्ठ है । प्रेम की शक्ति घृणा की शक्ति से सहस्रगुनी श्रेष्ठ है । इसलिए ये भारत भूमि भारत धर्म व भारतीय आर्दश ससार मे सबसे श्रेष्ठ हैं , जिसे कभी मिटाया नही जा सकता ।[२]

विवेकानन्द धर्म को वाह्य स्थूल रूप से न देखकर तात्विक दृष्टि से देखत हैं । वे धर्म को उत्थान व मुक्ति से जोडकर देखते है । धर्म, द्वेष, द्वन्द्व, विघटन नही है अपितु प्रेम, मिलन व प्रगति का द्योतक है। उनका धर्म, व्यक्ति व समाज के उत्थान का पर्याय था। वे कहते हैं - "दोष धर्म का नही, धर्म के गलत प्रयोग का है।" इस तरह वे धर्म की वैज्ञानिकता के पक्षधर हैं ।

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में उनका कहना है –"भारत वर्ष में मूर्ति पूजा कोई जघन्य बात नही है । वह व्यभिचार की जननी नही है, पर न वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है । उनके दोष अपने शरीर को उत्पीडित करने तक ही सीमित है । वे अपने पडोसियो का गला नही काटने जाते । एक हिन्दू धर्मान्ध भले ही चिता पर अपने आप को जला डाले पर वह विधर्मियों को जलाने के लिए 'इन्क्वीजिशन' की अग्नि कभी भी प्रज्ज्वलित नही करेगा ।"[३] (महासभा में स्वागत का उत्तर देते हुये) । यहाँ हम देखते हैकि हिन्दू धर्म की न्यूनताओ को भी विवेकानन्द ने उदत्त भाव बोध से जोड दिया, जिसमें हिन्दू धर्म का मानवीय रूप परिलक्षित होता है ।

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३ २९

२ स्वामी विवेकानन्द की वाणी पृ० ८

३ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० १९

विवेकानन्द अपने धर्म गौरव का उद्घोष करते हुए कहते है –'' मैं ऐसे धर्म का अनुयायी होने मे गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने ससार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनो की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मो के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नही करते, वरन समस्त धर्मो को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मो और देशों के उत्पीडितो और शरणार्थियो को आश्रय दिया है।''[१]

विवेकानन्द धर्म की तात्विक विवेचना करते हुये कहते हैं - '' धर्म बात करने की चीज नही है, न वह साम्प्रदायिकता है और न ही मतवाद विशेष। धर्म किसी सम्प्रदाय अथवा सस्था में आवद्ध होकर नही रह सकता। यह तो आत्मा के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है।''[२] धर्म के स्थूल और वाह्य तत्वों की आलोचना करते हुये वे कहते हैं - ''धिक्कार है उस राष्ट्र को, धिक्कार है उस धर्म को, धिक्कार है उस व्यक्ति को, जो धर्म के सार तत्व को भूल जाता है और अभ्यासवश वाह्य अनुष्ठानो को ही कसकर पकडे रहता है तथा उन्हें किसी तरह नही छोडता।''[३]

विवेकानन्द धार्मिक आडम्बर एव धर्मान्धता के सर्वथा विरूद्ध हैं। वे कहते हैं - ''अधविश्वास मनुष्य का महान शत्रु है पर धर्मान्धता तो उससे भी बढ कर है।''[४] धर्म के वाह्य एव आन्तरिक तत्वो का समन्वय स्थापित कर थोडे शब्दो में धर्म की मूल बात बताते हुये उन्होंने कहा - ''प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है। वाह्य एव अन्तर प्रकृति को वशीभूत करके इस अन्तस्थ ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मन सयम अथवा ज्ञान इनमे से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना व्रह्म भाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान, पद्धति, शास्त्र, मदिर अथवा अन्य वाह्य क्रिया - कलाप तो उसके गौण अग प्रत्यग मात्र हैं।''[५]

रामकृष्ण देव-स्वामी विवेकानन्द की धार्मिक भावधारा समझने के लिए इनके

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३
२ वही, - ७ पृ० २६०
३ वही - ४ पृ० ४१
४ वही - १ पृ० १६
५ विवेक ज्योति वर्ष - ३१, अक - ३ पृ० १५

दार्शनिक चिन्तन एव धर्म के व्यावहारिक पक्ष (नववेदान्त) की अवधारणा से अवगत होना अनिवार्य है । अस्तु इसी क्रम मे इनके दार्शनिक - चितन एव नववेदान्त की विवेचना की जा रही है -

(२) दर्शन

रामकृष्ण देव के 'आनन्दवाद' एव विवेकानन्द के 'बुद्धिवाद' के समन्वय से जो दर्शनिक भावधारा प्रवाहित हुयी उसका मूल, लोकमगल एव जनकल्याण की भावना में सन्निहित है । रामकृष्ण एव विवेकानन्द ने दर्शन के गूढ एव शुष्क विषय का सरस एव सरल रूपान्तरण कर जन मानस के समक्ष उपस्थित किया, जिसका विस्तार साधना से समाज तक फैला है । इससे यह दर्शन आधुनिक जीवन का दर्शन बन गया, जहाँ चिन्तन व गूढ विचार के साथ ही साथ व्यावहारिक पक्षो का भी प्रकटीकरण है । विवेकानन्द के दर्शन में प्राचीन एव मध्यकालीन मानसिकता से उपर उठते हुये आधुनिक युग के सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एव औद्योगिक जीवन की एकता द्वारा आध्यात्मिक एकता के व्यावहारिक चितन को क्रियात्मक रूप प्रदान किया जाता है।

ब्रह्म –

उक्त धार्मिक भावधारा का ब्रह्म जीव, जगत, माया एव मुक्ति के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक विवेचन करने पर,- 'ब्रह्म' सर्वव्यापी और सदैव कल्याणकारी है । जगन्माता ब्रह्म की शक्ति ही, सृजन, पालन और विनाश का कारण है। वह ब्रह्म एक है, सत्य है और हम सब मे ओत प्रोत है ।[१] जीवन - मृत्यु, सुख - दु ख सब में ईश्वर विद्यमान है । प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है ।[२] आत्म दर्शन ही ब्रह्म की प्राप्ति है । ब्रह्म हमारी आत्मा की 'आत्मा' है ।[३] ईश्वर ज्ञेय और अज्ञेय से अनन्त गुना ऊँचा है ।[४] अपने आप में अपने परिवार में और सभी विश्व में, जगत के कण

---

१ ज्ञानयोग - विवेकानन्द पृ० १०१
२ विवेकानन्द साहित्य -१ पृ० ३४
३ वही - २ पृ० ८८
४ वही, पृ० ८९

- कण में उसी परम पुरुष को देखना ही ईश्वर प्राप्ति का सहज एव सरल उपाय है । भक्ति, ज्ञान व कर्म के द्वारा अन्तर्निहित ब्रह्म की अनुभूति ही जीव की मुक्तावस्था है ।[१]

जीव

अपने गुरू रामकृष्ण देव की तरह विवेकानन्द भी प्रत्येक जीव को ईश्वर मानते हैं[२] इनके अनुसार जीव ही शिव है और पीडित मानवता की सेवा ही ईश्वर पूजा है । मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में विवेकानन्द कहते हैं कि यदि प्रतिमा की पूजा करनी ही है तो मानव से अच्छी और जागृत प्रतिमा और कौन हो सकती है ।[३] ईश्वर और जीव एक है। आत्मा अजर अमर और अविनाशी है, जो सर्व समर्थ, स्वतत्र, अपराजित एव विश्व श्रेष्ठ है । समस्त वाह्य जगत उसी (आत्मा) का प्रकाश मात्र है । जीव, मोह - माया और अज्ञान के कारण अपनी शक्ति और मूल स्वरूप को भूल जाता है । अज्ञान के आवरण को भेद कर आत्मसाक्षात्कार करना ही ईश्वर की प्राप्ति है ।[४]

जगत—

ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति हुयी है । ब्रह्म और जगत के बीच देश, काल और निमित्त का कॉच लगा रहता है। नीचे से देखने पर जगत और ऊपर से देखने पर ब्रह्म का स्वरूप दिखायी पडता है ।[५] जगत ब्रह्म का प्रसार है, अन्तिम दृष्टि से तो जगत भी साक्षात ब्रह्म ही है ।[६]

माया —

माया जीव का बधन है जो जीव को भयकर रूप से चारो ओर से घेरे हुये है ।[७]

---

१ राजनयोग - विवेकानन्द पृ० १२१
२ धर्मतत्व - विवेकानन्द पृ० ६९
३ प्रेमयोग - विवेकानन्द पृ० ५०
४ धर्मविज्ञान - विवेकानन्द पृ० ९५
५ विवेकानन्द साहित्य -२ पृ० ८५ - ८६
६ ज्ञानयोग - विवेकानन्द पृ० २१२
७ विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ५८

श्री रामकृष्ण देव माया को ब्रह्म का अवगुठन मानते है जिसका प्रभु की कृपा से निवारण हो जाता है । माया का तिरस्कार करके स्वय को महामाया रूप महाशक्ति के प्रति समर्पित होना ही भक्ति है जो उसके ब्रह्म साक्षात्कार मे सहायक बनती है ।[१] विवेकानन्द 'माया' को ससार की वस्तु स्थिति का वर्णन मानते हैं ।[२] माया का आवरण हटने से ही सत्य (ईश्वर) का दर्शन होता है ।[३]

मुक्ति –

सासारिक मोह माया के भ्रम मे न पडकर आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्न कर इसकी प्राप्ति करना ही मुक्ति है ।[४] रामकृष्ण देव के अनुसार मुक्ति का अर्थ है,- "परिपूर्णता की प्राप्ति या पूर्ण स्वातन्त्रय ।" एकता की अनुभूति में ही मानव की स्वतत्रता है और इसीलिये प्रेम, पवित्रता, ईमानदारी, नि स्वार्थता, भक्ति और विनय, मानव जीवन के श्रेष्ठतम उपकरण है । ये मनुष्य के मन को नीलाकाश की तरह मुक्त करते हैं और उसके व्यक्तित्व को हीरे की तरह पारदर्शी और समुज्ज्वल बनाते हैं । यह मुक्ति ही परमात्मा है और इसी की प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य है । दृढ इच्छाशक्ति और गहन आत्मविश्वास के बल पर ही आत्मा को माया के बन्धन से मुक्त किया जा सकता हैं ।[५] विवेकानन्द कहते हैं - "जैसे विभिन्न नदियॉ भिन्न-भिन्न स्रोतो से निकल कर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रूचि के अनुसार विभिन्न टेढे-मेढे अथवा सीधे साधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त मे तुझसे ही आकर मिलते हैं ।[६]

ईश्वर की सर्वभौमिकता की विवेचना करते हुये स्वामी विवेकानद कहते है -"वही - एक ज्योति भिन्न-भिन्न रग के कॉच में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होती है । समायोजन के लिए इस प्रकार की विविधता आवश्यक है परन्तु प्रत्येक के अन्तस्थल में उसी सत्य का राज्य है। ईश्वर ने अपने कृष्णावतार मे कहा है कि प्रत्येक धर्म में मैं मोती की माला मे सूत्र की तरह पिरोया हुआ हूॅ ।[७+]

---

१ विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ५२
२ वही,
३ भक्तिदायी विचार - विवेकानन्द पृ० ९७
४ ज्ञानयोग - विवेकानन्द पृ० २१२
५ विविध प्रसग पृ० ९७ - ९८
६ विवेकानन्द - १ पृ० ४
७ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० २० + मयिसर्वमिद प्रोत सूत्रेमणिगणइव - गीता ७/७

जीव को उसका मूल स्वरूप बतलाते हुये विवेकानद कहते है कि -''तुम्हे कौन भयभीत कर सकता है ? यदि सैकडों सूर्य पृथ्वी पर गिर पडे, सैकडों चन्द्र चूर- चूर हो जॉय, एक के बाद एक ब्राह्माण्ड विनष्ट होते चले जॉय तो भी तुम्हारे लिये क्या ? पर्वत की भॉति अटल रहो, तुम अविनाशी हो । तुम आत्मा हो, तुम्हीं जगत के ईश्वर हो । कहो - शिवोण्ह शिवोण्ह, मैं पूर्ण सच्चिदानन्द हूॅ ।[१] पिंजडे को तोड डालने वाले सिह की भॉति तुम अपने बन्धन तोड कर सदा के लिए मुक्त हो जाओ, तुम्हें किसका भय है , तुम्हें कौन बॉधकर रख सकता है ? केवल अज्ञान व भय, अन्य कुछ भी तुम्हे बॉध नहीं सकता, तुम शुद्ध चैतन्य स्वरुप हो, नित्यानन्द हो ।[२]

जीव वास्तव मे क्या है ? इसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि प्रत्येक जीव का चिन्तन होना चाहिए -''मेरी मृत्यु नहीं हैं, शका भी नहीं, मेरी कोई जाति नहीं है, न कोई मत ही । मेरे पिता या माता या भ्राता या मित्र या शत्रु भी नहीं हैं । क्यों कि मैं सच्चिदानन्द स्वरूप शिव हूॅ । मैं पाप से या पुण्य से, सुख से या द ुख से बद्ध नहीं हूॅ । तीर्थ, ग्रन्थ नियमादि मुझे बन्धन मे नहीं डाल सकते । मैं क्षुधा पिपासा से रहित हूॅ । यह देह मेरी नहीं है, न कि मैं देह के अन्तर्गत विकार और अन्धविश्वासों के अधीन हूॅ । मैं तो सच्चिदानन्द स्वरूप हूॅ । मै शिव हूॅ मैं शिव हूॅ ।[३]

वे कहते थे कि एक हिन्दू (अन्य धर्मावलम्बियो से भिन्न) धार्मिक उन्नति करके वस्तुत भ्रम से सत्य की ओर नहीं जाता, वरन सत्य से सत्य की ओर अग्रसर होता है। निम्नतर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर जाता है ।[४]

(3) नववेदान्त

विवेकानन्द ने धर्म को, जो गिने चुने प्रबुद्ध त्यागी ऋषियों मुनियो की गुफाओं और आश्रमो तक ही केन्द्रित था, उसे बाहर निकालकर जन-जन तक प्रचारित व प्रसारित कर दिया ।

---

१ विवेकानन्द - १ पृ० १३१
२ वही,
३ वही - २ पृ० १९०
४ वही, - १ भूमिका से

जीवन के यथार्थ सत्य और कठोर धरातल से पलायन कर गुफाओं में नाक-कान दबाकर प्राणायाम करने की परम्परा को विवेकानन्द ने एक झटके में उखाड कर फेंक दिया। प्रत्येक व्यक्ति के लिये योगी बनना और समाधि में जाना अनुकर्णीय नहीं है। उन्होंने स्वकेन्द्रित विकास छोडकर 'जनकोन्द्रित उत्थान की भावना पर बल देते हुये कहा कि सबसे पहली पूजा उस विराट की होनी चाहिए जो असख्य मानव के रूप मे तुम्हारे चारो ओर फैले हुए हैं। ससार मे जितने भी मनुष्य और जीव जन्तु हैं सभी जागृत ईश्वर हैं परम बह्मम के स्वरूप है और इनसे भी पहले हमे अपने देशवासियो की पूजा करनी चाहिए। आपस में ईर्ष्या द्वेष रखने के बदले झगडा और विवाद के बदले तुम परस्पर एक दूसरे की अर्चना करो। हम जानते हैं कि किन कार्यो ने हमारा सर्वनाश किया, परन्तु हमारी आँख नहीं खुलती।''[१]

विवेकानन्द ने वेदान्त को नये सिरे से परिभाषित करते हुए कहा -''प्रत्येक मनुष्य के अन्दर निहित दिव्य शक्तियों को प्रकट करना ही वेदान्त है - प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विद्यमान शक्ति ही ईश्वर है।'' इस कार्य को पूर्ण करने के लिए उन्होने कहा -''आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन के बीच काल्पनिक भेद को मिटा देना चाहिए क्यों कि वेदान्त अखण्ड का उपदेश देता है।'' इस बात को और स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं -''तुम्हें सदा स्मरण रखना होगा कि वेदान्त का मूल सिद्धात यह एकत्व अथवा अखण्ड भाव है। द्वित्व कहीं नही है एक मात्र जीवन है, एक मात्र जगत है, एक मात्र सत् है। सब कुछ वही सत्ता मात्र है। भेद केवल परिमाण का है, प्रकार का नहीं। हमारे जीवन में अन्तर प्रकार गत नहीं है। वेदान्त, सृष्टि मे सभी जीवो-मनुष्य, पशु, कीट को पूर्णत एक मानता है, वह नही मानता कि पशु व अन्य जीव मनुष्य से भिन्न व मनुष्य के भोज्य पदार्थ हैं।''[२] वेदान्त का यही विस्तार और उसको मानव के साथ प्रत्यक्ष रूप दे देना ही नववेदान्त है, जिससे यह सभी के लिए सरल, अपना व व्यावहारिक हो गया।

विवेकानन्द का 'नववेदान्त' सभी मे देवत्त की सकल्पना से ओत - प्रोत था। ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा सभी मनुष्यो को पापी कहने पर, इसका घोर प्रतिकार करते हुए वे कहते हैं, –''अमृत के पुत्रों तुम अमृत के अधिकारी हो, हिन्दू धर्म तुम्हे पापी कहने से इकार करता

---

१ विवेकानन्द - १ पृ० १३१
२ वही,

है । तुम तो ईश्वर की सन्तान हो - मृत्यु लोक के देवता हो - तुम और पापी? मनुष्य को पापी कहना ही महा पाप है। मानव यथार्थ स्वरूप पर यह घोर लाछन है । उठो सिहो । आओ और इस मिथ्या भ्रम को झटक कर दूर कर दो कि तुम भेड हो, तुम हो अजर आत्मा, मुक्त आत्मा, नित्य आनन्दमय हो । तुम जड नहीं हो, जड तो तुम्हारा दास है, तुम जड के दास नही ।''

प्रत्येक जीव एव मानव मात्र के प्रति विवेकानन्द के मन में अतिशय प्रेम व समर्पण भाव था । एक बार बगाल मे प्लेग फेलने पर असख्य लोग काल कवलित हो गये । अपनी मातृभूमि की यह स्थिति देखकर विवेकानन्द ने जन - मानस का भय दूर करने के लिए एक घोषणा पत्र तैयार करवाया कि रामकृष्ण मिशन जन-गण के साथ खडा होकर उनकी सेवा में खुले दिल से धन तथा सामर्थ्य का उपयोग करेगा । एक गुरु भ्राता के प्रश्न पर कि इतने रूपये कहॉ से आयेंगे तो उत्तर मे विवेकानन्द ने कहा -''आवश्यकता हुयी तो मठ की नयी जमीन बेच डालूँगा । हम लोग तो ठहरे फकीर--मुष्ठ भिक्षा लेकर पेडो के नीचे सोएँगे । यदि जमीन बेचकर पचास हजार लोगो की जान बचायी जा सके तो कैसा मठ ? कैसी जमीन? जिस मठ की स्थापना के लिए स्वामी जी चिरकाल से स्वप्न देखते आ रहे थे और प्राणान्तक परिश्रम किये थे - फिर भी मानवता की सेवा हेतु उन्होने इसे बेचने तक का फैसला कर लिया ।[१] यहॉ हम देखते है कि मानव हित व जन सेवा ही उनका धर्म व दर्शन था ।

दीन - दु खी गरीब व असहाय की सेवा विवेकानन्द का प्रधान लक्ष्य था । वे कहते हैं -''भारत में धन का आभाव नही है, अभाव है अन्न तथा व्यावहारिक सत्य का ।'' गरीबी को वे घोर अभिशाप समझते थे । एक बार अमेरिका प्रवास के दौरान वे जमीन पर लेटकर रो-रो कर कहने लगे -''मॉ । मैं इस नाम, यश को लेकर क्या करूँ,जब कि मेरे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हैं । हम गरीब भारतवासी ऐसी बुरी हालत तक पहुँच गये हैं कि मुट्ठी भर अन्न के अभाव मे वहॉ लाखो लोग प्राण त्याग देते हैं और यहाँ (अमेरिका) के लोग अपने व्यक्तिगत सुख के लिए लाखो डालर खर्च करते हैं । भारत की जनता को कौन उठायेगा? कौन उनके मुँह में अन्न देगा ? मै उन सब की किस प्रकार सेवा कर सकू ?''- इस तरह के विचार उन्हें ब्यग्र कर देते थे।

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० ९१

वे रोटी को धर्म से ऊपर मानते थे। उनका कहना था कि यदि पडोसी भूखा हो तो मन्दिर मे प्रसाद चढाना ईश्वर का अनादर है। भारत का प्रधान अभाव 'धर्म' नहीं 'रोटी' है। यहाँ के (भारत के)कोटि-कोटि क्षुधार्थ नर-नारी शुष्क कण्ठ से रोटी - रोटी चिल्ला रहे हैं और बदले मे हम उन्हे देते हैं'पत्थर'। भूखे लोगो को धर्म का उपदेश देना या दर्शन शास्त्र सिखाना उनका अपमान करना है ।

देश भर मे फैले अकाल एव उसे दूर करने की अपनी सीमाओं के कारण उनका मन अत्यन्त विसाद ग्रस्त था, इसी समय उत्तर भारत के एक लब्धख्याति पण्डित स्वामी जी से वेदान्त पर विचार करने के लिए आये तो, स्वामी विवेकानन्द ने उनसे कहा -''वेदान्त धर्म का सार तत्व यही है कि अन्नाभाव से मृतप्राय लोगो की प्राण रक्षा के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देना । देश मे जो सर्वत्र हाहाकार मचा है, पहले उसके निवारणार्थ, एक मुट्ठी अन्न के लिए स्वदेशवासियों के आर्तनाद बन्द करने के लिए प्रयास कीजिए - तत्पश्चात मेरे पास वेदान्त पर विचार करने आइयेगा ।''[१]

दीन - हीन की सेवा के सम्बन्ध मे वे कहते हैं -''दाता या उद्धारकर्ता के रूप मे नही अपितु सेवक के रूप मे अन्न, वस्त्र, विद्या व ज्ञान लेकर जन साधारण के बीच मे श्रद्धा के साथ कर्म करने के लिए दृढ हृदय, कर्मियो की आवश्यकता है ''[२] भारत के दरिद्र व पतितों के उद्धार के प्रति भी वे पूर्ण रूपेण समर्पित हैं, वे कहते हैं -''भारत के दरिद्र, भारत के पतित, भारत के पापियों की सहायता करने वाला कोई मित्र नही है । इनकी सेवा के लिए चरित्रवान, हृदयवान व बुद्धिमान युवको की आवश्यकता है ।''[३]

पाश्चात्य देशों के द्वारा भारत के दीन व दलित की उपेक्षा करके यहाँ ईसाई धर्म के प्रचारको को भेजने पर स्वामी जी उन्हे धिक्कारते हुये कहते हैं - ''आप ईसाई लोग मूर्ति पूजकों की आत्मा का उद्धार करने के निमित्त अपने धर्मप्रचारको को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं परन्तु उनके शरीर को भूँख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते ? भारत में जब भयानक

१ युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० १७२
२ विवेकानन्द चरित पृ० ३३७
३ वही

अकाल पडा तो सहस्रो और लाखो हिन्दू क्षुधा से पीडित होकर मर गये पर आप ईसाईयो ने उनके लिए कुछ नही किया ।''[१] इस लिए उन्होंने नारा दिया कि दुर्बलों की सहायता पहले करो, क्यो कि उनको हर प्रकार के प्रतिदान की आवश्यकता है ।[२]

मानव मात्र के प्रति उनके मन में कितना प्रेम व श्रद्धा का भाव था इसे एक उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है - एक बार गोरक्षण सभा के एक उद्यमी प्रचारक से गो रक्षा पर वार्ता करते हुए स्वामी जी ने उनसे पूछा -''मध्य भारत में इस वर्ष भयकर दुर्भिक्ष पडा है । भारत सरकार ने घोषित किया है कि नौ लाख लोग अन्न कष्ट से मर गए है। क्या आपकी सभा ने इस दुर्भिक्ष मे कोई सहायता करने का आयोजन किया है?'' इसके जवाब मे प्रचारक ने कहा,–''हम दुर्भिक्षादि मे कुछ सहायता नही करते । केवल गो माता की रक्षा करने के उद्देश्य से ही यह सभा स्थापित हुयी है।'' प्रचारक की बात सुनते ही स्वामी जी के क्रोध की ज्वाला भडक उठी और उन्होने कहा,–''जो सभा - समिति मनुष्यों से सहानुभूति नही रखती, अपने भाइयो को बिना अन्न मरते देख कर भी उनके रक्षा के निमित्त एक मुट्ठी अन्न की सहायता न दे, पर पशु - पक्षियो की निमित्त हजारो रुपये व्यय कर रही है, उस सभा - समिति से मै लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखता। उससे मनुष्य समाज का विशेष कुछ उपकार होगा, इसमे मुझे विश्वास नही। सबसे पहले मनुष्य की रक्षा आवश्यक है- उन्हे अन्नदान, धर्मदान, विद्यादान करना पडेगा ।''[३]

जन-जन के दुख व पीडा को दूर करने के लिए वे अपना सब कुछ उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते थे, वे कहते हैं - ''यदि जाति का दुख दूर करने के लिए मुझे सहस्रो बार जन्म लेना पडे तो भी मै तैयार हूॅ । इससे यदि किसी का तनिक भी दुख दूर हो तो मै वह करूॅगा ।''[४]

विवेकानन्द अपने मानवीय दर्शन को स्पष्ट करते हुए कहते है,- '' उपनिषदो का उपदेश है कि सभी आत्मा एक है क्यो कि वे सब एक ही परम ब्रह्म के असख्य प्रतिबिम्ब मात्र हैं । जिसे सब परम ब्रह्म कहते हैं, वह सभी जीवो के योग से अधिक कुछ नही है, अत सच्ची

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० २२
२ वही - ५ पृ० ८९
३ वही - ६ पृ० ११ - १२
४ वही, पृ० ५६

ईशोपासना यह है कि हम अपने मानव बन्धुओं की सेवा में अपने आप को लगा दे । जब मनुष्य दुर्वल तथा क्षीण हो तब हवन में घृत जलाना अमानुषिक कर्म है ।'' स्वामीजी नर में नारायण के उदात्त भाव से ओत - प्रोत थे । जागृत मनुष्य ही ईश्वर है, इसकी पूजा ही ईश्वर की पूजा है ।

विवेकानन्द अगणित नर नारियों के उत्थान व मुक्ति के लिए ईश्वर के विरुद्ध भी सघर्ष का उद्घोष करने से पीछे नही हटते वे कहते है -'' परलोक मे आनन्द के बहाने इसी लोक मे रोटी से वचित रखने वाला, विधवा व दुखियो के ऑसू पोछने मे असमर्थ, मा ॅ बाप से विहीन बच्चो के मुख मे रोटी का टुकडा न देने वाला —— अगर ईश्वर है तो मेरे जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरूद्ध सघर्ष करना है ।''[१]

समाज के तिस्कृत व निम्न वर्ग के प्रति भी उनके मन मे समान रूप से प्रेम था । एक बार 'केष्टा' नामक सथाल को अपना भोजन समर्पित कर उन्होने कहा - '' तुम साक्षात नारायण हो । आज मुझे सतोष है कि भगवान ने मेरे समक्ष भोजन किया ।'' क्योकि उनका सिद्धान्त था वास्तविक शिव की पूजा निर्धन व दरिद्र की पूजा है — रोगी व कमजोर की पूजा है। तुम इन्ही कमजोर व भूॅखो मे अपने शिव का दर्शन करो ।''[२]

(ख) राष्ट्रीय – भावधारा

(1) राष्ट्रीय चेतना व देश भक्ति

विवेकानन्द उच्च कोटि के धार्मिक, दार्शनिक होने के साथ साथ महान देश भक्त भी थे। राष्ट्रीय गौरव एव राष्ट्र भक्ति का भाव उनमे कूट-कूट कर भरा था। देश की दयनीय अवस्था देख कर वे द्रवित हो जाते थे। राष्ट्र को दयनीय स्थित से ऊपर उठाने के लिए उन्होने पूरे देश मे भ्रमण कर अपने ओजस्वी भाषणो के द्वारा देशवासियों को जगाने का कार्य किया । वे भारत को

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३
२ वही

निर्जिव भूमि नहीं, अपितु सजीव चेतना के रूप मे देखते थे। देश की वर्तमान स्थिति एव उससे मुक्ति के लिए व्यावहारिक नेता की तरह विवेकानन्द भारतीयो की चारित्रिक कमी की ओर सकेत करते हुए कहते हैं -"हमारे देशवासियो मे जब कोई व्यक्ति ऊपर उठने की चेष्टा करता है तो हम सब लोग उसे नीचे घसीटना चाहते हैं, किन्तु जब कोई विदेशी आकर हमे ठोकर मारता है तो हम उसे बिना विरोध के स्वीकार कर लेते हैं। हमें ऐसी हीनता व तुच्छता की आदत पड गयी है। अब गुलामो को मालिक बनना है, इसलिये दास भावना को छोडना होगा।"

राष्ट्र की तात्कालिक आवश्यकता को समझते हुए वे कहते हैं - "अगले पचास वर्षों तक भारत माता को छोड कर हमें और किसी का ध्यान नही करना है। भारत माँ को छोड कर अन्य सभी देवी देवता झूँठे हैं। उन्हे अपने मन से निकाल कर समुद्र मे विसर्जित कर दो, जब तक भारत माँ परतत्र है तब तक अन्य किसी देवता की पूजा वेइमानी है, भारत माता ही हमारी वास्तविक देवी है। सर्वत्र उसके हाँथ दिखायी पड रहे है, सर्वत्र उसके पाँव विराजमान है। सर्वत्र उसके कान है और सभी दिशाओं में उसकी आँखे हैं। प्रत्येक भाग पर उसी देवी की छाया है। बाकी सभी देवता नीद मे हैं। यह विराट देवी हमारे समक्ष प्रत्यक्ष विराजमान है, इसे छोडकर और किस देवता की प्रार्थना करोगे ?"[१] उक्त कथन के द्वारा हम देखते हैं कि एक पूर्णरूपेण धार्मिक व्यक्ति जो धर्म की उच्च अनुभूतियो से ओत प्रोत हो, उसके द्वारा देवी - देवताओं को समुद्र में विसर्जित करने की बात, उदात्त देश भक्ति के कारण ही है, जिसे युगीन सन्दर्भ से जोडकर देखना सुखद आश्चर्य है। उक्त कथन किसी विशुद्ध राजनैतिक के मुँह से निकले तो सहज लगता है, परन्तु धर्म मे स्थित, धर्म परायण व्यक्ति जब देश को देवी और अन्य को बकवास कहे तो इससे उनका अनन्य राष्ट्र प्रेम सहज ही परिलक्षित होता है।

देश के स्वाभिमान व सस्कृति की उन्नति के प्रति वे सतत् प्रयत्नशील थे। वे भारत के लोगो मे वीरता, निर्भयता त्याग और बलिदान की भावना जागृत करने हेतू रुद्र, शिव और महाकाली को अपना अराध्य बनाने के लिए प्रेरित करते थे। स्वामी जी के शान्ति अहिसा और वैराग्य में भी 'क्षात्र धर्म' का स्पर्श था। जिस विचार, धर्म भावना व दर्शन से कायरता की वृद्धि व

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ५ पृ० १९३

पौरुष का दलन होता था उसके वे घोर विरोधी थे, इसलिए बुद्ध व महावीर की अहिसा की इन्होने कभी प्रशसा नही की । वे कहते थे - ''बुद्ध की शिक्षाओ के पीछे भयानक कायरता व दुर्बलता की छाया विद्यमान है ।''

देश के लोगो से वैचारिक मतभेद दूर कर राष्ट्र के निर्माण में योगदान का आवाहन करते हुए वे कहते हैं -''अथर्ववेद में एक मत्र है - मन से एक बनो, विचार से एक बनो ।'' एकता का महत्व स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा प्राचीन काल में देवताओ का मन एक हुआ, तभी से वे नैवेद्य के अधिकारी रहे हैं । मनुष्य देवताओ की अर्चना इस लिए करते हैं कि देवताओं का मन एक है। मन से एक होना राष्ट्रीय एकता का सार है । यदि तुम द्रविण, आर्य, ब्रहमण और शूद्र जैसे तुक्ष विचारों मे पडकर झगडते रहोगे तो तुम्हारी शक्ति क्षीण होती जायेगी । तुम्हारा सकल्प एकता से दूर हो जायेगा । स्मरण रखो कि शक्ति सचय और सकल्प की एकता, इन्हीं पर मानव का भविष्य निर्भर करता है। जब तक महान कार्य के लिए तुम अपनी शक्तियों का सचय नही करोगे जब तक एक मन हो कर देशोद्धार के कार्य में नहीं लगोगे तब तक तुम्हारा कल्याण नही है ।'' आगे वे कहते हैं - ''स्मरण रखो । शक्ति सचय और सकल्प की एकता पर ही भारत का भविष्य निर्भर करता है । प्रत्येक चीनी अपने ही ढग से सोचता है, किन्तु मुट्ठी भर जापानियो का मन एक है । इसके जो परिणाम निकलते हैं, उसे तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो । (तत्कालीन परिस्थिति मे जापान द्वारा चीन की पराजय होने पर) विश्व इतिहास में यही होता आ रहा है ।''

देश की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुये वे कहते हैं -''हमारे देश के लोगो मे न विचार, है न गुण ग्राहकता, इसके विपरीत एक सहस्र वर्ष के दासत्व के स्वाभाविक परिणाम, उनमें भीषण ईर्ष्या तथा सदेहशीलता भर गयी है, जिसके कारण वे प्रत्येक नये विचार का विरोध करते हैं ।''[१] वे देश को प्राचीनता से नवीनता की ओर ले जाने के लिए प्रयत्नशील थे एव राष्ट्र के उत्थान एव विकास के लिए तीन बाते ध्यान में रखनी आवश्यक है - सदाचार व शक्ति मे विश्वास, ईर्ष्या एव सदेह का परित्याग, जो सत् बनाने व सत्कर्म करने के लिये यत्नवान हो उसकी सहायता करना ।[२]

१ विवेकज्योति - वर्ष - ३१,अक - २ पृ० ५
२ वही, पृ० ७

भारतीय राष्ट्र एव धर्म का प्रभुत्व सम्पूर्ण विश्व मे स्थापित करने तथा भारतवासियो मे निहित सकीर्णता एव हीनता को दूर करने के लिए उन्होंने प्रत्येक देशवासी को आत्मबल, आत्मविश्वास एव आत्मगौरव का बोध कराकर उच्च शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया। अपने गुरुभाई से भक्ति एव मुक्ति पर चर्चा करते हुए वे कहते हैं - "तुम लोग जिसे भक्ति कहते हो, वह एक भयानक मूर्खता है, जो मनुष्य को केवल दुर्बल बनाती है, यह एक बात तुम लोग समझ नहीं पाते। जाने दो कौन तुम्हारे रामकृष्ण की परवाह करता है ? किसे यह जानने की चाह है कि तुम्हारे शास्त्रो में क्या लिखा है ? यदि मैं अपने देशवासियो को जडता के कूप से निकाल कर मनुष्य बना सका, यदि उन्हे कर्मयोग के आदर्श मे अनुप्राणित कर जगा सका तो मै हॅसते हुये हजारो नरक मे जाने को तैयार हूॅ। मैं तुम्हारे रामकृष्ण - वामकृष्ण किसी की भी बातें नहीं सुनना चाहता, जो मेरे उद्देश्य के अनुसार कार्य करना चाहता है, मैं उसी की बात सुनूॅगा। मैं रामकृष्ण या किसी अन्य का गुलाम नहीं हूॅ, गुलाम हूॅ तो केवल उसी का, जो अपनी भक्ति - मुक्ति की चिन्ता न कर, दूसरो की सेवा करने को प्रस्तुत हो"[१] बाद में वे अपने भाव को ज्ञान की जजीरो से बॅधे होने की बात करते है, क्योकि मातृभूमि के प्रति अपने कर्तब्य का उन्हे बोध है। इस तरह हम देखते हैं कि उनके मन मे अपने देशवासियों के प्रति कितना अगाध प्रेम था।

भारतीय राष्ट्र के पतन के कारणों की व्याखा करते हुए वे कहते हैं - "भारत के बडे जनसमुदाय की उपेक्षा ही यहॉ के पतन का कारण है। जाति व वर्ग के कारण पिसे हुये बहुसख्यक वर्ग की देश के नवनिर्माण में कोई उल्लेखनीय साझेदारी न होने के कारण सम्पूर्णत राष्ट्रीय चेतना का प्रसार न होना, विवेकानन्द की दृष्टि से पतन का एक महत्वपूर्ण कारण है। सीमित व सकुचित रहकर अपने आप में ही सन्तुष्ट रहना सबसे बडी कमजोरी है। वे कहते हैं - "मेरे विचार से हमारे राष्ट्रीय पतन का असली कारण यह है कि, हम दूसरे राष्ट्रों से नही मिलते-जुलते, यही हमारे पिछडे होने का कारण है। हमें कभी दूसरो के अनुभवों के साथ अपने अनुभव को मिलाने का अवसर नही प्राप्त हुआ। हम कूप- मडूक बने रहे।"[२]

अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का भी विरोध करते हुए वे कहते है,- "ऐ भारत! क्या दूसरो की हॉ मे हॉ मिलाकर, दूसरे की ही नकल कर परमुखापेक्षी होकर, इन दासो की सी दुर्बलता,

१ युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० १४
२ विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २५८ - २५९

इस घृणित निष्ठुरता से ही तुम बडे-बडे अधिकार प्राप्त करोगे?'' भारतवासियो को अपने आदर्श से भ्रष्ट होकर पाश्चात्य सस्कृति की ओर दौडने पर विवेकानन्द सावधान करते हैं, और कहते हैं,- ''हे भारत । यह परानुवाद, परानुकरण, परमुखापेक्षा, यह दास सुलभ दुर्बलता, यह घृणित जघन्य निष्ठुरता क्या मात्र इन्हीं का आश्रय लेकर तुम उच्चाधिकार प्राप्त करोगे? इस लज्जा जनक कापुरुषता की सहायता से तुम वीर भोग्य स्वाधीनता अर्जित करोगे ?''

भारत के लोगों को उनकी वास्तविक स्थिति का बोध कराते हुए वे कहते हैं - ''हे भारत । मत भूलना की तुम्हारी नारी जाति का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शकर हैं, मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन, तुम्हारा जीवन, इन्द्रिय सुख, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नही है, मत भूलना कि तुम जन्म से ही माता के लिए बलिदान स्वरूप रखे गये हो, मत भूलना की तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है, मत भूलना कि निम्न जाति, मूर्ख, निर्धन, अपढ, मोची, मेहतर तुम्हारे रक्त हैं, तुम्हारे भाई है। हे वीर । साहस का अवलम्बन करो, गर्व से कहो - मै भारतवासी हूँ - सभी भारतवासी मेरे भाई हैं। कहो मूर्ख भारतवासी, गरीब भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी मेरे भाई हैं, तुम भी केवल कटि मात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकार कर कहो -- भारतवासी मेरे भाई हैं भारत वासी मेरे प्राण हैं भारत के जागृत देवी - देवता मेरे ईश्वर है, भारत का समाज मेरी शिशु शैया, मेरे यौवन का उपवन तथा मेरे वार्धक्य का वाराणसी है। कहो भाई भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है भारत का कल्याण ही मेरा कल्याण है। रात - दिन यही कहते रहो -- हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे मुझे मनुष्यता दो। माँ, मेरी दुर्बलता, कापुरुषता दूर करो, मुझे मनुष्य बना दो।''[१] यहाँ हम विवेकानन्द के उदात्त राष्ट्रप्रेम, एव देश के सभी वर्गों के प्रति समान रूप से उत्थान व विकास की भावना का सहज ही अनुमान लगा सकते है। विवेकानन्द अपने राष्ट्रीय आदर्शों की पाश्चात्य देशो से तुलना करते हुए कहते हैं - ''वहाँ पाश्चात्य देश वाले इस बात की चेष्टा मे लगे हैं कि मनुष्य अधिक से अधिक कितना वैभव सग्रह कर सकता है और यहाँ हम इस बात का प्रयास करते है कि कम से कम कितने मे हमारा काम चल सकता है। क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है और दूसरा नष्ट हो जाता है? - जीवन सग्राम में घृणा टिक सकती है अथवा प्रेम? - भोग विलास चिर स्थाई है

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० १७५

अथवा त्याग? - भौतिकता टिक सकती है अथवा आध्यात्मिकता?''[१] हम कह सकते हैं कि यहाँ का आदर्श - प्रेम, त्याग व आध्यात्मिकता है, इसलिए यहाँ की सस्कृति अक्षुण्ण है।

देश की वर्तमान स्थिति पर वे कहते हैं - ''यह सनातन धर्म का देश है, यह गिर अवश्य गया है परन्तु निश्चय ही फिर उठेगा, और ऐसा उठेगा की दुनिया देख कर दग रह जायेगी। तुमने देखा है न, नदी या समुद्र मे लहरे जितनी ही नीचे उतरती हैं उसके बाद उतनी ही जोर से उपर उठती हैं।''[२]

हम भौतिकता मे भले ही कम उन्नति कर पाये हो परन्तु ज्ञान व चरित्र में पूरे विश्व मे हमारे जैसा कोई देश नही है। इसकी व्याख्या करते हुए विवेकानन्द कहते है ''हम (भारतीय) अत्यन्त दरिद्र है और भले ही हमारी जनता को पार्थिव वस्तुओ के बारे में बहुत कम ज्ञान है परन्तु हमारे जन बहुत अच्छे हैं, क्योकि यहाँ दरिद्र होना अपराध नही है। हमारी जनता हिंसक नही है। अमेरिका व इग्लैण्ड मे मैं कई बार केवल अपनी 'वेश - भूषा' के कारण भीडों द्वारा आक्रान्त किया गया हूँ, पर भारत मे मैने ऐसी बात कभी नही सुनी कि भीड किसी मनुष्य की वेशभूषा के कारण उसके पीछे पड गयी हो।''[३] देशवासियो को राष्ट्र भक्ति की प्रेरणा हुये वे जापानियों के देशप्रेम की प्रशसा करते हैं,– ''जापानी अपने देश के लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार रहते हैं, जिससे वे महान राष्ट्र भक्त बन गये हैं। ससार ने कभी जापानियों के समान देश भक्त और कला प्रिय जाति नही देखी और वे भारत को सदैव महान देश के रूप मे देखते रहे हैं। जापानी समझता है कि हिन्दू की प्रत्येक वस्तु महान है और विश्वास करते हैं कि भारत एक पवित्र भूमि है।''[४] वे अग्रेजो की आलोचना करने से भी नहीं चूकते और उन्हे चेतावनी देते हुये कहते हैं – ''भले ही तुम ईश्वर के प्रतिशोध में विश्वास न करो पर इतिहास का प्रतिशोध तो तुम्हे मानना ही पडेगा और अग्रेजों के उपर यह प्रतिशोध आयेगा ही। वे हमारी गरदन पर सवार है और अपने सुखोपभोगों के लिए उन्होने हमारे रक्त की अन्तिम बूँद तक चूस लिया है वे हमारी करोडो की सम्पत्ति हरण करके ले जा रहे है जब की गाँव-गाँव में हमारी जनता भूखो मर रही है। अब उन

---

१ विवेकज्योति - वर्ष - ३१, अक - ३ पृ० ११
२ वही,
३ विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २५२
४ वही, पृ० २४९

पर प्रतिशोध की बौछार होगी और यह न्याय सगत ही होगा।''[१]

शिक्षा व सगठन के अभाव को स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय अवनति से जोड कर देखते है। गुलामी को एकता के अभाव का कारण मानते हुए वे कहते हैं, ''हम गुलाम इस लिए हुये है कि हम सघ बद्ध राष्ट्र नही है ।'' 'शिक्षा' शब्द को भी वे पूर्ण महत्व देते हुये इसे अधिकाश समस्याओं को हल करने की कुजी मानते थे ।

भारतीयो को निराशा व हताशा से बाहर निकाल कर राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा मे जोडने के लिए वे कहते हैं, -- ''तुम्हारे देश को वीरों की आवश्यकता है । अत सदैव वीर बनो । पर्वत की भॉति निश्चल बने रहो। 'सत्यमेव जयते' सत्य की सदैव विजय होती है । भारत वर्ष एक ऐसी नयी विद्युत शक्ति को चाहता है जो राष्ट्र की नस नस में जन जीवन का सचार कर दे।''[२]

स्वामी जी देश की प्रगति एव विकास के प्रति पूर्णत आशावादी थे। उन्हे ज्ञात था कि इस देश को अत्यधिक दिनों तक गुलाम बना कर एव दबा कर नही रखा जा सकता । भारत मे एक सुखद सूर्योदय की कल्पना उन्हे आनन्दित कर रही थी । उस दिन के बारे में वे सोचते थे कि ''लम्बी रात समाप्त होती सी लग रही है । महादु ख का प्राय अत सा होता प्रतीत हो रहा है। महा निद्रा मे निमग्न सब मानव अब जाग रहा है । इतिहास की बात तो दूर किंवदन्तियाँ भी जिस सुदूर अतीत के घनान्धकार को भेदने में असमर्थ है वहीं से एक अपूर्व आवाज उठ रही है । ज्ञान भक्ति एव कर्म के विराट हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर चोटी से प्रतिध्वनित होती हुयी यह आवाज मृदु परन्तु दृढ स्वर मे हमारे कानो में आ रही है । दिन पर दिन यह और भी स्पष्ट और गभीर होती जा रही है। जो अन्धे वो देख नही सकते जो पागल है समझ नही सकते हमारी यह मातृभूमि गहरी निद्रा को त्याग कर जागृत हो रही है। अब कोई भी इसकी गति को रोक नही सकता। अब कोई विदेशी शक्ति इसे दबा कर नही रख सकती क्यों कि यह असाधारण शक्ति अब अपने पैरो पर खडी हो रही है। अतीत तो हमारा गौरवमय था ही परन्तु मेरा हार्दिक विश्वास है कि भविष्य और भी गौरवमय होगा ।''[३] और हम देखते हैं कि स्वामी जी का देखा हुआ यह स्वप्न कुछ समय बाद ही सकार हो गया ।

१ विवेकज्योति
२ योद्धा सन्यासी विवेकानन्द
३ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० ९

राष्ट्रीय हित के लिए सभी प्रकार की न्यूनता व सकीर्णता का त्याग करने का आवाहन करते हुये स्वामीजी कहते हैं, ''तेरे मेरे समान कितने ही कीट प्रति दिन जन्म ले रहे हैं और मर रहे हैं । इससे दुनिया का भला क्या जा रहा है ? एक महान उद्देश्य लेकर मर जा। मरेगा तो अवश्य ही, तो फिर विराट उद्देश्य लेकर मरना ही अच्छा रहेगा । तुम्हीं लोग तो देश की आशा तथा विश्वास हो । तुम लोगों को कर्महीन देखकर मुझे बडी पीडा होती है । लग जा लग जा विलम्ब न कर, मृत्यु तो दिन प्रतिदिन निकट आती जा रही है । बाद मे करूँगा, यह सोच कर बैठा न रह अन्यथा कुछ भी नही कर पायेगा । मनुष्य के दु ख मे जो लोग सहानुभूति नही दिखला पाते वे भी क्या मनुष्य कहलाने के योग्य हैं ?क्या तुम लोग मनुष्य से प्रेम करते हो ? तो आओ । हम भला करने के लिए प्राण - प्रण से लग जायें । पीछे मत हटना सामने बढते जाओ । भारत माता कम से कम एक हजार नवयुवको की बलि मॉग रही हैं, परन्तु स्मरण रखना, मनुष्य चाहिए पशु नहीं ।''[१] इस कथन के द्वारा हम समझ सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द मे देश के उत्थान के लिए आदर्श देश भक्ति तथा आत्मोत्सर्ग की भावना निहित है ।

(2) अतीत – गौरव

अपने देश के अतीत गौरव का बखान करते हुए विवेकानन्द कहते हैं, ''यह वही प्रचीन भूमि है जहॉ धर्म एव दर्शन ने विश्व में सर्वप्रथम अपना निवास स्थान बनाया था । यह वही भारत भूमि है जिसमें बहने वाली विशाल काय नदियॉ उसके आध्यात्मिक प्रवाहो का स्थूल प्रतिरूप है, और जहॉ हिमालय अपने चिर शिखरों के साथ उन्नत होकर मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है । यह वही भारत भूमि है जिस पर जगत के श्रेष्ठतम् ऋषियों की चरण धूलि पड चुकी है, और यही पर सर्वप्रथम मानवीय प्रकृति तथा मनोजगत के रहस्यो को जानने की जिज्ञासा के अकुर प्रस्फुटित हुए थे ।[२]

देश के प्रचीन गौरव का यशगान करते हुये वे कहते हैं - ''यह वही भारत वर्ष है जो शताब्दियों से आघात, विदेशियों के असख्य आक्रमण तथा सैकडो आचार व्यवहारों के विपर्यय

१ विवेकानन्द साहित्य - ६, पृ० १९६

२ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० १०

सहकर भी अक्षय बना हुआ है । यह वही भारत वर्ष है जो अपने अविनाशी बल तथा जीवनी शक्ति के साथ पर्वत से भी अधिक अटल भाव से खडा है, जैसे आत्मा अनादि अन्नत तथा अनश्वर है वैसे ही हमारी मातृभूमि का जीवन भी है, और हम इसी महान भूमि के सन्तान हैं ।''[१] इसी आधार पर स्वामीजी कहते है, --''यह सनातन धर्म का देश है, यह गिर अवश्य गया है परन्तु निश्चय ही फिर उठेगा और ऐसा उठेगा कि दुनिया देख कर दग रह जायेगी। देखा है न नदी या समुद्र में लहरें जितनी ही निचे उतरती हैं उसके बाद वे उतनी ही जोर से उपर उठती हैं ।''[२]

विवेकानन्द अपने राष्ट्र को विकसित होने एव आत्मगौरव की भावना के विकास के लिए गौरवमय अतीत का अवलोकन करने को कहते हैं । वे कहते हैं,– ''भारत का इतिहास ही उसे अपनी महानता को बोध करा सकता है । धार्मिक सामाजिक एव सास्कृतिक रूप से हमारी परम्परा मानवीयता एव उदात्त भावनाओं से भरी पडी है । वे अतीत का अवलोकन करते हुए कहते हैं- ''ऐ हिन्दुओ तुमने जो कुछ किया है वह अच्छा ही किया है, परन्तु आओ अब हम उससे भी अधिक अच्छा कार्य करे ।''[३]

वे भविष्य को देखने के साथ साथ अतीत से सीख लेने की बात पर भी बल देते हैं, उनका कहना है कि हमे अपने इतिहास का पुनरावलोकन करते रहना चाहिए, इससे हमारा विकास चिर स्थाई और मानवीय होगा । हमे अपनी ऐतिहासिक उपलब्धियो से प्रेरणा व ऐतिहासिक भूलो से कुछ न कुछ सीख लेते रहना चाहिए, जिससे भविष्य में पुन वह भूल न हो। किसी भी राष्ट्र के अतीत और इतिहास का महत्व निरूपित करते हुये विवेकानन्द कहते हैं -''जिस राष्ट्र का अपना कोई इतिहास नही है, वह इस ससार मे अत्यन्त नगण्य है क्योकि राष्ट्र का गौरवमय अतीत राष्ट्र को नियत्रण मे रखता है ।''[४] अपने राष्ट्र के गौरव को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं,–''यह वही प्राचीन भूमि है जहाँ धर्म एव दर्शन ने विश्व मे सर्व प्रथम अपना निवास स्थान बनाया था । यह वही भारत भूमि है जिसमे बहने वाली विशालकाय नदियाँ उसके आध्यात्मिक प्रवाहों का स्थूल प्रतिरूप

---

१ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० १०
२ वही, पृ० ११
३ शिक्षा सस्कृति और समाज, पृ० ९५
४ विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० २२८

है और जहाँ हिमालय अपने चिर शिखरों के साथ उन्नत होकर मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यो की ओर निहार रहा है, यह वही भारत भूमि है जिस पर जगत के श्रेष्ठतम् ऋषियो की चरण धूलि पड चुकी है और यही पर सर्वप्रथम मानवीय प्रकृति तथा मनोजगत के रहस्यो को जानने की जिज्ञासा के अकुर प्रस्फुटित हुये थे।''[१]

आगे वे यहाँ की सास्वत सस्कृति एव सातत्यता की विवेचना करते हुये कहते हैं, ''यह वही भारतवर्ष है जो शताब्दियों से आघात विदेशियो के निरन्तर आक्रमण तथा सैकडों आचार व्यवहार के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत वर्ष जो अपने अविनाशी बल तथा जीवनी शक्ति के साथ पर्वत से भी अटल भाव से खडा है, जैसे आत्मा अनादि अनन्त तथा अनश्वर है, वैसे ही हमारी मातृभूमि का जीवन भी है हमें ऐसे देश की सन्तान होने का गर्व है।''[२]

अपने देश की सभ्यता व सस्कृति की अखण्डता का वर्णन गर्व से करते हुए वे कहते हैं - ''प्रत्येक शताब्दी मे बरसाती मेढकों के समान नये-नये राष्ट्र का उत्थान और पतन होता रहा है, वे प्राय शून्य से पैदा होते हैं और थोडे दिन खुराफात मचाते हैं और फिर विनाश की गहराइयों मे खो जाते हैं परन्तु यह महान भारतीय राष्ट्र जिसे दूसरे किसी भी राष्ट्र से अधिक दुर्भाग्यो, सकटों तथा उथल पुथल का सामना करना पडा है, आज भी कायम है आज भी टिका हुआ है।''[३]

(३) स्वाधीनता व मुक्ति—

विवेकानन्द 'मुक्ति' को किसी स्तर पर बन्धन, पराधीनता, गुलामी व सकीर्णता के ब्यापक विरोध के रूप मे देखते हैं। वह चाहे धार्मिक हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक, मानव की पूर्णता के लिए उसकी स्वाधीनता परम आवश्यक है। उनका विचार है कि गुलामी का बन्धन चाहे जैसा हो उसे खुनला ही चाहिए।''

---

१ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० १०
२ वही,
३ वही, पृ० ११

स्वाधीनता को वे मानव हित के लिए पहली शर्त मानते है जो उन्हीं के स्वर में सुना जा सकता है – ''तुम यह स्मरण रखो कि विकास की पहली शर्त है स्वाधीनता। जिसे तुम बन्धन मुक्त नही करोगे वह कभी आगे नही बढ सकता   तोड डालो, मानव के सभी बन्धनो को, उन्हे स्वाधीनता के प्रकाश में आने दो। विकास के लिए यह नितान्त आवश्यक है।''[१]

विवेकानन्द जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे चाहे वह वैचारिक हो या सामाजिक, स्वतत्रता के पक्षधर थे और इसके अभाव में वे किसी भी उन्नति की कल्पना नही कर सकते । उनका कहना था कि विचार और कार्य की स्वतत्रता ही,जीवन उन्नत और हित साधना का एक मात्र मार्ग है । जहाँ यह स्वतत्रता नही है, वहाँ मनुष्य जाति और राष्ट्र की अवनति अवश्यम्भावी है ।[२]

वे स्वाधीनता को प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं । इससे कोई अन्तर नही पडता कि वह विदेशी अग्रेजों के विरुद्ध हो या स्वदेशी साहूकार व जमींदारों के । जहाँ मानवता को कुचल कर शासन किया जाता है, वहाँ स्वाधीनता का प्रश्न अपने आप खडा हो जाता है, परन्तु स्वाधीनता प्राप्त करने के पहले हमें अपने आप को इसके लिए तैयार करना होगा । मानसिक स्तर पर हमारी जो भी दुर्बलताएँ हैं, उन पर विजय प्राप्त करनी होगी । स्वाधीनता प्राप्ति के सम्बन्ध मे वे कहते हैं - ''हमारे नासमझ युवक अग्रजों से अधिकार पाने के लिए सभाएँ करते हैं पर वे लोग सिर्फ हसते हैं, वो स्वतत्रता देने को तैयार नही हैं, परन्तु हम स्वतत्रता पाने के लायक भी नही हैं । मान लो अग्रेजो ने सभी अधिकार तुम्हे सौप दिये, तब तो तुम प्रजा को और दबाओगे तथा उन्हें कुछ भी अधिकार न दोगे। क्यो कि गुलाम लोग गुलाम बनने के लिए ही अधिकार चाहते हैं ।''[३]

स्वाधीनता की सही अर्थो में विवेचना करते हुए विवेकानन्द मानते हैं - जब तक शासक और शासित के मध्य सही मायने में सम्बन्धो की व्याख्या नही होगी, तब तक इस व्यापक दृष्टिकोण को नही समझा जा सकता। इसका उदाहरण देते हुए वे कहते हैं- ''राजा, जो अपनी प्रजा की एकत्रित शक्तियों का केन्द्र है, शीघ्र ही भूल जाता है कि ये शक्तियाँ उसके पास इसलिए सग्रह की गयी है कि वह उन शक्तियों को बढाये और सहस्र गुना अधिक बलशाली बना कर पुन अपनी

---

१ विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ६९
२ शिक्षा सस्कृति और समाज (विवेकानन्द ग्रन्थ माला - ६) पृ० २४
३ वही पृ० २२

प्रजा को लौटा दे ताकि परिणाम यह हो कि यह शक्तियाँ सारे समाज की भलाई के लिए फैल जॉय।''[१]

स्वाधीनता के लिए चरित्र एव नैतिकता पर बल देते हुए विवेकानन्द कहते है - ''मुक्ति के लिए चरित्र वज्र के समान दृढ बनाना होगा, क्या आप मुझे कुछ योग्य लडके दे सकेंगे? तब तो मैं पूरी पृथ्वी को आन्दोलित कर नींद से जगा दूँगा।'' निष्कर्षत हम कह सकते है कि वे परतत्रता व गुलामी को अभिशाप समझते थे। गुलाम राष्ट्र व व्यक्ति की आत्मा बन्धक रहती है जिससे वह पशुओ के तुल्य जीवन यापन करता है। स्वतत्रता राष्ट्रीय उत्थान व प्रगति की पहली सीढी है। भारत को सबसे पहले स्वतत्र होने की आवश्यकता है, शेष उपलब्धियाँ तो अपने आप ही प्राप्त हो जायेगी।

विवेकानन्द तत्कालीन राजनीतिक क्रिया- कलापों के प्रति सर्तक व सजग हैं। क्यो कि राजनीति ही वह धुरी है जो समाज को नयी दिशा प्रदान करती है। काग्रेस के सम्बन्ध में अपनी राय व्यक्त करते हुए उन्होने कहा, - ''काग्रेस मे मेरी आस्था नही है। पर हाँ, बिल्कुल नहीं से थोडा अच्छा है, फिर सोये हुए राष्ट्र को जगाने के लिए उसे हर तरह से धक्का देना जरूरी है। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि काग्रेस ने आम जनता के लिए अब तक क्या किया है? आप लोग क्या ऐसा सोचते हैं कि मात्र दो चार प्रस्ताव पास कर देने से ही स्वाधीनता मिल जाएगी?मेरी इसमे आस्था नही है। पहले जन साधारण को जगाना होगा, उन्हें भर पेट भोजन मिले तो वे स्वय ही अपनी मुक्ति का मार्ग ढूँढ लेंगे। यदि काग्रेस उनके लिए कुछ करती है तो काग्रेस को मेरी सहानुभूति प्राप्त होगी। इसके साथ ही अग्रेजो मे जो गुण है उन्हे भी हमें अपनाना होगा।''[२]

अपने देश मे जब स्वतत्रा प्राप्ति के लिए सघर्ष चल रहा था, तो हमारे सभी राष्ट्रीय नेताओ ने स्वीकार किया कि स्वामी जी के भाषण तथा कृतियों ने उन्हें मातृभूमि की सेवा और स्वतत्रता के लिए तन मन से समर्पित होने की प्रेरणा दी है।[३]

विवेकानन्द धर्मवेत्ता सन्यासी होने के कारण सीधे तौर पर राजनीति मे दखल नहीं

---

१ शिक्षा सस्कृति और समाज (विवेकानन्द ग्रन्थ माला - ६) पृ० ७६
२ विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २९
३ वही - १ भूमिका से

देते थे परन्तु अपनी वाणी व विचार से युगीन राजनेताओं को प्रभावित कर रहे थे । इस युग के प्रतिष्ठित नेता, सुभाष चन्द्र बोस ने आपनी आत्मकथा में लिखा है,- ''मेरी आयु उस समय पन्द्रह वर्ष से भी कम थी। विवेकानन्द ने मेरे जीवन मे प्रवेश किया और मेरे भीतर प्रचण्ड हलचल मच गयी   सब कुछ उलट पुलट गया   मेरी अस्थि - मज्जा में एक नवजागरण का सूत्रपात हुआ। मै दिन पर दिन महीने पर महीने ध्यान लगा कर उनकी वाणी और रचनाये पढता रहा । अपने पत्रों और भारतीय व्याख्यानमाला मे उन्होंने स्वदेश वासियों को जो उपदेश दिये थे,उन सब ने मुझे बहुत प्रभावित किया है ।'' इसी प्रभाव के कारण नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने विवेकानन्द को आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन के धर्म गुरू के रूप मे मान्यता प्रदान की ।

जवाहर लाल नेहरू अपने 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ मे 'वर्तमान भारत को स्वामी जी की देन' विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते है - ''अनेक व्याख्यानों व रचनाओं मे एक स्वर जो बार-बार झकृत होता है , वह है- ''निर्भयता, भय और दुर्बलता को त्याग कर वीर बनो ।'' महात्मा गाँधी भी विवेकानन्द के सम्बन्ध में देश के नवयुवको से कहते हैं -''युवकों से मेरा अनुरोध है कि स्वामी विवेकानन्द जहाँ निवास करते थे वहाँ वे एक बार अवश्य हो आयें ।'' भारत के सामाजिक, आर्थिक व सास्कृतिक विकास मे जिन महान आत्माओं का योगदान रहा है उसके मूल मे विवेकानन्द के विचार प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहे हैं। महात्मा गाधी जी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय आदि अग्रगण्य भारतीय नेता जिनका देश के उत्थान में अप्रतिम योगदान रहा है । उनके विचार रूपी वृक्ष विवेकाननद के उपदशों से खाद, पानी पाकर पल्लवित व पुष्पित हुये है । इस तरह स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रगण्य नेता न होते हुये भी अपने विचारो व सदेशों के माध्यम से महान देशभक्त के रूप में प्रसिद्ध हुये हैं ।

फ्रासीसी क्राति पर 'रूसो' रूसी तथा चीनी क्रान्ति पर 'मार्क्स' का जैसा प्रभाव था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर विवेकानन्द के प्रभाव को उससे कम करके नही देखा जा सकता।[१] भारतीय राष्ट्रीयता, विशेषकर उग्र राष्ट्रीयतावाद को इसका विशेष अवदान कर रहा है । स्वाभिमान व आत्मविश्वास जगाना तथा उत्साह पैदा करना इनका राष्ट्रीय ध्येय था । वे कहते हैं-''उठो,

---

१ विवेकज्योति वर्ष - ३१, अक - २, पृ० ११०

जागो। और लक्ष्य तक पहुँचे बिना रुको मत।'' देश हित मे वे जीवन भी न्यौछावर कर देने का उद्घोष करते हुये कहते हैं- ''मत भूलना कि,तुम्हारा जन्म माँ की बेदी पर बालि हो जाने के लिये हुआ है देते जाओ पर कभी प्रतिदान की अपेक्षा न रखो।''

भारत सरकार द्वारा १९८४ मे घोषित किया गया कि, ''इस बात को महसूस किया गया कि स्वामी जी के सिद्धात और वह आदर्श, जिनके लिए वह जिये और काम किये, भारतीय नवयुवको के लिये महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत बन सकते हैं।[१]

(ग) सामाजिक भावधारा

श्री रामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द दोनो युग द्रष्टा ऋषि थे। जो आत्मतत्व की प्राप्ति के बाद भी समाज व जीवन की उपेक्षा नहीं करते। रामकृष्ण के व्यवहार को देख कर लगता है कि ये कैसे सन्यासी है जो स्त्री का त्याग नहीं करते, माँ का त्याग नही करते, प्राय एक ही साथ एक ही परिधि मे निवास करते हैं। सुवह सवेरे माँ की सेवा करते हैं, माँ को लेकर तीर्थ यात्रा को जाते हैं। ये कैसे ब्रह्म ज्ञानी हैं, जो ब्रह्म दर्शन करके, ब्रह्मभूत अवस्था मे उपनीत होकर भी मनुष्य के सेवा को मुक्ति अन्वेषण के समान ही अथवा उससे भी अधिक मूल्यवान मानते हैं। वही यथार्थ मुक्ति व श्रेष्ठज्ञान का अधिकारी हुआ है जो जगत को तुच्छ नही मानता। सन्यासी के मुख से यह कैसी आश्चर्य की बात ? ऐसी अपूर्व बात, ऐसा तो पहले किसी से नही सुना। ये कैसे गुरू हैं, जो निर्विकल्प समाधि के माध्यम से 'ब्रह्म' मे लीन होने के आकाक्षी शिष्य की भर्त्सना और व्यग करके कह उठते हैं- ''यही तुम्हारा पौरुष है, यही तुम्हारा आत्म गौरव है, यही वीरत्व है ? तू जगत मे सभी को छोडकर अपनी मुक्ति के लिए व्याकुल हो रहा है, तेरा मन इतना छोटा हो गया है कि तू जगत के विषयो में न सोचकर अपनी मुक्ति के लिए ही अधीर हो उठा है।'' ऐसे अनोखे गुरू के अनोखे शिष्य 'विवेकानन्द' जिनके लौकिक व आध्यात्मिक पक्षों का समग्र निचोड है ''जीवन''।

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १, भूमिका से

(1) ओज व शक्ति

स्वामी विवेकानन्द कायरता व पौरुषहीनता के प्रबल विरोधी थे - उनका मत 'शक्ति' की साधना व उपासना से शक्ति ग्रहण कर शक्तिमान बनने से है - भारत का कल्याण, शक्ति की साधना में ही अन्तर्निहित मानते हुए वे कहते हैं - ''जन - जन में जो शक्ति छिपी है हमे उसे साकार करना है । जन मानष मे जो साहस और जो विवेक प्रच्छन्न है, हमें उसे प्रकट करना है । मैं भारत मे लोहे की मासपेशिया और फौलाद की नाडी तथा धमनी देखना चाहता हूँ, क्यों कि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शम्पाओं और व्रजों से निर्मित होता है । शक्ति - पौरुष, क्षात्र - वीर्य, ब्रह्म तेज, इनके समन्वय से भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिये ।''

सभी प्रकार के भय कमजोरी एव हीनता को त्याग कर वे मानसिक रूप से ऐसी पुष्टता के पक्षधर थे, जहॉ मृत्यु भय भी बौना हो जाय । 'शक्ति' ग्रहण करने की प्रेरणा देते हूए वे कहते हैं-- ''मृत्यु का ध्यान करो, प्रलय को अपनी समाधि में देखो । महा भैरव रूद्रको अपनी पूजा से प्रसन्न करो। जो भयानक है उसकी अर्चना से ही भय बस में आयेगा सभव हो तो जीवन को छोड कर, मृत्यु की कामना करो । तलवार की धार पर अपना शरीर लगा दो और रूद्र शिव से एकाकार हो जाओ ।'' इस तरह विवेकानन्द अपनी ओजपूर्ण वाणी से वर्षो से दबी व कुचली हुयी भारतीय जनता में ओज व शक्ति की धारा प्रवाहित करते हैं ।

लौकिक ससार की बात हो या धार्मिक ससार की, पतन तथा पाप का कारण भय ही है। भय से ही दुख व कष्ट होता है भय से ही मृत्यु आती है और भय से ही समस्त बुराईयाँ उत्पन्न होती हैं । इस भय का मूल कारण क्या है ? विवेकानन्द कहते हैं - ''अपने स्वरूप के सबध मे हमारा अज्ञान ही सभी प्रकार की कमजोरी एव भय का मूल है ।'' इस प्रकार वे अपने मत्र द्वारा सभी को अभय प्रदान करते हैं ।

जब भारत मे निराशा शक्तिहीनता व शिथिलता सर्वत्र व्याप्त थी । अन्धकार की इस बेला मे विवेकानन्द अपनी ओजस्वी वाणी से शक्ति व आत्मबल, आत्मविश्वास तथा आत्म गौरव की नयी आभा विखेरते हुये कहते हैं -- ''तुम लोग सिह स्वरूप हो तुम पूर्ण आत्मा हो शुद्ध

स्वरूप अनादि व अनन्त हो। जगत की महाशक्ति तुम्हारे भीतर है। हे सखे! तुम क्यों रोते हो ? जन्ममरण तुम्हारा भी नहीं है और मेरा भी नहीं है, तुम क्यों रोते हो मित्र ? तुम्हारे रोग - शोक कुछ भी नहीं है तुम तो अनन्त आकाश स्वरूप हो उस पर नाना प्रकार के मेघ आते हैं और कुछ देर खेल कर न जाने कहॉ लुप्त हो जाते हैं, परन्तु यह आकाश जैसा पहले नीला था वैसा ही बाद मे भी रहता है।[१]

वीर लोग ही पृथ्वी का भोग करते हैं – 'वीरभोग्या वसुन्धरा' यह उक्ति नितात सत्य है इसी बात को विवेकानन्द अपने शब्दो मे इस तरह व्यक्त करते हैं -- "वीर बनो! सर्वदा कहो, मै निर्भय हूँ, भय ही मृत्यु है, भय ही पाप हैं भय अधर्म है और भय ही व्याभिचार है। जगत मे जो भी बुरे और मिथ्या भाव है वे सब इस भय रूपी शैतान से उत्पन्न होते हैं।[२]

अपना मूल स्वरूप विस्मरण कर चुकी हताश निराश जनमानष को 'शक्ति' ग्रहण करने एव किसी भी स्थित परिस्थित में अभय रहने का उद्घोष करते हुए वे कहते हैं, "उठो! जागृत हो, अपना दिव्य स्वरूप प्रकाशित करो। तुम्हें कौन भयभीत कर सकता है , तुम किससे डरते हो। यदि सैकडो सूर्य पृथ्वी पर गिर पडे, सैकडो चन्द्र चूर चूर हो जाये, ब्रह्माण्ड एक के बाद एक नष्ट होते जाये, तो भी तुम किसी की परवाह मत करना, पर्वत की भाति अपने ध्येय पर अटल रहना।" आत्मविश्वास की बात को वे धर्म से जोडते हुए कहते हैं – "प्राचीन धर्म का कथन है कि नास्तिक वह है जो ईश्वर मे विश्वास नही करता, नया धर्म कहता है– नास्तिक वह है जो अपने आप मे विश्वास नही करता।"[३] स्वामी जी शक्ति के साथ साथ बुद्धि के उचित प्रयोग पर भी बल देते है। क्यो कि बुद्धि के अभाव में, शक्ति दिशाहीन होकर पतन का कारण बन सकती है। वे बुद्धि और शक्ति के समन्वय के पक्षधर थे। उनका सिद्धान्त है - मस्तिष्क और मासपेशियो का बल साथ - साथ विकसीत होना चाहिए। फौलादी शरीर हो और साथ ही कुशाग्र बुद्धि हो तो सारा ससार तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक हो जायेगा। उठो ! कमर कस कर खडे हो जाओ और कार्य करते चलो - कुछ उत्साही और अनुरागी युवक मिलने से मै देश में उथल पुथल मचा दूँगा।

---

१ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० २८
२ वही पृ० २७
३ योद्धा सन्यासी विवेकानन्द - हसराज रहबर

गीता के, 'क्लैव्यमा स्म गम क्षुद्र हृदय दौर्वल्य', 'त्यक्त्वोत्तिष्ठ परतप' और उपनिषद के 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' जैसे ओजपूर्ण विचार स्वामी जी के आर्दश थे और उन्ही को आधार बनाकर वे जनमानस को जागृत करते हैं। विवेकानन्द इस भाव को अपनी कविता के माध्यम से भी व्यक्त करते हैं—,

साहसी बनों और सत्य के दर्शन करो,
उससे तादात्मय स्थापित करो।
जागो, उठो, सपने मे मत खोये रहो,
यह सपनों की धरती है जहाँ कर्म ?[१]

मूलत विवेकानन्द के सन्देश मानव मात्र को मन से,आत्मा से, शरीर से , बुद्धि से बलवान बनाने का है। कायरता का यहाँ कोई स्थान नही है। पलायन की चेष्टा व्यर्थ है। विजय - पराजय की चिन्ता छोडकर केवल आत्मबल से अपने कर्तव्यो को निर्वहन करने मे ही मानव के उत्थान का बीजतत्व निहित है। ऐसे ओज पूर्ण सन्देश के माध्यम से स्वामी जी पूरी मानवता को जगाते हैं। उनके विचार आज भी उनके न रहने पर उनकी सार्थकता व महत्ता को सिद्व करते हैं।

(2) मानवतावाद

किसी भी जाति - वर्ग व सम्प्रदाय तथा भौगोलिक सीमाओ से उपर उठकर मानव मात्र के लिए समर्पित सेवा भाव ही मानवता है। ऊँच - नीच, अमीर - गरीब, छोटे - बडे आदि पक्षपात से परे मानव की उन्नति व विकास का चिन्तन मानवता का प्रमुख पक्ष है।

सन्यासी बनने के अपने प्रमुख ध्येय की विवेचना करते हुए विवेकानन्द कहते हैं - ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ही सन्यासी का मुख्य ध्येय होता है। दूसरे के लिए प्राण देने, जीवों के गगनभेदी क्रन्दन को शान्त करने विधवाओं के आँसू पोंछने, अल्पज्ञ सामान्य जनता को

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १०, पृ० १८९ - ९२
(मूलत अग्रेजी में लिखी कविता का भावानुवाद)

जीवन सग्राम में सक्षम बनाने, शास्त्रोपदेश का प्रचार करने, सबका ऐहिक तथा परमार्थिक मगल करने और ज्ञानालोक के लिए ही सन्यासी का जन्म होता है।''[१]

स्वामी विवेकानन्द जन मानस को सेवा के लिए प्रेरित करते हुये कहते हैं - सेवा पीडित मानवता की, दीन -दुखियो की, अछूतो और गरीबों की, बीमार रोगियो की, अकाल व महामारीग्रस्त जनता की, समाज के उपेक्षित लोगों की, तभी तो भारत व भारतीय समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है, और मानव मूल्यो की रक्षा कर सकती है।

मानव के रूप मे ईश्वर की इस सर्वोत्तम कृति को प्रत्येक स्तर पर एकत्व के भाव से देखा जाना चाहिए और उसके सुख - दु ख में, विचार धारा के स्तर पर समभाव रखा जाना चाहिए। सभी के भीतर वही एक आत्मा निवास करती है जो परमात्मा मे जाकर एकाकार हो जाती है। विवेकानन्द का विचार है,–''मानव जाति को सर्वत्र एव तब तक सहायता व प्रेरणा देते रहना चाहिए जब तक किसमग्र जाति ईश्वर के प्रति एकत्व का अनुभव नही कर लेती।'' इस तरह विवेकानन्द ने मानवीय सम्वेदनाओ को समझने एव मानव के पीडा को दूर करने का जो गुरूतर दायित्व अपने गुरू रामकृष्ण देव से विशाल वट वृक्ष बनने की प्रेरणा से पाया था जिसकी छाया मे ससार के पापी तापी एव दीन दुखी सुख एव व शान्ति की अनुभूतिकर सके, उसे व्यवहारिक रूप में पूर्णत परिणत कर अपने गुरू के आदेश के अक्षरश सत्य कर दिया। विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से यह सावित कर दिया कि मानवीय सवेदना प्रेम सेवा एव सद्भावना का अद्धैत दर्शन अथवा वेदान्त से किसी भी तरह का द्वन्द नही है। वस्तुत उनका व्यावहारिक वेदान्त मानवता में इस तरह रच रच गयाकि दोनो का वाह्य और आन्तरिक भेद लुप्त हो गया।

विवेकानन्द भौतिक कल्याण को ही आध्यात्मीक उन्नति का बीज मानते है। वे कहते है, ''मै ऐसे ईश्वर मे विश्वास नही करता जोकरोडो भूखो को भोजन ने दे सके।'' इस तरह वे मानवता व मानवीय धर्म का सर्वोत्तम धर्म मानत्ते थे। मानव को दुख एव कष्ट पहूचाने वाला कोई भी कृत्य धर्मकी श्रेणी में नही रखा जा सकता।'' भूँखे को भोजन देना व रोगी की सेवा करना सबसे

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ३, पृ० ५ - ६

बडा धर्म है । वे कहते हैं - "खाली पेट धर्म नहीं हो सकता ।"[१] दीन दुखी के उद्धार के लिये उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। उनका चिन्तन है "अगर हमलोग भी दीन दुखी तथा पतितो के उद्धार कार्य से पीछे हट जाये तो फिर उन्हे कौन देखेगा ।'[२]

प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण एव प्रत्येक मानव के उद्धार के लिए विवेकानन्द ने भारतीय धार्मिक चिन्तन प्रवाह को गुफाओ एव पर्वतो से उतार कर जन जन में प्रवाहित कर दिया। धर्म का मूल ध्यान या प्राणायामसे अलग करके शोषित पीडित मानवता के उद्धार के विचार मे स्थापित कर जीव को ही ईश्वर सिद्ध कर दिया। उन्होने कहा कि ईश्वर को कही ढूँढने की आवश्यकता नहीहै वह तो करोडो मानवो के रूप मे तुम्हारे बीच विद्यमान है, तुम उनकी सेवा रूपी पूजा से अपने क्यो वचित किये हो ?विवेकानन्द की उदान्त मानवता का वर्णन करते हुये प्रख्यात बगला कविता और नाटककार गिरीश चन्द्र घोष कहते है "देश की हाहाकारी स्थिति और जनता पर अत्याचार को रोकने के लिए वेदो का कोई उपाय बताने को जब मै स्वामी जीसे कहा तो जनता की पीडा व वेदना को सोचते ही उनके ऑखोसे आसू टपकने लगे और वे स्तब्ध होकर बाहर चले गये।" इस बात व घटना से प्रभावित होकर गिरीश बाबू ने उनके शिष्य को लक्ष्य करके कहा "देखो स्वामी जी कैसे उदार हृदय है। मैतुम्हारे स्वामी जीका इस कारण आदर नही करता कि वे वेद वेदान्त के बडे पण्डितहै वरन इस लिए श्रद्धा करता हू कि सामान्य जीव पर निम्न तम मनुष्य के लिए भी उनके मन मे कितना भाव है देखो न जीवो के दुख के स्मरण मात्र से वे कैसे रो पडे और रोते रोते बाहर चले गये।"[३] इस तरह हम देखते है कि मनुष्य के दुख कष्ट की बात सुनकर उनका हृदय दया से पूर्ण हो जाता है और उस क्षण उनका वेद वेदान्त जाने कहा भाग जाता है।

कालान्तर में इसी परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द नेगिरीश चन्द्र से कहा "देखो गिरीश बाबू लगता है यदि जगत के दूख दूर करने के लिए मुझे सहस्रो बार जन्म लेना पडे तो भी मै तैयार हूँ। इससे यदि किसी का तनिक भी दुख दूर हो तो वह मै करूगा और ऐसा भी मन आता है कि केवल अपनी मुक्ति से क्या होगा ?सबको साथ लेकर उस मार्ग पर जाना ही श्रेयकर होगा।[४]

---

१ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - २, पृ० ४७
२ विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ०४
३ वही - ६ पृ० ५७
४ वही - १ पृ० ५९

मानवता के सिद्धान्त को व्यवहार मे परिणीत करने के लिए सूखा, अकाल और महामारी (हैजा, प्लेग, चेचक आदि) के समय विवेकानन्द अपने पूरे मिशन सहित पीडितो की सेवा और उद्धार के लिये अपनी पूरी ऊर्जा झोक देते थे । बगाल मे जब प्लेग फैला तो इन्होंने उनकी सेवा मे अर्थ की कमी आने पर चिर स्वप्नित मठ की जमीन भी बेच देने की घोषणा कर दी । प्रत्येक को एक दूसरे से द्वेष व वैर भूलाकर एकात्म भाव से रहने की बात पर बल देते हुए वे कहते है,– "मेरे मित्रों! प्हले मनुष्य बनो फिर तुम देखोगे कि बाकी चिजे स्वय ही तुम्हारा अनुसरण करेगी आपस के घृणीत द्वेष भाव को छोडो और सद् उद्देश्य सदुपाय सत्साहस तथा सद्विचार का अवलम्बन करो। उठो! कमर कस कर खडे हो जाओ और कार्य करते चलो।"[१]

विवेकानन्द कहते है,–"प्रत्येक मानव मे धर्म की शक्ति विद्यमान है, दीन दुखी लोगो मे विद्यमान नारायण हमारी सेवा चाहते है। " समाज में सोशीत व उपेक्षित विशाल जन समूह के कल्याण की भावना से ओत प्रोत इन सन्देशो का अद्भूव प्रभाव पडा है। सम्पूर्ण वातावरण उनके उद्घोष से आप्लावित हो गया। जिससे मनुष्य अपने स्वार्थ सीमा से बाहर निकल कर जन सेवा के असीम मुक्ति पथ पर अग्रसित होने की चेष्ठा करने लगा ।

आपसी सौहार्द व प्रेम को मानवता का प्रमुख प्क्ष मानते है। एकल के धरातल पर अवस्थित मनुष्यो के बीच ही उदान्त प्रेम की भावना का उदय हो सकत है। 'प्रेम' की महत्ता व्यक्त करते हुए उन्होने कहा, "मेरे उपदेश वेदान्त की समता और आत्मा की विश्व व्यापकता पर ही प्रतिष्ठित है।" आगे वे कहते है प्रेम से सदैव आन्नद की प्राप्ति होतीहै और प्रेम कभी विफल नही होता। प्रेम ही विकास है और स्वार्थपरता ही सकुचन और विकास ही जीवन है इस लिए प्रेम को ही जीवन का मूल मत्र बना लो और केवल प्रेम से ही प्रेम करो क्यो की प्रेम करने वाला ही जीता है। वर्तमान समाज के पिछडे होने का प्रमुख कारण वे समाज के वहुसख्यक वर्ग का समाज की मुख्य धारा से अलग हो जाना मानते है समाज के उत्थान के लिए बहुसख्यक उपेक्षित वे तिरस्कृत व्यक्तियो को नारायणत्व का बोध करा के समाज की मुख्य धारा मे सम्मिलित करके ही अभिनव भारत का निर्माण किया जा सकता है ।

---

१ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० २१

"आत्मवत सर्वभूतेषु"[१] की भावना का प्रचार करते हुये वे कहते है, -- "क्या यह महान उपदेश केवल पुस्तको के भीतर ही रह जायेगा? जो भूखे के मुह मे एक टुकडा रोटी नही दे सकते वे किसी को मुक्ति कैसे देगे?जो दूसरो की केवल श्वास से ही अपवित्र हो जाते है वे दूसरो को कैसे पवित्र कर पायेगे?"[२] समाज मे व्याप्त किसी अस्तर की असमानता उनके लिए असह्य है। इन्ही बुराइयो को वे अमानवीयता की जड मानते हुए वे कहते है,--"समाज के सभी व्यक्तियो को धन विद्या विद्यार्जन व विकास के लिए समान अवसर मिलना चाहिए प्रत्येक क्षेत्र में स्वतत्र अर्थात मुक्ति ही प्रगति के लिए मनुष्य का उच्चतम लाभ है। जो समाज इस स्वतत्रा के विकास के मार्ग मे बाधक है वो हानिकारक है और उसको समाप्त करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिये।"

भारत के दीन हीन लोगो की दयनीय अवस्था के बाद भी ईसाईयो द्वारा भारत में इनके लिये काई सहायता न देने की अपेक्षा धर्म प्रचारक भेजने पर उन्हे धिक्कारतेहुए स्वाजी जी कहतेहै "तुम ईसाई लोग मूर्ति पूजको की आत्मा की बचाव के लिए भारतमे धर्म प्रचारक भेजने के लिए बहुत ही आतुर है। किन्तु इन मूर्ति पूजको के शरीर की क्षुधा की ज्वाला से बचाने के लिए तुम क्या कर रहे हो? भयानक दुर्भिक्षों के समय लाखा भारतवासी निराहार मर रहे हैं, किन्तु तुम ईसाईयों से इनके लिए कुछ भी नही बन पड रहा है । भारत की भूमि पर तुम गिरजे पर गिरजे बनाते जा रहे हो किन्तु तुम्हे यह ज्ञात नही है कि पूर्वी जगत की व्याकूल जनता की आवश्यकता रोटी है धर्म नही जो जाति भूख से तडप रही है उसके आगे धर्म परोसना उसका अपमान है उसके हाथ में दर्शन और धर्म ग्रन्थ रखना उसका मजाक उडाना है।"[३]

विवेकानन्द ससार के अगणित नर नारियो मे परमात्मा को बोध करते है वे उस ईश्वरका विरोध करते है जो भूखे को रोटी से वचित रखता है विधवा के ऑसू पोछना आश्रय हीन बच्चाो को भोजन देना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। भारत भूमि की करोडो अस्थि पजर से युक्ति निराश हताश जनता ही विवेकानन्द के इष्ट है।

विवेकानन्द सामाजिक समन्वय व एकताको मानवता के विकास के लिए अनिर्वाय

---

१ सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के सदृश देखना

२ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - २, पृ० ४७

३ विवेकानन्द साहित्य

मानते है वे कहते है, ''नीच अज्ञानी दरिद्र चमार और मेहतर तुम्हारे रक्त मास है तुम्हारे भाई है गर्व से कहो की मै भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारत वास, दरिद्र भारतवासी ब्राम्हण भारतवासी चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं।

शोषितो पिडीतो के उद्वार के प्रति वे इतने कटिवद्ध है कि उनकी उन्नति के लिए सहस्रो बार नरक जाने को तैयार है, ''यदि मै अपने देश वासियो को जडता के कूप से उठाकर मनुष्य बना सका, उन्हे कर्म योग के आर्दश मे अनुप्राणित कर जगा सका तो मै हसते हुए हजारोबार नर्क में जाने को तैयार हूँ समाज में सर्वत्र व्यप्त अभाव व गरीवी की पाश्चात्य देशो से तुलना करते हुए वे कहते है, ''पाश्चात्य देशो के दलित तो निरे पशु है, उनकी तुलना में हमारे यहा के गरीब देवता तुल्य है यर्थाथ राष्ट्र जो झोपडीयो मे निवास करता है अपना पौरूष विस्मृत कर चुका है अपना व्यक्तित्व खोचुका है। पैरो तले रौदे जाकर भी ये लोग यह समझ बैठे हैकि जिस किसी केपास पैसा हो वे उसी के पैरो तले कुचले जाने केलिए पैदा हूए है उन्हे उनका खोया हूआ सम्मान वापस प्रदान करना है उन्हे शिक्षित और समर्थ बनाना हो गा उनके चारो ओर दुनिया मे क्या हो रहा है इस विषय मे उनकी आखे खोल देनी होगी, फिर तो अपना विकास वे स्वय कर लेगे ।''

भारत मे व्याप्त आपसी कलह व ईर्ष्या पर कटाक्ष करते हुए वे कहते है कि, ''हिन्दु राष्ट्र अपनी अदभूत बुद्धी व अन्याय अनेको गुणो के रहते हुए ईर्ष्या के कराण टुकडे-टुकडे हो गया है दूसरे के ईर्ष्या करने वाली और एकक दसरे से डाह करने वाली प्रवृत्ति का हमे त्याग करना होगा तभी हम देश व समाज को उन्नति के शिखर पर ले जा सकते है ।''[१]

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द प्रत्येक मानव के प्रति अन्यय प्रेम एव श्रद्धा रखते थे वे मानव मात्र को बिना भेद भाव व उच नीच के समता के धरातल पर स्थपित करने के पक्षधर थे। प्रत्येक मानव का कल्याण इनके जीवन का चरम लक्ष्य था। मानव में ही ईश्वर का दर्शन व मानव सेवा को ईश्वर की पूजा का स्थान देकर इन्होने वर्षो से कुचली दबी मानवता को एक नयी उचाई व नया विस्तार प्रदान किया ।

---

१ विवेकानन्द साहित्य

(३) कृषक मजदूर

समाज के सबसे निचले पायदान पर अवस्थित अपने न्युनतम आवस्यकताओ की भी पूर्ति ने कर पाने वाले कृषक व मजदूरो का उत्थान व विकास करके स्वामी विवेकानन्द उन्हे समाज की मुख्य धारा से जोडना चाहते है। खेतो मे धूप, शीत व वर्षा का अनन्त कष्ट सहन करके पूरे राष्ट्रके लिए अन्न उत्पादन करने वाले किसान दूसरो का तो पेट भरते है परन्तु स्वय भूखे पेट सोने के लिए विवश है। देश का इससे बडा दुर्भाग्य और कुछ नही हो सकताहै। इनकी उपेक्षा करना घोर हृदय हीनता है भारत भ्रमण के दौरान देश भर के किसानो और मजदूरो की दयनियक अवस्था देख कर स्वाती जी क ामन द्रवित हो उठा इस सम्बन्ध मेवे अपने गुरू भाई स्वामी तुरीयानन्द से कहते है—

“मैने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया है और सम्प्रति महाराष्ट्र तथा पश्चिमी घाट भी घुम आया हूँ, परन्तु हाय ! अपनी आखोसे मैने देश वासियो की जो दुर्दशा देखी है उससे ऑसू नही रोक पा रहा हूँ। अब मैने भलिभाति समझ लिया है की देश की यह हीनता व निर्धनता दूर किये बिना धर्म प्रचार का यह प्रयास बिल्कुल बेकार है। इस लिए भारत की मुक्ति के उपाय हेतु ही इस समय मैने अमेरिका जाने का निश्चय किया है।”[१]

भारत मे करोडो की सख्या में जो दीनहीन गरीब है वे ही भारत के प्राण है इनकी उपेक्षा करते नये भारत की कल्पना नही की जा सकती वे कहते है, करोडो की सख्या जो गरीब तथा निम्न वर्ग के लोग हैये ही राष्ट्र के प्राण है ये किसान ये मजदूर ये जुलाहे आदि जो भारत के नगण्य मनुष्य है विजाति विजित स्व जाति निन्दित छोटी छोटी जातिया है वही लगातार चुप चाप काम करती जा रही है और अपने परिश्रम का फल भी नही पा रही है इन लोगो ने मौन रह कर हजारो वर्षो तक अत्याचार सहा है और उससे पायी है अपूर्व सहनशीलता चिर काल से दु ख भोगा है जिससे पायी है अटल जीवनी शक्ति ये लोग मुठ्टी भर सत्तू खाकर दुनिया को उलट सकेगे आधी रोटी मिली तो तीनो लोको मे इनका तेज न अटेगा।”[२]

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३, पृ० ८

२ विवेकज्योति - वर्ष ३१, अक - ३, पृ० १६

यहाँ हम देखते हैं कि विवेकानन्द समाज के किसान मजदूर व निम्न वर्ग के लोगो मे भी कैसी शक्ति की कल्पना करते है आधी रोटी मिली तो तीनो लोको में इनका तेज न अटेगा। कितनी अद्भूत बात है जिसे हम कमजोर व हीन समझकर उपेक्षित कर देते है, स्वामीजी उनके अन्दर भी अतीव शक्ति व तेज का दर्शन करते हुए उनके महत्व का प्रतिपादन करतेहै इनका मत था कि केवल उच्च वर्ग के थोडे लोगो के प्रगति कर लेनेसे पूरे देश का उत्थान व विकास नही हो सकता जब कि उसमें समाज के निम्न वर्ग भी सामिल न हो।

(4) जाति प्रथा वर्ण भेद

समाज मे व्याप्त कुरीतियों और विसगतियो को दूर करने के लिये विवेकानन्द सवप्रेरणा की आवश्यकता पर बल देते है। उनका मत है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्त करण मे स्थित आत्म तत्व को जगा देने से ही उनका उद्धार सम्भव है इसी से समाजिक असमान्ताऔर उनके विसगतियों को समाप्त किया जा सकता है। वे समाजिक कुरीतियो एव विसगतियो को समाप्त करने के लिए धर्म और वेदान्त का आश्रय लेने की बात कहते है। उनके दृष्टिकोण से समाज की आखो पर बहुत दिनो तक पट्टी नहीं बाधी जा सकती। समाज के ऊपरी हिस्सो मे कितना ही कूडा करकट क्यो न इकट्ठा हो गया हो, परन्तु उस ढेर के नीचे प्रेम रूप निस्वार्थ समाजिक जीवन का प्राण स्पन्दन होता रहता है। सब कुछ सहने वाले पृथ्वी की भाति समाज भी बहुत रहता है। परन्तु एक न एक दिन जागता ही है। और उस जागृति के वेग से युगो की एकत्र मलिनता तथा स्वार्थ परता दूर जा गिरती है।[१]

जाति प्रथा पर उनके विचार सम्पूर्ण समाजिक और प्रसगिक है। सामान्यत जिस तरह से जाति तथा प्रथा का विरोध किया जाता है स्वामी जी के विचार उससे पूर्णत भिन्न है। जाति भेद तोडने से उनका मतलब यह नही है कि शहर भर के लोग एक साथ मिल कर शराब, कबाब उडये या जितने मूर्ख या पागल हैं वे सब चाहे जिसके साथ शादी कर ले और सारे देश को बहुत बडा पागल खाना बना दें। उनका सिद्वात कुछ भी तोडने के विरूद्ध है जोडने और मोडने मे विश्वास रखते हैं।

१ विवेकानन्द साहित्य - ९, पृ० २१६

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति प्रथा एक विवादा स्पद व्यवस्था मानी जाती है। विवेकानन्द ने जाति को धर्म से बिलकुल अलग करके देखा है, और इसे अपेक्षाकृत नूतन समाजिक कुप्रथा मानते हैं।[१] जाति प्रथा के ऐतिहासिक विवेचना पर बल देते हुए इसके हानि एव लाभ दोनों को देखने की बात कहते हुए वे कहते हैं,- ''जाति प्रथा का बुरा पक्ष तो है परन्तु उससे होने वाले लाभ का पलडा आधिक भारी है। विवेकानन्द जन्म के आधार पर जाति निर्धारण के सर्वथा विरोधी हैं। वे मानते हैं कि पिता के व्यवसाय को पुत्र द्वारा अपनाने से ही जाति प्रथा का विकास हुआ। कालान्तर मे धीरे धीरे यह व्यवस्था विकृत होकर जन्म के आधार पर भेद भाव का बडा कारण हुआ ।[२]

भारतीय जाति व्यवस्था का विभाजन मूलत ब्राहम्ण क्षत्रीय वैस्य और शूद्र के रूप मे हुआ जिसमे मुक्ति की इच्छा रखने वाले तत्व ज्ञानी और सामाज को दिशा देने वाले ब्राहम्ण के रूप में जाने गये। किसी भी तरह के आतक एव अत्याचार के विरूद्ध सरक्षण देने वाले, जनता के हितो की रक्षा करने वाले क्षत्रीय एव अर्थोपार्जन में रूचि लेने वाले वैश्य तथा निम्न आचरण एव निंदित कार्य (हत्या चोरी व्यभिचार आदि) करने वाले शूद्र के रूप मे जाने जाते थे। इन्हीं कार्यो के आधार पर सामाज में जाति का निर्धारण होता था जैसा कि ऋग्वेद में भी एक जगह एक ब्यक्ति द्वारा उदथृत करते हुए दर्शाया गया है कि ''मैं एक कवि हू मेरे पिता मत्रो की रचना करने वाले एक ऋषि हैं और मेरी मा आटा पीसने वाली का काम करती है।''[३]

यह व्यवस्था विकृत होकर कर्म के बजाय जन्म के आधार पर व्यवहृत होने लगा। इस कारण समाजमें ऊच नीच एव भेद भाव छुआ छूत की एक बडी खाई तैयार हो गयी जिससे सामाजिक विद्वेषएव असमान्ता दिनों दिन बढती ही गयी। विवेकानन्द जाति प्रथा को पूर्णत मिटाने या समाप्त करने के पक्षधर नहीं हैं अपितु इस ब्यवस्था को मूल रूप से ब्यावहार में लाये जाने के पक्ष मे है। 'ब्राहम्ण' उनके लिए एक जाति नहीं अपितु मानवता का उच्च आदर्श है और आदर्श को अपने आचरण द्वारा शूद्र चाडाल मेहतर कोई भी प्राप्त कर सकता है इस आधार पर वे भारत मे प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाने की योजना रखते है। जहा ऊँच नीच एव भेद भाव अस्वीकार है।

१ विवेकानन्द साहित्य - १, पृ० २७०
२ वही -१ पृ० २७४
३ ऋगवेद, दसम् खण्ड, पुरुष सूक्त

पाश्चात्य देशों में भारतीय जाति व्यवस्था पर बोलते हुये विवेकानन्द कहते हैं - ‘‘मै जातियों को किसी प्रकार मिटाने की बात नहीं कहता । जाति प्रथा बहुत अच्छी व्यवस्था है । जाति वह योजना है, जिसके अनुसार हम चलना चाहते हैं । जाति वास्तव मे क्या है, यह लाखो लोगों मे से एक भी नही समझता । ससार मे एक भी देश ऐसा नही है, जहॉ जाति भेद न हो । भारत मे हम जाति के द्वारा ऐसी स्थिति में पहुॅचते हैं जहॉ जाति नही रह जाती । जाति प्रथा इसी सिद्धात पर आधरित है । भारत मे योजना है कि प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाया जाये । ब्राह्मण मानवता का आदर्श है, यदि आप भारत का इतिहास पढेंगे, तो पायेंगे कि सदा नीचे वर्गों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया गया है । बहुत से वर्ग हैं जो उपर उठाये गये हैं और भी उठाये जायेंगे, जब तक कि सब ‘ब्राह्मण’ नहीं हो जायेगे।[१]

स्वामीजी जाति के आधार पर भेद-भाव का विरोध करते हुए कहते हैं - ‘‘पर हम अपने आप को ‘मत छुओवाद’ मे बिल्कुल सम्मिलित नहीं करना चाहते । वह हिन्दू धर्म नहीं है, वह हमारे किसी ग्रन्थ में नहीं है, वह एक सनातनीय अन्धविश्वास है, जिसने हमारी राष्ट्रीय क्षमता को सदा हानि पहुँचायी है ।[२]

भारतीय समाज की विविधता को स्वीकार करते हुये वे सतर्क करते हैं कि इसमे सकीर्णता का भाव नहीं आना चाहिए। जिससे कट्टरता और भेद -भाव को बढावा मिले उसका परित्याग कर देना चाहिए । कितने आश्चर्य की बात है यदि कोई किसी की थाली छू दे, तो वह चिल्ला उठता है- परमात्मा ऊबार लो, मैं भ्रष्ट हो गया । इस प्रथा को हम सब को मिल कर मिटाना होगा । अपने गुरू रामकृष्ण देव का स्मरण करते हुये, उनके द्वारा सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुये भी एक पेरिया (नीच चाण्डाल)के घर को साफ करने की ईच्छा रखना (गुप्त रूप से उन्होंने यह कार्य किया भी) जाति के आधार पर सामाजिक समन्वय रखने का ऐसा उदान्त उदाहरण प्रस्तुत करने पर विवेकानन्द आह्लादित होते हुये कहते हैं ‘‘यदि मैं पेरिया होता तो मुझे और आनन्द आता ।[३] इसी भावना को अन्यत्र ब्यक्त करते हुये उन्होंने कहा‘‘ तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी,दरिद्र चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त तुम्हारा भाई है ।’’[४]

१	विवेकानन्द साहित्य - ४	पृ० २५३	२	वही - ४	पृ० २६४
३	वही - ५	पृ० १०५	४	वही - ९	पृ० १८३

सभी मनुष्य मे एक ही आत्मा,एक ही तत्व का निवास है । सभी एक ही तत्व से निर्मित हैं इस बोध के साथ विवेकानन्द कहते है कि सभी मनुष्यो को एक साथ भोजन करने और एक साथ रहने मे कोई बुराई नहीं है । भारत के दीन - हीन और पद्दलित जाति के लोगों को उनका स्वरूप समझा देना आवश्यक है । जाति - पाति का भेद - भाव को छोडकर प्रत्येक नर - नारी तक यह सदेश पहुँचाओ कि ऊँच - नीच ,अमीर - गरीब ,छोटे - बडे सभी में उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है , जो सर्वब्यापी है । अत सभी लोग महान बन सकते हैं ।[१]

'आत्मवत सर्वभूतेषु' सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखना, इस बोध वाक्य के आधार पर वे जन-जन तक सामानता का सन्देश पहुँचाना चाहते थे । उनके अनुसार 'मत छुओवाद' एक प्रकार का मानसिक रोग है । दूसरों के स्पर्श से ही अपवित्र हो जाने वाला, कैसे किसी को पवित्र कर सकेगा। समभाव का विकास, जीवन की पूर्णता व सकीर्णता जीवन की अपूर्णता है ।[२] इस तरह वे सभी प्रकार के भेदभाव का विरोध करते हैं । मद्रास के ब्राह्मणो द्वारा शूद्र को 'वेद'का अनाधिकारी कहने पर वे कह उठते हैं - ''यदि मैं शूद्र होऊँ, तो हे मद्रास के ब्राह्मणों आप लोग शूद्र से भी अधम होवें ।[३]

स्वामी विवेकानन्द सभी मनुष्यों को वेद एव यज्ञोपवीत का अधिकारी मानते हैं । इस तरह वे समाज मे पूर्णत एकता व समता के पक्षधर हैं । जन्म के आधार पर किसी भी भेदभाव का वे विरोध करते हैं । उच्चता का स्थान अच्छे आचरण एव कर्म से है, मानते हुये वे सभी को इसका अधिकारी समझते हैं । समाज के निचले वर्ग को उठाकर सामान्य जन के बीच प्रतिस्थापित करने की बात करते हुये वे कहते हैं -''निम्न वर्ग के बीच जाकर स्कूल खोलिए और उनके गले में यज्ञोपवीत डालिये ।[४] समाज के शिक्षित एव उच्च वर्गो को निम्न वर्ग के उद्धार एव उनके परोपकार की प्रेरणा देते हुये वे कह उठते हैं-''दूसरों के लिए क्या एक जनम नही दे सकते । अगले जनम मे आकर वेदान्त आदि पढ लेना । इस बार दूसरे के उद्धार के लिए शरीर दे दे,तभी समझूँगा कि मेरे पास आना सार्थक हुआ ।''[५] उक्त कथन के अलोक में हम स्वामी जी के जन जन के उद्धार की उदात्त भावना को देख सकते हैं ।

---

१ युग नायक विवेकानन्द - ३ पृ० १९
२ विवेक ज्योति वर्ष - ३५ अक - १ पृ० १०
३ विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ३०
४ वही
५ वही - ६ पृ० ३६१

नारी उत्थान

स्वामी विवेकानन्द 'नारी' को शक्ति का केन्द्र मानते हुये उन्हे समाज में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। एक जागरुक एव सक्षम नारी के द्वारा ही आदर्श समाज एव पीढी का निर्माण किया जा सकता है। उनका मतव्य है - "स्त्रियों की अवस्था में सुधार किये बिना जगत के कल्याण की कोई सभावना नहीं है। स्त्री और पुरुष समाज रूपी पक्षी के दो पख हैं, जिसे ऊपर उठाने के लिए दोनों पखो के सहयोग की आवश्यकता होगी, क्योंकि पक्षी के लिये एक पख से उडना असम्भव है।"[१]

स्वामीजी नारीयो के प्रगति और उत्थान के लिए उनके शिक्षित होने के लिये सबसे अधिक बल देते हैं , क्यों कि शिक्षा ही वो जादू है, जिससे नारियो की स्थिति में आश्चर्यजनक सुधार लाया जा सकता है और किसी तरीके से इनकी उत्थान की बात सोचना अधूरा ही होगा। शिक्षा के द्वारा सक्षम बना देने पर ये अपने उद्धार की बातें स्वय ही सोचने लगेगी।

भारतीय नारियों मे उत्साह एव आत्म बल का सचार करते हुये उन्हें उनकी दीन-हीन अवस्था से बाहर निकालने के लिए वे बार-बार उद्घोष करते हैं - "मत भूलना कि हमारी स्त्रियो का आदर्श सीता, सवित्री और दमयन्ती हैं।" उनके मन में नारियों के प्रति असीम उदारता और सम्मान का भाव है। वे कहते हैं -"ईसा अपूर्ण थे क्योंकि जिन बातो में उनका विश्वास था, उन्हे वे अपने जीवन मे नहीं उतार सके। उनकी अपूर्णता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि उन्होने नारियों को नरो के समकक्ष नहीं माना। असल में उन्हें यहूदी सस्कार जकडे हुये था, इसीलिये वे किसी भी नारी को अपनी शिष्या नहीं बना सके।"

इस तरह स्वामी जी पाश्चात्य जगत मे नारियो की आदर्शात्मक स्थिति का आकलन कर उनसे भारतीय नारियों की श्रेष्ठता स्थापित करते दिखते हैं। वे गौतम बुद्ध को ईसा से श्रेष्ठ मानते हैं, क्यों कि बुद्ध ने नारियो को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया है। इसतरह बुद्ध व ईसा के नारी विषयक चितन के सापेक्ष में भारतीय नारियों की श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

१- विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० ३१७

वेदान्त के मूल सिद्धात, सब मे एक ही आत्मा निवास करती है, के आधार पर स्वामी जी नारियों को किसी भी स्तर से हीन या कमजोर के रूप में नहीं देखते- नारी जाति के प्रति सभी तरह की सकीर्णताओ का बिरोध करते हुये वे कहते हैं - ''तुम लोग नारियो की सदैव निंदा ही करते रहते हो, किन्तु कह सकते हो कि उनकी उन्नति के लिये अब तक क्या किया है, स्मृतियाँ रचकर तथा गुलामी की कडियाँ गढकर पुरुषो ने नारियो को बच्चा जनने की मशीन बना कर छोड दिया है इससे ज्यादा कुछ नहीं।''[१]

नारी जाति की उपेक्षा से किसी भी समर्थ समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध मे विवेकानन्द चेतावनी देते हुये कहते हैं - ''मत भूलो कि नारियाँ महाकाली की साकार प्रतिमाये हैं । यदि तुमने इन्हें ऊपर नहीं उठाया तो यह मत सोचना कि तुम्हारी अपनी उन्नति का अन्य कोई मार्ग है । ससार की सभी जातियाँ नारियो का समुचित सम्मान करके ही महान बनी हैं जो जाति नारियों का सम्मान करना नहीं जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी है और न आगे ही उन्नति कर सकेंगी ।

भारत के नारी समाज के लिये पुरूष की अपेक्षा सच्चे सगिनी की आवश्यकता पर बल देते हुये वे अपनी शिष्या निवेदिता को सम्बोधित करते हुये वे कहते हैं - ''भारत में नारियों की स्थिति मे सुधार के लिये कई कठिनाइयॉ भी हैं । यहॉ पर दु ख अधविश्वास तथा दासत्व का जो साम्राज्य है उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते । इस देश मे आने से तुम्हे अर्धनग्न नारियों के एक ऐसे समूह के बीच निवास करना होगा, जिनमें जाति एव स्पर्श विषयक अद्‌भुत विचार है, जो भय अथवा घृणा के कारण गोरो से दूर ही रहना चाहती हैं और गोरे लोग भी उनसे अत्यत घृणा करते हैं । दूसरी ओर तुम्हें अपने देश के गोरे लोग भी सनकी समझेगे और तुम्हारी हर गतिबिधि को शक की दृष्टि से देखेगे यदि तुम इन बातो के उपरात भी कर्म में लग सकने का साहस कर सको तो तुम्हारा शत् बार स्वागत है।[२]

भारत देश मे स्त्रियो की सामाजिक स्थिति पाश्चात्य देशों से बहुत ही भिन्न है। इस सम्बन्ध मे स्वामी जी कहते हैं,'' मैंने भारत मे कभी किसी स्त्री को हल के साथ जोते जाते या कुत्ते

---

१ विवेकानन्द साहित्य
२ विवेक ज्योति वर्ष - ३१ अक - ३ पृ० ७२

के साथ गाडी खींचते नही देखा है, जैसा यूरोप के कुछ देशो मे होता है।''[१] स्त्रियो के सामाजिक एव पारिवारिक सदर्भ मे भारत एव पाश्चात्य देशो मे उनकी स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुये वे कहते हैं - ''पश्चिम मे स्त्री एक पत्नी है। वहाँ पत्नीके रूप में ही स्त्रीत्व का भाव केन्द्रित है, किन्तु भारत मे जन साधारण समस्त स्तृत्व को मातृत्व में ही केन्द्रीभूत मानते हैं। पाश्चात्य देशो मे गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है। भारतीय गृहो में घर की स्वामिनी और शासिका माता है। पाश्चात्य देशो मे यदि माता हो भी तो उसे पत्नी के अधीन रहना पडता है, क्यों कि घर पत्नी का है। हमारे घरों में माता सदैव रहती है और पत्नी अनिवार्यत उसके अधीन होती है। आदर्श की इस भिन्नता पर ध्यान दीजिये।[२] इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत में भावना के स्तर पर नारी का स्थान कितना उच्च और विशिष्ट है। अनेक अच्छाइयो के होते हुये भारतीय समाज मे नारी जाति के प्रति कुछ न्यूनतायें भी दृष्टिगोचर होती हैं। जिसमें बहु-विवाह, बाल -विवाह विधवा की दयनीय स्थिति एव भेद - भाव प्रमुख है।

विवेकानन्द ने बाल - विवाह को समाज का कलक मानते हुये इसे मिटाने के लिये नवयुवको को प्रेरित किया। स्वामीजी के बाल विवाह के प्रति मुखर विरोध को व्यक्त करते हुये हरि पाटल मित्र लिखते हैं - '' मैंने पहले से ही स्वामी को बाल - विवाह के विरुद्ध देखा, वे सदैव सभी को, विशेषत बालको को हिम्मत बॉधकर समाज के इस कलक के विरोध में खडे होने के लिये उपदेश देते थे।[३]

बाल विवाह के दुष्परिणामो की ओर स्वामी जी ने समाज का ध्यान आकर्षित किया। बाल-विवाह की धार्मिक व्याख्या करने वालों को उन्होंने धिक्कारते हुये लिखा (इग्लैण्ड से स्वामी ब्रह्मानन्द को १८९८ के लिखित पत्र मे) - आठ वर्ष की कन्या के साथ तीस वर्ष के पुरुष का विवाह करके कन्या के पिता - माताओं के आनन्द की सीमा नहीं होती इस काम मे बाधा पहुचाने से वे कहते हैं - कि हमारा धर्म ही चला जायेगा। आठ वर्ष की लडकी के गर्भाधान की जो वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, उनका धर्म कहाँ का धर्म और कैसा धर्म है ?[४]

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३१७
२ वही पृ० ३१०
३ वही - १० पृ० ३२२
४ वही - ४ पृ० ३०८

स्वामी विवेकानन्द सिद्धान्तत विरक्त एव सन्यासी होने से, मुक्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानने के कारण, विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह की बात न सोच कर वे इसे एक मुक्ति के अच्छे अवसर के रूप में देखते हैं । उनके अनुसार धार्मिक स्त्री विधवा होने पर कहती है - परमात्मा ने मुझे अधिक अच्छा अवसर दिया है, मुझे अब बिवाह करने की क्या जरूरत है । मुझे ईश्वर की पूजा अर्चना के बदले किसी पुरुष से प्रेम करने की क्या आवश्यकता है ।

विधवा के विवाह न करने के सम्बन्ध मे उनका एक तर्क और है कि प्रथम दो वर्णो में स्त्रियों की सख्या पुरुषों से बहुत अधिक है । इससे एक दुविधा उत्पन्न हो गयी है। एक तरफ विवाह न करने वाली विधवाओ की समस्या है तो दूसरी ओर पति न पाने वाली नवयुवतियो का प्रश्न है ? इन दोनो में से किसी एक पर विचार करना होगा   यदि उनका (विधवाओं का) अवसर खो गया, फिर भी यह मानना ही होगा कि उन्हें एक अवसर तो मिला ही था, अत बैठ जाइये, चुप होकर जरा इन गरीब लडकियों के बारे मे विचार कीजिये, जिन्हे विवाह करने का एक भी अवसर नही मिला । अतएव उन्होंने विधवाओं के प्रति कहा - "तुम्हें तो अवसर दिया गया, अब हमे इसका बहुत अधिक दु ख है कि तुम्हारे ऊपर भयकर बज्रपात हुआ पर अब हम कुछ नही कर सकते क्यो कि दूसरी कुवारियाँ भी प्रतीक्षा कर रही है"।[१]

इसका अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए की स्वामी विवेकानन्द ने विधवाओ के समस्या की अनदेखी की । वे विधवा के शोषण, दमन एव अत्याचार के पूर्णत विरोधी थे एव उनके स्वतत्र विकास के हिमायती थे । इस तरह सिद्ध होता है कि वे नारी जाति के उत्थान, विकास एव समता के प्रखर वक्ता बनते हुए, इनसे सम्बन्धित समाज में व्याप्त सभी कुरीतियो का जड से उन्मूलन करने के लिए भारतवासियो का आवाह्न करते हैं । नारी को भोग की वस्तु न समझ वे इन्हे शक्ति के केन्द्र के रूप में देखते हैं और मानते हैं कि नारी जगत के उत्थान के बिना न तो कोई समाज उन्नति कर सकता है और न ही सभ्य कहला सकता है । इस तरह हम कह सकते है कि स्वामी विवेकानन्द नारी उत्थान के प्रति कटिबद्ध थे ।

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३१८

शिक्षा

विवेकानन्द ने सामाजिक उन्नति एव राष्ट्रीय उत्थान के लिए शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया। वे शिक्षा को व्यक्ति एव समाज के लिए अनिवार्य अग मानते हैं। उनका विचार है कि शिक्षित समाज के द्वारा ही सामाजिक एव राष्ट्रीय समस्याओ का निदान किया जा सकता है। शिक्षा के विकास से ही समाज मे व्याप्त कुरीतियों एव अन्धविश्वासो को समूल नष्ट किया जा सकता है। वे तत्कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली, जो केवल बाबुओं का निमार्ण कर रही थी, से पूर्णतया असतुष्ट थे। विकेकानन्द के अनुसार - "मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है, इसी पूर्णता के लिए जब तक उचित वातावरण का सृजन नही होता तब तक कोई भी विकास सभव नही है।"

शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष पर बल देते हुए वे इसे सर्वांगीण विकास से जोडकर देखते हैं। उनका मत है कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढे, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे। शिक्षा की महत्ता प्रतिपादित करते हुये विवेकानन्द कहते हैं - "जब तक इस देश में अध्यापन और शिक्षा का भार त्यागी और निस्पृह पुरुष वहन नहीं करेंगे, तब तक भारत को दूसरे देशों के तलवे चाटने पडेगे।[१]

शिक्षा के प्रसार हेतु विवेकानन्द एक विश्वविद्यालय के स्थापना करने की तीव्र इच्छा रखते थे परन्तु दुर्भाग्यवश (अल्पसमय मे ही देहान्त होने से) उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी, परन्तु इस विचार से उनके शैक्षिक प्रसार के चिन्तन को समझा जा सकता है। वे जानते थे कि शिक्षा ही ऐसी सीढी है, जिस पर चढकर व्यक्ति अधकार से प्रकाश की ओर एव पतन से उत्थान की ओर जा सकता है।

शिक्षा के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सामान्य प्रचलित पद्धति से पूर्णत भिन्न है। उनका मत है कि कार्यालयों मे बाबू बनाने की अपेक्षा चरित्र निर्माण मे सहायक होने वाली शिक्षा का प्रसार होना चाहिए। छात्रों का चरित्र बज्र के समान दृढ होना चाहिए। ऐसे युवकों के अस्थियों से

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० ६

ही वह बज्र तैयार होगा जो भारतीय दासता की बेडियो को चूर-चूर कर देगा । उन्होंने चुनौती देते हुए कहा -''यदि आप मुझे योग्य शिक्षित लडके दे सके, तो मै पूरी पृथ्वी को आन्दोलित कर दूँगा ।''[१]

विवेकानन्द गरीब एव पिछडे वर्ग को अन्न एव द्रव्य देने की अपेक्षा उन्हे शिक्षित करने पर ज्यादा बल देते हैं, उनका मत है कि ''चावल का वितरण करके एक गॉव का भी अभाव दूर करना असभव है बल्कि शिक्षा के द्वारा अभावग्रस्त व्यक्ति के अन्दर चेतना जागृत कर उसे चेतना की ओर उन्मुख करके उसका विकास सभव है।[२]

अपने शिष्यो को शिक्षा के कार्य हेतु प्रेरित करते हुये उन्होने कहा कि तुम लोगे ऐसे कार्य मे लग जाओ, जिससे सामान्य वर्ग में शिक्षा का प्रसार हो सके । इसके लिए उनके बीच जाकर कहो कि तुम हमारे भाई हो, तुम हमारे शरीर के अग हो, हम तुमसे घृणा नही प्रेम करते हैं । तुम्हारी ऐसी सहानुभूति पाकर ये लोग सौ गुने उत्साह के साथ शिक्षा ग्रहण के कार्य में लग जायेगे।[३]

शिक्षा के माध्यम से ही स्त्रियो एव निम्न वर्ग के लोगों का वास्तविक और स्थिर विकास सम्भव है । स्वामी जी इनको शिक्षित करने का कार्य पवित्र यज्ञ करने के बराबर मानते हैं । वे उच्च शिक्षा प्राप्त युवकों को धिक्कारते हुये कहते हैं - ''जब तक करोडो मनुष्य मूर्खता तथा अज्ञानता में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित तो हुआ है, परन्तु उनकी ओर तनिक भी ध्यान नही देता ।''[४]

विवेकानन्द गरीबी को ही अशिक्षा की जड मानते हैं क्यो कि गरीबी के कारण कोई भी व्यक्ति, जिनका पेट भरना ही मुश्किल है, अपने बच्चों को विद्यालय कैसे भेज सकता है । अर्थ के अभाव में माता - पिता अपने बच्चों को धन कमाने (मजदूरी आदि) मे लगा देते हैं । इस समस्या के समाधान के लिए उनका मत है - अगर गरीब लडका शिक्षा ग्रहण करने के लिये विद्यालय न आ

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ५

२ वही - ६ पृ० ३५०

३ विवेक ज्योति वर्ष - ३१ अक - ३ पृ० १७

४ शिक्षा, सस्कृति और समाज - २ पृ० ३७०

सके तो शिक्षा को ही उसके पास जाना पडेगा। इसी सम्बन्ध में वे पटियाला के राजा को एक पत्र के माध्यम से लिखते हैं - ''गरीबी । उनको शिक्षा देने में मुख्य बाधा है । मान लीजिये महाराज, आपने हर एक गॉव मे एक नि शुल्क पाठशाल खोल भी दी तो इससे कुछ लाभ न होगा, क्योकि भारत मे गरीबी ऐसी है कि गरीब लडके पाठशाला जाने के बजाय खेतों में अपने माता पिता को मदद देने या किसी दूसरे उपाय से राटी कमाने मे लग जाते है । ऐसे गरीब लडको के लिए शिक्षा को ही उनके पास जाना पडेगा।[१]

प्रत्येक देश की उन्नति वहॉ की शिक्षा पर निर्भर करता है क्योकि अशिक्षित होने पर उन्नति एव विकास को नही समझा जा सकता है । प्रत्येक देश उसी अनुपात मे उन्नत होता है, जिस अनुपात में वहॉ के जन समूह मे शिक्षा तथा बुद्धि का प्रसार होता है । इसकी पुष्टि करते हुये वे कहते हैं - ''भारतवर्ष के पतन का मुख्य कारण यह रहा है कि मुट्ठी भर लोगों ने देश की सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लिया तथा समाज के एक बडे वर्ग को इससे वचित कर दिया ।''[२]

वे शिक्षा का बिना किसी जातीय एव सामाजिक भेद-भाव के समानता के साथ प्रसार के पक्षधर थे। जैसा कि उन्होने अमेरिका से १८९५ में 'ब्रह्मानन्द' को सम्बोधित पत्र मे कहा भी है -- ''यदि निम्न श्रेणी के लोगो को शिक्षा दे सको तो कार्य हो सकता है, ज्ञान बल से बढकर और क्या बल है। क्या उन्हे शिक्षित बना सकते हो ? बडे आदमियों ने कब किस देश में किसका उपकार किया है ? सभी देशों मे मध्यमवर्गीय लोगों ने महान कार्य किया है ।[३]

शिक्षा के द्वारा ही जन समुदाय मे वैचारिक प्रखरता एव बौद्धिक क्षमता का उदय होगा, जिससे वे राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल हो सकेगे । इस सम्बन्ध मे विवेकानन्द कहते है - ''उनमे तरह-तरह के विचार पैदा करने होगे । उनके चारो ओर दुनिया मे कहॉ क्या हो रहा है इस सम्बन्ध में उनकी आखे खोल देनी होगी, इसके बाद फिर वे अपना उद्वार कर लेंगे क्योकि

---

१ विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ३७०
२ वही - ४ पृ० ३४
३ वही - ४ पृ० ३१५

प्रत्येक जाति, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को, अपना उद्धार अपने आप ही करना होगा। अस्तु उनमे वैचारिक चेतना उत्पन्न कर दो । उन्हे इसी एक सहायता की जरूरत है इसके फलस्वरूप बाकी सब कुछ तो अपने आप ही हो जायेगा।''[१]

समाचार पत्र और पुस्तकें समाज मे चेतना फैलाने का कार्य करती हैं । विवेकानन्द इनकी आवश्यकता महसूस करते थे। इसी के कारण वे हिन्दी मे अपना एक पत्र निकालना चाहते थे, जिससे विशाल हिन्दी भाषी क्षेत्र में चेतना फैलाई जा सके । स्वामीजी अपने जीवन मे 'ब्रह्मवादिन', 'प्रबुद्ध भारत', 'उद्बोधन' तथा तीन अग्रेजी पत्रिकाओ का प्रर्वतन कर सचालन करते थे। साथ ही कई अन्य का पत्रिकाओ के प्रर्वतन मे (वसुमती, डॉन आदि) परोक्ष रूप से उनका हाथ था। उनकी भावधारा को मूर्त रूप प्रदान करने वाली ये पत्रिकायें आज भी समाज को नयी दिशा दे रही हैं ।[२]

विवेकानन्द जनता को उन्ही की भाषा में शिक्षित करने एव पत्र - पत्रिका सचालित करने के पक्षधर थे, इसी क्रम मे सभी भाषा - भाषी की भावनाओं व अपेक्षाओ को ध्यान मे रख कर वे एक ऐसी पत्रिका निकालना चाहते थे, जो आधा हिन्दी में हो तथा आधा बगला मे तथा हो सके तो अग्रेजी में भी। ब्रह्मानन्द को यही निर्देश देते हुये वे लिखते हैं – ''तुम लोगों को एक मासिक पत्रिका का सम्पादन करना होगा, जिसमे आधी बगला रहेगी और आधी हिन्दी तथा हो सके अग्रजी भी।''[३] इसके लिए त्याग एव धैर्य की आवश्यकता पर बल देते हुए वे आलासिगा पेरुमल को पत्र में लिखते हैं - ''यदि हो सके तो समाचार पत्र और मासिक पत्रिका दोनो ही निकालो पल भर के लिए भी विचलित न होना।''

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द शिक्षा के उत्थान एव इसके समाज के सभी वर्गों मे समान रूप से प्रसार के हिमायती थे । वे इसे प्रत्येक व्यक्ति एव राष्ट्र के लिए अनिवार्य मानते थे, क्यो कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति नयी-नयी ऊँचाईयों को छूता है। इसके अभाव में वह केवल पशु ही है ।

---

१ विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ३७०
२ विवेक ज्योति वर्ष - २५ अक - ४ पृ० ५६
३ विवेकानन्द साहित्य - ८

विश्व बोध

विवेकानन्द ने अपने उदात्त मानवीय चिन्तन के कारण देश और काल की सीमा को लॉघकर विश्वबोध से अनुप्राणित होकर पूरे विश्व की शोषित, पीडित और उपेक्षित मानवता के प्रति सवेदना व्यक्त किया। अमेरिका के धर्म महासभा में उनका सम्बोधन भी इसी भाव को व्यक्त करता है - ''मेरे मित्रों! पहले मनुष्य बनो, तब तुम देखोगे बाकी चीजे स्वय तुम्हारा अनुसरण करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेष भाव को छोडो और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एव सद्वीर्य का अवलम्बन करो।''[१]

वे अग्रेजी साहित्य के उत्कट विद्वान थे। उनके धर्म प्रचार का लम्बा समय पाश्चात्य देशो मे बीता। उन्होने 'हर्बर्ट स्पेसर' व 'जान स्टुअर्ट मिल' का अध्ययन किया था। वे शेली के सर्वात्मवाद और वर्ड्सवर्थ की दार्शनिकता को पसन्द करते थे। 'हीगेल' के वस्तु निष्ठात्मक आदर्शवाद का उन्होने अध्ययन किया था। पाश्चात्य साहित्य और दर्शन के ज्ञान के बाद उससे भारतीय साहित्य व दर्शन का समन्वय स्थापित करते हुए उन्होंने निकर्ष निकाला कि दोनो के आधार पर एक वृहत्तर सम्बन्ध हो सकता है, जिसका पारिणाम मानव मात्र के लिए हितकर होगा। वे कहते हैं - ''भारत में समाज की बेडी को तोडना होगा और यूरोप मे धर्म की बेडी को। तभी मनुष्य का आश्चर्य जनक विकास और उन्नति होगा।''[२]

इनमें यूरोपीय सभ्यता की वह प्रवृत्ति अत्यन्त मुखर थी, जो निरन्तर खोज और सतत् अनुसधान मे लगी रहती है, जो किसी भी कथन को प्रमाण नही मानकर, प्रत्येक विषय का विश्लेषण करना चाहती है तथा जो सत्य की खोज में विवेक और बुद्धि को छोडकर और किसी वस्तु का सहारा नहीं लेती। विवेकानन्द यूरोपीय विचारधाराओ के मूर्तिमान रूप हैं एव उनके भीतर वे सारे सस्कार वर्तमान हैं जिनके कारण अग्रेजी पढे - लिखे हिन्दू, हिन्दू धर्म की आलोचना करते हैं। इस कारण वे इन आलोचकों को उन्ही की भाषा मे समझाने में सफल रहे।

ससार के सभी देशों के पीडित मानवता के उपकार हेतु वे पाश्चात्य

---

१ विवेकानन्द साहित्य - १० पृ० ६२
२ वही - २ पृ० ७०

देशो मे, जहॉ वैभव व विलास है परन्तु शान्ति नही है, वहॉं निवृत्ति मार्ग की ओर भारत, जहॉ धर्म व शील तो है परन्तु सर्वत्र निर्धनता व दारिद्रय है, वहॉ पर प्रवृत्ति मार्ग की आवश्यकता पर बल देते हैं । वे सभी राष्ट्रो के सम्मेलन से ऐसे चरित्र की कल्पना करते थे, जिसमें फ्रासीसी जातीय मेरुदण्ड 'राजनीतिक स्वतत्रता', अग्रेजी जातीय चरित्र, 'आर्थिक स्वतत्रता' और हिन्दू जातीय चरित्र 'मुक्ति' या 'आध्यात्मिक स्वतत्रता' का समन्वय हो ।

स्वामी जी भारत मे रजोगुण के अभाव और पश्चिम में सत्व गुण के अभाव की चर्चा करते हुये इन दोनो के आपसी समन्वय से अभाव की चर्चा करते हुये इन दोनो के आपसी समन्वय से एक विश्व के निर्माण की सम्भावना व्यक्त करते हैं । 'प्राच्य' एव 'पाश्चात्य' की एकता के कुछ परिणाम उन्हें दिखने लगे थे क्यो कि परस्पर राष्ट्रों मे मेलजोल बढता जा रहा था और उनका दृढ विश्वास था कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब राष्ट्र नामक कोई वस्तु नही रह जायेगी । राष्ट्र- राष्ट्र का भेद दूर हो जायेगा ।

शिकागो के 'धर्म महासभा' मे वे सभी धार्मिक सकीर्णताओं को तोडकर पूरे विश्व के धर्म में समन्वय स्थापित करते हैं । 'धर्म महासभा' का उद्देश्य था कि ससार का सर्वोत्तम धर्म कौन सा है ? प्रत्युत्तर में स्वामी जी सभी धर्मों के मूल तत्व को एक बताते हुये हुये विश्व के सभी धर्म को सत्य व उत्तम मानते हुये सबका समन्वय करते हैं । वे किसी एक धर्म के प्रसार व प्रतिष्ठान का विरोध करते हुये सभी धर्मो के समान रूप से एक दूसरे के साथ मिलकर प्रगति करने के पक्षधर हैं । वे मानते हैं - ''एक दिन प्रत्येक जाति व प्रत्येक धर्म इसकी जाति व दूसरे धर्म के साथ आपस में भावों का आदान - प्रदान करेगा और अपनी - अपनी अन्तर्निहित शक्ति के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होगा ।''[१] इस तरह हम देखते हैं कि विवेकानन्द वैश्विक धरा पर भी एकता, सहभागिता, शान्ति व समन्वय के साथ विकास के पक्षधर हैं ।

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ८

(घ) आर्थिक भावधारा

आर्थिक चिन्तन

स्वामी विवेकानन्द सन्यासी और बैरागी होते हुए भी देश की अर्थव्यवस्था को उबारने एव सामान्य जन को आर्थिक दुश्चक्र से निकालने के लिए कृत सकल्प थे। अग्रेजो द्वारा भारतीय सम्पदा का अनवरत दोहन एव भारत के कच्चे माल लेकर उस पर कई गुना दाम लगाकर, वही सामान बाजारों में लाकर भारतीयों के बीच विक्रय किया जाता था। इस तरह, इस दोहरे दुश्चक्र से भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ पूर्णत टूट चुकी थी।

किसान और मजदूर अनवरत हाड - तोड परिश्रम करने के बाद भी दो वक्त की रोटी नही जुटा पाते। इस कारण वे ब्याज व सूदखोरी के विस्तृत जाल मे निरतर उलझते जा रहे थे। इस गहरे आर्थिक चक्र से बाहर निकलने का उनके पास कोई रास्ता नही था। कभी - कभी इसकी अतिम परिणति गहन हताशा एव निराशा के रास्तों से होते हुए आत्महत्या तक पहुँचा देती थी। दु ख की बात है कि इस भयावह स्थिति में भी न तो कोई इनकी सहायता करने वाला था और न ही उबारने वाला।

स्वामी विवेकानन्द इस विकृत आर्थिक प्रणाली से अनभिज्ञ नहीं थे। इसके लिए उन्होंने भारतीय उच्च वर्ग एव अग्रजों को समान रूप से धिक्कारा। अग्रेजों के शोषण से क्षुब्ध होकर वे कह उठते हैं - ''वे हमारी गर्दन पर सवार है और अपने सुख, भोगो के लिए उन्होने हमारे रक्त की अन्तिम बूँद तक चूस लिया है। वे हमारी करोडों की सम्पत्ति हरण कर ले जा रहे हैं। जब कि गॉव - गॉव मे हमारी जनता भूँखों मर रही है। आगे वे कहते हैं कि भारत में धर्म का अभाव नही है, अभाव है तो रोटी का। हमारे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हैं और ऐसी बुरी स्थिति तक पहुँच चुके है कि मुट्ठी भर अन्न के अभाव में लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं, और दूसरी ओर सुखोपभोग के लिए लाखों रूपये खर्च किये जा रहे हैं।''[१]

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ८

विवेकानन्द आर्थिक विकास को समानता एव मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से जोडकर देखते हैं । प्रत्येक जीव के लिए भोजन उपलब्ध कराना उनकी आर्थिक प्राथमिकता है। उनका चितन है कि एक तरफ कोटि - कोटि क्षुधार्थ नर - नारी शुष्क कठ से रोटी - रोटी चिल्ला रहे हैं और हम उन्हे देते है पत्थर ।[१] जब तक देश का एक कुत्ता भी भूँखा है, तब तक मैं देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपराधी समझता हूँ । पडोसी भूखा हो तो मदिर मे प्रसाद चढाना बेइमानी है । मानवता दुर्बल हो तो यज्ञ में घी जलाना उसका तिरस्कार है ।[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि वे आम जनता के उत्थान और विकास से जुडी आर्थिक प्रगति के पक्षधर हैं ।

अर्थ—धर्म समन्वय

विवेकानन्द धर्म एव अर्थ को समान रूप से महत्व देते हुये इसके समन्वय के पक्षधर है। यूरोप में जहाँ अर्थ की प्रचुरता है लेकिन धर्म का अभाव है, वहाँ वे धर्म की शिक्षा देते हैं किन्तु भारत मे धर्म तो बहुत है, अर्थ का अभाव है, इसलिए यहाँ वे आर्थिक समृद्धि की प्रेरणा देते हैं । वे पाश्चात्य एव प्राच्य देशों के परस्पर, धर्म एव अर्थ की सहायता लेकर समान रूप से विकास करने के पक्षधर हैं । स्वामीजी ने यूरोपवासियों को भारत में उद्योग एव कारखाना लगाने के लिए प्रेरित किया । वे जानते थे कि आर्थिक समृद्धि से प्राप्त मजबूत मासपेशियो पर ही धर्म अवस्थित होगा ।

विवेकानन्द देश को आर्थिक समृद्धि के लिए कर्मशील होने की शिक्षा देते है । उनका चितन है कि देश के करोडो किसान - मजदूर ही इसके प्रॉण हैं – ''जो छोटी-छोटी जातियाँ हैं वही लगातार काम करती जा रही हैं और अपने परिश्रम का वाछित फल भी नही प्राप्त कर पा रही हैं । इन लोगो ने मौन सहकर हजारो वर्षों तक अत्याचार सहा है । अब इनके कल्याण के लिए हमे विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है ।''[३] इस सम्बन्ध में वे आलासिगा पेरुमल को लिखे पत्र मे अपनी बात इस तरह व्यक्त करते हैं – ''दुखी लोगो की सहायता करने में मैं विश्वास करता हूँ

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० ८

२ विवेकानन्द साहित्य - ४

३ विवेक ज्योति वर्ष - ३१ अक - ३ पु० १५

और दूसरो को बचाने के लिए नरक तक जाने को तैयार हूँ ।''[१]

वे भारत के सभी अनर्थों की जड को गरीबी और दुर्दशा मानते हुए उसके विकास के लिए आशवादी हैं – ''पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे दानव है, उनकी तुलना में हमारे यहॉ के गरीब देवता हैं । उनकी उन्नति करना सहज है''।[२] वे निर्धन की उन्नति एव निम्नवर्ग की प्रगति की अपेक्षा रखकर चेतावनी देते हुए कहते हैं – ''गरीब ही देश के मेरुदण्ड हैं, जो अपने परिश्रम से अन्न उत्पन्न करते हैं । ये मेहतर, ये मजदूर यदि एक दिन काम करना बन्द कर दे तो पूरा देश हिल जाये परन्तु उनके साथ सहानुभूति रखने वाला कोई नही है ।''[३]

विवेकानन्द का आर्थिक चितन उनके सामाजिक दर्शन मे सन्निहित है। जो मानव मात्र के कल्याण की भावना से ओत - प्रोत है । वैश्विक अर्थव्यवस्था की विसगति, जिसमे धनी व्यक्ति और धनी तथा गरीब और गरीब बनता जा रहा था, से वे सन्तुष्ट नही थे । वे समता के साथ, सभी के समान रूप से उन्नति के पक्षधर थे । इस सम्बन्ध मे वे अपने को समाजवादी मानते हुये कहते हैं -- ''मैं समाजवादी हूँ इसलिए नही कि मै, उसे सभी बातों में पूर्ण मानता हूँ , वरन इसलिए की अन्धे मामा से काना मामा अच्छा है''।[४]

स्वामी जी बाहरी तौर पर जुलूस, आन्दोलन और हडताल के विरोधी थे । वे इसको आर्थिक अवनति का कारण मानते थे । उनका कहना है - ''लोग जुलूस निकाल रहे हैं और भी न जाने क्या-क्या कर रहे हैं, परन्तु इससे वे आर्थिक उन्नति नही कर सकते।''[५] वे मिल मालिक व मजदूर तथा जमींदार एव कृषक के बीच समता स्थापित करके ही आर्थिक विकास का मार्ग देखते हैं । अर्थ, जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, इसलिये न तो इसकी उपेक्षा की जा सकती है और न ही इससे पलायन । धार्मिक उन्नति एव प्रगति के साथ आर्थिक उन्नति को भी समान महत्व देकर गैरिक वस्त्रधारी सन्यासी विवेकानन्द ने समाज को विभिन्न क्षेत्र में नयी दिशा प्रदान कर सभी को चमत्कृत कर दिया ।

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ३२४
२ वही - २ पृ० ३६९
३ शिक्षा सस्कृति और समाज पृ० ६१
४ वही पृ० ८१
५ युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० २

तृतीय अध्याय

द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य

(क) युगीन परिस्थितियाँ

(ख) समकालीन साहित्यकार

(ग) प्रवृत्तियाँ

(क) युगीन परिस्थितियाँ

युगीन परिस्थीतियाँ साहित्य पर अपना गहरा प्रभाव डालती हैं । सामाजिक धरातल पर होने वाले उठा - पटक एव उथल - पुथल का साहित्य पर सीधा प्रभाव पडता है । हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग में उस समय की परिस्थितियों का प्रभाव किस तरह साहित्य पडा । द्विवेदी युग में भी तत्कालीन परिस्थितियो ने एव राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिर्वतन ने साहित्य पर प्रभाव डाला । भारतेन्दु हरिश्चद्र जैसे व्यक्तित्व के आगमन से हिन्दी साहित्य को नई दिशा मिली । हिन्दी साहित्य मे गद्य विधाओ का आगमन कर उन्होने भाषा साहित्य को आगे बढाने का जो महान कार्य आरम्भ किया, समय के साथ उसमे विकृति आ गयी । भाषा की अच्छी जानकारी न रहने पर अनुवाद के कार्य मे त्रुटिया आने लगी। भाषा साहित्य के क्षेत्र मे अराजकता और उच्छृखलता का वातावरण बन गया । इस घोर निराशा एव गहन अधकार के समय में साहित्य के उन्नयन हेतु पुन एक धनी व्यक्तित्व का आविर्भाव होता है जिन्हे हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जानते एव पहचानते हैं ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के सम्पादन के माध्यम से हिन्दी साहित्य को अराजकता एव दोषपूर्ण रचना विधान के घेरे से उन्मुक्त करने का अथक एव सार्थक प्रयास किया । तत्कालीन लेखकों को द्विवेदी जी ने नियम और अनुशासन मे निवद्ध कर रचना करने को प्रेरित किया । इस तरह भाषा साहित्य को परिमार्जित एव परिनिष्ठत कर हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम दिया । अपने इस कार्य से द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य मे चिरस्मरणीय बन गये । विदेशी शासन के दमन एव अत्याचार से मुक्ति के लिए जहाँ एक तरफ नेताओं ने आन्दोलन किया तो दूसरी ओर लेखकों ने अपनी लेखनी के द्वारा राष्ट्र एव समाज मे नयी चेतना फैलाने का प्रयास किया । युगीन परिस्थितियों का साहित्य पर जो प्रभाव पडा उसे हम विभिन्न भागों मे बाट कर देखने का प्रयास करते हैं ।

राजनीतिक परिस्थिति –

राष्ट्रीय चेतना का विकास भारतेन्दु युग मे आरम्भ हो चुका था ।

द्विवेदी युग ने इस चेतना को नयी गति एव दिशा प्रदान की । उच्च शिक्षा एव अग्रेंजी शिक्षा प्राप्त लोग अब पश्चिम की विचार धारा को समझने लगे थे । वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार - प्रचार से साहित्य एव समाज मे नवजागरण की लहर दौड पडी थी । राष्ट्र के उत्थान की भावना के विकास से राजनैतिक क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति पैदा हो गयी । अग्रेजों की अनैतिक एव कूटनीतिक चालो को जनता अब समझने लगी थी, जिससे जनता मे अग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश बढने लगा । इन विचारों की अन्तर्धारा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये भारतीय जनमानस को काग्रेस के रूप मे एक ऐसा मच मिल गया जहॉ से वे अपनी भावनाओं एव विचारों को प्रकट कर सकते थे । कालातर में काग्रेस में भी दो दल उभरने लगे । एक विचारो की उग्रता के कारण 'गरम दल' तो दूसरा लचीले पन की धारणा से नरम दल कहलाया । दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गॉधी आदि नरम दल तो बालगगाधर तिलक, लाला लाजपत राय , विपिन चन्द्र पाल एव अरविन्द घोष गरम दल के नेता थे । प्रारम्भ में नरम दल का काग्रेस के भीतर प्रभाव अधिक था । अग्रेजों की दमनकारी नीति, बेहिसाब लगान की वसूली, निरन्तर पडने वाले दुर्भिक्ष एव अकाल की महामारी से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी, उस पर सरकार की सैनिक कार्यवाही जनता के लिए असह्य हो जाती थी । इसके बाद भी प्राकृतिक आपदाऍ एव महामारी तो मानो जनता की रीढ ही तोड देती थी । प्लेग फैलने के समय अग्रेज अफसरो के अनाचारो के विरोध में चापेकर बन्धुओ ने रैण्ड एव एम्हर्स्ट की हत्या कर दी । किसी भी भारतीय द्वारा अग्रेज अधिकारी की यह प्रथम हत्या थी । इस तरह हम देखते हैं कि राष्ट्रीयता एव अधिकारो की प्राप्ति के लिए आत्मघाती प्रतिक्रिया का प्रारम्भ इसी युग में होता है । बदले मे चापेकर बन्धुओं को फॉसी पर चढा दिया गया । तिलक ने नव जागरण के लिए गणेश उत्सव एव शिवाजी उत्सव प्रारम्भ किया । मराठी भाषा में 'केसरी' और अग्रेजी भाषा में 'मराठा' पत्रिका का प्रकाशन कर जनता में नयी चेतना फैलाने का कार्य किया ।

कसी भी युग को एक निश्चित समय सीमा में नहीं बाधा जा सकता है किन्तु कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर उसका अनुमान लगाया जा सकता है । द्विवेदी युग के सम्बन्ध में भी ऐसा ही माना जा सकता है । लगभग १९०० से १९२० तक के काल खण्ड को द्विवेदी युग के नाम से जाना जा सकता है । भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उपर्युक्त कालखण्ड ऐतिहासिक हलचलों एव उथल - पुथल से परिपूर्ण रहा है । इसी समय लार्ड कर्जन भारत का

वायसराय बन कर आया । वह साम्राज्यवादी नीति का कट्टर समर्थक था । उसकी जन विरोधी नीतियो एव कार्यो से जनता को घोर कष्ट उठाना पडा । बगाल का विभाजन (१९०५ ई०) करके उसने देश को बाटने का कुत्सित प्रयास किया । इस युग में कई बडे अकाल पडे । प्लैग जैसी जानलेवा महामारी भी फैली । प्रवास सम्बन्धी बिल (१९०७ ई०), सभाबन्दी कानून (१९०८ई०), प्रेस एक्ट (१९०८ ई०) आदि के कारण जहॉ एक तरफ अग्रेजों का दमन बढता गया तो दूसरी तरफ जनता का प्रबल प्रतिकार भी नया स्वरूप धारण करने लगा । 'युगान्तर' और 'सन्ध्या' पत्रिका के द्वारा जहॉं चेतना को नवीन विस्तार प्राप्त हुआ वहीं 'वन्देमातरम्' के तुमुल उद्घोष द्वारा जनता के हृदय में जोश एव उमगो की भावनओ को बुलन्द किया गया ।

लार्ड मिण्टो (१९०५ मे) भारत का वायसराय बन कर आया । उसने आते ही भारतीयो पर दमन चक्र तेज कर दिया । एक तरफ राष्ट्रीय आन्दोलन अगडाईयॉ लें रहा था तो दूसरी तरफ 'फूट डालो राज्य करो' के छल कपटपूर्ण नीति के कारण भारतीय समाज मे जातीय अलगाववाद के बीज भी इसी काल मे अकुरित होने लगे । १९०६ ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना से अलगाववाद का बीज अकुरित हो कर पौधे का रूप धारण कर लिया, जो कालान्तर मे भारत विभाजन का कारण बना । इसी के समानान्तर वन्दिनी भारत माता को परतत्रता की बेडियों से मुक्ति दिलाने के लिए कई सपूतो ने अपना तन, मन, धन, जीवन, प्राण, सर्वस्व समर्पित कर दिया । इसी क्रम में श्यामजीकृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, अरविन्द घोष, वारिन्द्र घोष, खुदी राम बोस, मदनलाल धींगरा तथा लाला हरदयाल जैसे नेताओं ने गदर आन्दोलन को पूरे देश मे फैला दिया । बगाल विभाजन को लेकर आन्दोलन उग्र होता गया, जिसका परिणाम जनता के रोष के रूप मे सामने आने लगा था । १९१५ ई० में महात्मा गाधी के भारत आगमन से यहा की राजनीति मे एक नये दौर की शुरुआत हुयी । गॉंधी काग्रेस के नेता बने तो जिन्ना मुस्लिम लीग के । प्रथम विश्व युद्ध (१९१४ ई०-१९१८ ई०) के दौरान महात्मा गॉंधी एव बालगगाधर तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओ ने अग्रेजी हुकूमत का साथ इस आशा एव विश्वास से दिया कि वे उनके साथ सहृदयता दर्शायेगे परन्तु परिणाम आशा के विपरीत निकला । देश मे अग्रेजों का दमन एव अत्याचार निरन्तर बढता ही गया । तिलक की लोकप्रियता से घबडा कर अग्रेजो ने उनपर कई झूठे आरोप मढ कर जेल में डाल दिया । १९०८ ई० से १९१४ ई० तक माण्डले जेल में रहने के बाद छूटने

पर एनीबेसेन्ट के सहयोग से १९१६ ई० में होमरूल लीग की स्थापना की। होमरूल लीग की स्थापना से देश के नवयुवको मे स्वराज प्राप्ति की चेतना का विकास हुआ। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय साहित्य की रचना भी की जाने लगी। १९१९ ई० में महात्मा गाँधी द्वारा रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू करने से पूरे देश मे अग्रेजी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन तीव्र हो गया ।

पजाब के गवर्नर जनरल डायर ने जलियावाला बाग मे हो रही शाति सभा मे निहत्थे लोगो पर गोलिया बरसवाकर वीभत्स नर - सहार कराया। इस घटना से पूरा देश क्षुब्ध हो उठा। १९२० ई० में महात्मा गाधी के नेतृत्व मे अग्रेजी सरकार से किसी भी मुद्दे पर सहयोग न करने के लिए असहयोग आन्दोलन चलाया गया, जिसमें राष्ट्रीय नेता, वकील, पत्रकार एव राष्ट्र भक्तों ने बढ - चढ कर हिस्सा लिया। इस आन्दोलन को पूरे देश मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुयी क्योकि चौरी चौरा घटना से क्षुब्ध हो कर महात्मा गाधी ने यह आन्दोलन वापस ले लिया। १९२० ई० मे गरम दल के शीर्ष नेता लोक मान्य तिलक के निधन से पूरा देश इस महान सपूत के खोने पर शोक मग्न हो गया। इस तरह हम देखते है कि १९०० से १९१२ ई० का समय राजनैतिक उठा पटक, नये घटनाक्रमो से युक्त द्वन्द्व एव सघर्षो का कालक्रम था। अनिवार्य रूप से इनके प्रभाव से तत्कालीन समाज एव साहित्य भी अछूता नही रहा। महात्मा गाधी के सत्य, अहिंसा, मानवता, विश्वबन्धुत्व एव राष्ट्रीयता का स्थायी प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारो-नाथूराम शर्मा 'शकर', महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, मैथलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक तथा गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि पर स्पष्ट देखा जा सकता है।

समाजिक परिस्थिति :—

द्विवेदी युगीन भी बडा उलट फेर एव परिवर्तन हो रहा था। यह परिवर्तन तत्कालीन सामाज सुधार आन्दोलन द्वारा सम्भव हुआ था। पश्मि के साथ सम्पर्क बढाने के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से परखने की शक्ति का विकास हुआ जिससे अन्धविश्वास, कुरीतियों एव आडम्बरों का विरोध होने लगा। भाईचारा एव समानता के भाव ने प्रबुद्धवर्ग को प्रभावित किया। राम कृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, राजाराम, मोहन राय, केशव चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती एव रानाडे

जैसे नेताओ ने सामाजिक पुनरुद्वार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये । रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, वेदान्त समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी तथा गॉधीवादी विचारधारा जैसे अनेक सगठनो ने अपने - अपने तरीके से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने एव नयी चेतना का सचार करने का प्रयास किया । दादा भाई नौरोजी, गोखले और तिलक प्रभृत राजनेता समाज सुधारक भी थे । रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामीदयानन्द 'सरस्वती' जैसे सन्त एक तरफ ईश्वरोन्मुख साधना में रत रहते थे, तो दूसरी तरफ सामाजिक आवश्यकताओ एव चुनौतियो से मुँह न मोड कर समाज सुधार करने और नये समाज गढने में अपना अप्रतिम योगदान दिया । स्वामी विवेकानन्द ने 'नर को ही नारायण' मानते हुए भूँखो को भोजन कराना, ईश्वर की पूजा एव दीन - हीन की सेवा को ही ईश्वर की सेवा का रूप दिया । इन्होने कहा - ' कि यदि पडोसी भूँखा हो तो मन्दिर में प्रसाद चढाना बेमानी है ।'

इस युग मे कुछ अमानुषिक प्रथायें ढीली तो पडी थीं परन्तु छुआ - छूत, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा का अभाव, पर्दाप्रथा, वर्णभेद, समुद्र यात्रा विरोध तथा अधविश्वास आदि कुरीतियॉ समाज को अब भी खोखली कर रही थी । तत्कालीन नेताओं ने इन कुरीतियो को नष्ट करने के लिए कई कार्य किये । रेल का प्रसार, तार का प्रचलन एव मुद्रण के चलन से सामाजिक रूढियॉ टूटने लगी थीं । राष्ट्रीय आन्दोलन ने सामाजिक कुरीतियों को प्रभावित किया । राष्ट्र को स्वतत्र कराने की भावना ने लोगों को जाति, धर्म, वश से ऊपर उठने को प्रेरित किया । हिन्दू - मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार तथा सामाजिक समन्वय स्थापित करने के लिए नेताओ ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये । आर्यसमाज द्वारा चलाये गये 'शुद्धि आन्दोलन' ने जहॉ हिन्दुओं की बिखरी हुयी जातियो को एक जुट होने की प्रेरणा दी वहीं हिन्दू और मुसलमानों को एकजुट करने के लिए कई कार्यक्रम भी बनाये गये । तर्कबुद्धि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नवीन शिक्षा एव नूतन आविष्कारो ने एक नयी राह पर चलने की प्रेरणा दी ।

धार्मिक परिस्थिति :—

पौराणिक धर्म की प्रमुखता के कारण बहुदेववाद, यात्रा, व्रत, कर्मकाण्ड

एव मूर्तिपूजा, तथा त्योहारो का बोल - बाला था । आर्यसमाज द्वारा इन आडम्बरों व भेद भाव को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया । एकेश्वरवाद का प्रसार करके आर्यसमाज ने धार्मिक स्तर पर विखण्डित समाज को एक सूत्र मे पिरोने का कार्य किया । रामकृष्ण परमहस के मानववाद को केन्द्र में रख कर विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के द्वारा मानव सेवा और शोषित, पीडित, दलित के उद्धार तथा उन्नयन को धर्म और ईश्वर सेवा के रूप मे दर्शाने का प्रयास किया गया । विवेकानन्द कहते थे - ''यदि व्यक्ति दुर्बल हो तो हवन मे घी की आहुति देना जागृत देवता का घोर तिरस्कार है ।'' इस तरह अनेक धर्मसुधार आन्दोलनो के द्वारा इस युग मे धीरे - धीरे आम आदमी धर्म के केन्द्र में आने लगा ।

धार्मिक सस्कारों को तत्कालीन नेताओ ने नया आयाम दिया । मुक्ति, मानवधर्म, परोपकार, तथा कर्मवाद को विभिन्न नेताओ ने अपने - अपने दृष्टिकोण से परिभाषित कर धार्मिक विवेचन किया । लोकमान्य तिलक, एनीबेसेन्ट, विवेकानन्द और महात्मा गॉधी ने अपने - अपने ढग से मानव धर्म का सदेश जन - जन तक प्रचारित और प्रसारित किया । इस तरह द्विवेदी युगीन धार्मिक स्थिति - परिर्वतन, सवर्धन एव सुधार का युग था ।

साहित्यिक परिस्थिति:—

भारतेन्दु के अवसान के बाद हिन्दी की उन्नति मे शिथिलता आ गयी थी । अनुवाद एव अनुकरण की प्रवृत्ति बढ रही थी । साहित्यिक गतिविधियों को नियत्रित करने वाला कोई नेता नहीं था । साहित्य में एक प्रकार से अराजकता, उच्छृखलता और पथ भ्रष्टता का वातावरण बन गया था । अग्रेज भाषा भेद नीति को बनाये रख कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे । इन झझावातों के बाद भी हिन्दी प्रेमियों के द्वारा हिन्दी की उन्नति के प्रयास जारी थे । राजनीतिक आन्दोलन एव वैज्ञानिक आविष्कारों तथा ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न से हिन्दी के विकास मे किचित सहायता तो पहुँची किन्तु अनगढ भाषा, सौष्ठवहीन काव्य एव साहित्यिक मानक से च्युत, रचित रचनाओ के कारण हिन्दी साहित्य का स्तर गिरता ही जा रहा था । ऐसे साहित्यिक सक्रमण के काल मे प० महावीरप्रसाद द्विवेदी का अविर्भाव हुआ, जिन्होने भाषा को

सस्कार देकर हिन्दी साहित्य को नया आयाम दिया। एक कुशल शिल्पी की भाँति भाषा के गढन में नवीन विधा का प्रयोग किया। एक सशक्त आलोचक बन कर उन्होने विभिन्न रचनाकारों की रचनाओ को सुधारा। यह कार्य उन्होने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन के माध्यम से किया। गद्य एव पद्य की भाषा शैली मे सुधार के लिए द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम किया। उनकी लगन से हिन्दी साहित्य का परिमार्जित स्वरूप नये तेवर एव कलेवर के साथ उभर कर सामने आने लगा। उन्होने भाषा को प्रसाद गुॅण से युक्त, व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों से दूर एव अभिव्यजना शक्ति से परिपूर्ण बनाने का सशक्त प्रयास किया। इस तरह हम कह सकते है कि द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य, नयी चेतना लेकर नयी दिशा की ओर अग्रसर हो रहा थी।

(ख) समकालीन साहित्यकार

इस युग में गद्य की विभिन्न विधाओ का विकास हुआ। काव्य रचना में भी विषय - वस्तु का विस्तार हुआ। हिन्दी साहित्य को श्रृगारिकता से राष्ट्रीयता, जडता से प्रगति तथा रूढि से स्वच्छन्दता के द्वार पर ला खडा करने वाले बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशको का (१९०० से १९२० ई०) सर्वाधिक महत्व है। इस कालखण्ड के पथ प्रदर्शक, विचारक और सर्व स्वीकृत साहित्य पुरोधा आर्चाय महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' सर्वथा उचित ही है। सामाजिक तथा राजनैतिक सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में इसे "जागरण सुधार काल" भी कहा जाता है।

द्विवेदी युग के साहित्य व साहित्यकारो को दो भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है

१- पद्य साहित्यकार।

२- गद्य साहित्यकार।

पद्य साहित्यकार -

इस अवधि में बहुत से कवि ऐसे हैं, जो १९०० ई० से पहले से रचना कर रहे थे और १९२० ई० के बाद काफी दिनो तक काव्य रचना करते रहे, इसलिए निश्चित अवधि की सीमा के अर्न्तगत् हम रचनाओं को नही बॉध सकते। यही कारण है कि जब किसी युग विशेष के सन्दर्भ मे कवि का उल्लेख करते हैं तो इसका तत्पर्य यह हुआ कि उस कवि की रचना की प्रवृत्ति उस काल विशेष में क्या रही। इन्हीं बातो को ध्यान मे रख कर हम द्विवेदी युग के रचनाकारो की रचनाओ का अवलोकन करेगे।

उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते - होते साहित्य की हवा बदलने लगी थी। परिवर्तित जनरुचि के कारण भक्ति एव श्रृगार, बेस्वाद प्रतीत होने लगे थे। समस्यापूर्तियॉ एव नीरस तुकबन्दियो से सहृदय साहित्य प्रेमी ऊबने लगे। चिर व्यवहृत ब्रज भाषा का आकर्षण नि शेष हो गया। सुयोग से ऐसे समय में जनता की रुचि और आकाक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा निर्देशक के रूप में महावीरप्रसाद द्विवेदी का आर्विभाव हुआ। जून १९०० की सरस्वती में प्रकाशित 'हे कविते' शीर्षक अपनी कविता मे उन्होंने जनरुचि का प्रतिनिधित्व करते हुए रस एव वैविध्य के अभाव तथा ब्रज भाषा के प्रयोग पर क्षोभ प्रकट किया। आचार्य द्विवेदी ने नायिका भेद को छोड कर विविध विषयों पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छन्दो का व्यवहार करने, सभी काव्यरूपों को अपनाने तथा गद्य और पद्य की भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया। उनकी अमोघ प्रेरणा एव प्रोत्साहन के परिणाम स्वरूप अनेक कवि उभर कर सामने आये जो उन्ही के आदर्शो को लेकर आगे बढे। इस युग के प्रमुख कवि एव कृतियो का वर्णन आगे किया जा रहा है

नाथूराम शर्मा ' शंकर ' '—

१८५९-१९३२, नाथूराम शर्मा 'शकर' का जन्म हरदुआगज, जिला अलीगढ मे हुआ था। ये हिन्दी, उर्दू, सस्कृत तथा फारसी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। आरम्भ से ही शकर जी बडे साहित्यानुरागी थे। आर्चाय द्विवेदी द्वारा सम्पादित सरस्वती के मुख्य कवियों मे उन्होने अपना स्थान बनाया। आरम्भ में ये ब्रज भाषा के कवि थे किन्तु शीघ्र ही खडी बोली की ओर

झुक गये । आर्यसमाज तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इन पर गहरा प्रभाव पडा । देश प्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज सुधार तथा विधवाओ, अछूतों का दारुण दु ख इनकी कविता के वर्ण्य विषय बने । सामाजिक कुरीतियो, आडम्बरों, अन्ध - विश्वासों, बाल - विवाह आदि पर इन्होने तीखे व्यग्य किये । छदशास्त्र के ये मर्मज्ञ विद्वान थे । 'अनुराग रत्न', 'शकर सरोज', गर्भरण्डा रहस्य','शकर सर्वस्व', इनके प्रमुख काव्य ग्रन्थ हैं ।

श्रीधर पाठक (1859—1928).—

श्रीधर पाठक का जन्म आगरा जिले के जोन्धरी गाव में हुआ था । हिन्दी के अतिरिक्त इन्हें अग्रेजी और सस्कृत का अच्छा ज्ञान था । ब्रज भाषा और खडी बोली दोनों में इनके द्वारा अच्छी कविताओ का सृजन हुआ । खडी बोली के ये प्रथम समर्थ कवि कहे जा सकते हैं । देश प्रेम, समाज सुधार, प्रकृति चित्रण इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं । इन्होंने बडे मनोयोग से देश का गौरव गान किया है । 'भारत प्रशसा' एव 'भारतोत्थान' आदि देशभक्ति पूर्ण कविताएँ लिख कर इन्होंने देश का मान बढाया । समाज सुधार की ओर भी इनकी दृष्टि बराबर रही है । 'बाल विधवा' कविता में इन्होंने विधवाओ की दशा का कारुणिक चित्रण किया है । मातृभाषा की उन्नति की भी इनमें प्रबल कामना थी

> ''निज भाषा बोलहु लिखहुँ, पढहुँ गुनहुँ सब लोग ।
> करहुँ सकल विषयन विषै, निज भाषा उपजोग ।।''

पाठक जी अच्छे कवि होने के साथ - साथ कुशल अनुवादक भी थे । कालिदास कृत 'ऋतुसहार', गोल्ड स्मिथ कृत 'हरमिट, 'डेजर्टेड विलेज' तथा 'द ट्रेवेलर', का ये बहुत पहले ही 'एकान्तवासी योग', 'उजड ग्राम' और ' श्रान्त पथिक' शीर्षक से काव्यानुवाद कर चुके थे । इनकी मौलिक कृतियों में 'घनाष्टक', 'कश्मीर सुषमा', 'देहरादून' और 'भारत गीत' विशेषत उल्लेखनीय हैं ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी –

महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४ - १९३८) का जन्म जिला रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। ग्राम की पाठशाला मे प्रारम्भिक शिक्षा पाने के पश्चात ये अग्रेजी पढने के लिए रायबरेली के स्कूल मे भर्ती हुए। इन्हे सस्कृत, गुजराती, मराठी और अग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। १९०३ ई० में 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप मे इन्होने हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो कार्य किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। इनके प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन के परिणाम स्वरूप कवियों और लेखको की एक पीढी का निर्माण हुआ। ये कवि, आलोचक, निबन्धकार, अनुवादक तथा सम्पादकाचार्य थे। इनके लिखे मौलिक और अनुदित गद्य- पद्य ग्रन्थो की सख्या ८० हैं। अनुदित रचनायें इस प्रकार हैं

१ विनय विनोद। २ विहार वाटिका। ३ स्नेह माला। ४ श्री महिम्न स्त्रोत।
५ गगा लहरी। ६ ऋतु तरगिणी।

द्विवेदी जी की मौलिक पद्य रचनाये इस प्रकार है

१ देवी स्तुति कान्य कुब्जली। २ समाचार पत्र सम्पादक स्तव।
३ नागरी। ४ काव्य मजूषा।
५ काव्य कुज अबला विलाप। ६ सुमन।
७ द्विवेदी काव्य माला। ८ कविता कलाप।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :–

'हरिऔध' जी (१८६५ - १९४७) द्विवेदी युग के प्रख्यात कवि होने साथ साथ उपन्यासकार, आलोचक एव इतिहासकार भी थे। पुरातन सस्कृति का पुनरुद्धार, देश के वर्तमान युवको का उचित मार्ग प्रदर्शन तथा कविता में उपदेशात्मक वृत्ति को इन्होने आरम्भ से ही अपना ध्येय रखा। इनका जन्म निजामाबाद, जिला आजमगढ मे हुआ था। इनके काव्यग्रन्थो मे 'प्रिय प्रवास', 'पद्य प्रसून', चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'बोलचाल', 'रस कलश', तथा

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' –

कविवर 'सनेही' (१८८३ -१९७२) का जन्म उन्नाव जिले के हडहा ग्राम मे हुआ था। ये उर्दू में भी अच्छी कविता करते थे। हिन्दी में इन्होंने प्राचीन और नवीन शैलियो की कविता लिखी है। खडी बोली मे कवित्त तथा सवैया छन्दों का प्रयोग करने में ये बडे माहिर थे। श्रृगार आदि परम्परागत विषयो पर ये 'सनेही' उपनाम लिखते थे, वहीं राष्ट्रीय भावनाओं की कविताओं को इन्होने 'त्रिशूल' उपनाम से लिखा है। तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों के लिए इन्होंने अनेक प्रयाण गीत और बलिदान गीत लिखे। पराधीन देश की दुर्दशा, अर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि विषयों पर भी इन्होने बडी मार्मिक एव प्रभावी कविताओं का प्रणयन किया। ये 'सुकवि' नामक काव्य पत्रिका के सम्पादक भी थे। 'कृषक क्रन्दन', 'प्रेम पचीसी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरग', 'करुणा कादम्बिनी' आदि इनकी मुख्य काव्य रचनायें हैं। इनकी रचनाओं में अपूर्व वाग्वैदग्ध्य, शब्द चमत्कार उक्ति का अनूठापन तथा गम्भीरता मिलती है।

मैथिली शरण गुप्त :–

मैथिली शरण गुप्त (१८८६ -१९६४ ई०) का जन्म चिरगॉव (झॉसी) मे हुआ था। ये द्विवेदी काल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से परिचय के पश्चात इनकी कवितायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। उनके आदेश, उपदेश एव स्नेहमय प्रोत्साहन स्वरूप इनकी काव्य कला में निखार आया। इनकी प्रथम पुस्तक 'रग में भग' का प्रकाशन १९०९ में हुआ परन्तु उनकी ख्याति का मूलाधार 'भारत भारती' (१९१२) है। 'भारत भारती' ने हिन्दी भाषियों में जाति और देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाये जागृत की और तभी से ये राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात हुये। गुप्त जी मातृभाषा को केवल भूमिखण्ड नही अपितु 'सगुण मूर्ति सर्वेश की' मानते हैं

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेंखला रत्नाकर है।
नदिया प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल है।
बन्दी जन खगवृन्द, शेषफन सिहासन है।
करने अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥

मैथिली शरण गुप्त प्रसिद्ध रामभक्त कवि थे। इसके साथ ही भारतीय जीवन को समग्रता मे समझने और प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। 'मानस' के पश्चात हिन्दी में रामकाव्य का दूसरा स्तम्भ मैथिलीशरण कृत 'साकेत' ही है। वास्तव में आधुनिक युग मे प्रबन्ध काव्य की विलोपमान परम्परा के सरक्षक गुप्त जी है। इन्होंने दो महाकाव्यों एव उन्नीस खण्ड काव्यों का प्रणयन किया है। इनका चरित्र - चित्रण कौशल भी उत्कृष्ट प्रबन्ध कला का प्रमाण है। गुप्त जी ने 'निलोत्तमा' 'चन्द्रहास' और 'अनघ' नामक तीन नाटक, प्राय सभी प्रकार के प्रगीत और मुक्तक भी लिखे हैं। वस्तुत ये मूलत प्रबन्धकार थे। खडी बोली के स्वरूप के निर्धारण और विकास मे इनका अनन्य योगदान है। भारतीय ससकृति के ये कुशल प्रस्तोता थे प्ररन्तु अन्धानुकरण की प्रवृत्ति इनमे नहीं थी। कालान्तर मे आ जाने वाली विकृतियों से इनके साहित्य का सास्कृतिक पृष्टाधार एकदम मुक्त है। भारतीय सस्कृतिक के प्रवक्ता होने के साथ - साथ ये नवीन भारत के ये राष्ट्रीय कवि भी थे। इनकी प्राय सभी रचनायें राष्ट्रीयता से ओत प्रोत हैं। इनकी प्रवर्ती रचनायें भी असदिग्ध रूप से राष्ट्र भावना से परिपूर्ण हैं। गुप्त जी के प्रमुख काव्य ग्रथ है 'जयद्रथ वध', 'भारत भारती', 'पचवटी', 'झकार', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जय भारत', 'विष्णु प्रिया' आदि। 'प्लासी का युद्ध' 'मेघनाथ वध' 'वृत्तसहार' आदि इनके द्वारा अनुदित काव्य हैं।

राम नरेश त्रिपाठी —

राम नरेश त्रिपाठी का जन्म (१८८९-१९६२ई०) जिला जौनपुर के अन्तर्गत कोईरीपुर ग्राम मे हुआ था। कविता के प्रति इनकी लडकपन से रुचि थी। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रभाव स्वरूप ये खडी बोली की ओर उन्मुख हुए। त्रिपाठी जी के चार काव्य ग्रथ

प्रकाशित हुए हैं 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी' और स्वपन । इनमें से 'मानसी' फुटकर कविताओं का सग्रह है जो मुख्यत देश भक्ति, प्रकृति चित्रण, और नीति निरूपण से सम्बद्ध है । 'मिलन','पथिक', तथा 'स्वप्न' कालपनिक कथा आश्रित प्रेमाख्यानक खण्ड काव्य हैं । तीनो मे व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्याग कर देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी गयी है ।

कवि होने के साथ - साथ त्रिपाठी जी सह्हदय सम्पादक भी थे । 'कविता कौमुदी' के आठ भागो मे उन्होने बडी योग्यता से हिन्दी, उर्दू, बगला एव सस्कृत की कविताओं का सकलन एव सम्पादन किया । इनकी काव्य रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है

देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
अमल असीन त्याग से विलसित ।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित ।।

बालमुकुन्द गुप्त :—

(१८६५-१९०७ ई०) गुप्तजी का जन्म हरियाणा प्रदेश के रोहतक जिले के ग्राम गुडियाना में हुआ था । ये भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग को जोडने वाली कडी हैं । ये अच्छे कवि, अनुवादक और अपने समय के बहुत कुशल सम्पादक थे । इनकी कवितायें 'स्फुट कविता', (१९०५) मे सकलित है और परिमाण में थोडी होने पर भी बडी प्रभावी हैं । राष्ट्रीयता और हिन्दी प्रेम इनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं ।

सैय्यद अमीर अली 'मीर' .—

(१८७३-१९३७ ई०) मीर का जन्म सागर जिला मध्य प्रदेश में हुआ था । ये बडे हिन्दी प्रेमी थे और इसे राष्ट्र भाषा बनाने के समर्थक थे । 'राम चरित मानस' के प्रति इनका विशेष

अनुराग था । इनकी भाषा परिमार्जित खडी बोली है । ईश्वर भक्ति और देश प्रेम इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं ।

अन्य कवि -

लाला भगवान दीन, कामता प्रसाद 'गुरू', गिरधर शर्मा 'नवरतन', रूप नारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गोंपाल शरण सिह, और मुकुटधर पाण्डेय आदि इस युग के महत्तवपूर्ण रचनाकार हैं ।

गध साहित्यकार -

द्विवेदी युग मे रचित 'गद्य साहित्य' के मूल में कार्य करने वाली सास्कृतिक चेतना का कई दृष्टियो से महत्तव है । इस समय विदेशी शासन के प्रति जनता मे व्यापक असतोष फैल रहा था । जो प्रकारान्तर से राष्ट्रीय चेतना के रूप में पल्लवित हुयी । सास्कृतिक, राजनीतिक एव सामाजिक चेतना के साथ - साथ इस युग मे आर्थिक चेतना का भी विकास हुआ । विदेशी वहिष्कार एव स्वदेश भावना के विकास की दृष्टि से भी इस युग का कम महत्व नहीं है । यद्यपि आलोच्य काल मे आर्यसामाज व सनातनधर्म का द्वन्द्व चलता रहा, साथ ही साथ धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में उदारता एव सहिष्णुता की भावनायें भी फैलायी जा रही थीं । यह राजनैतिक जागरूकता आर्थिक समझदारी, सामाजिक, धार्मिक उदारता तथा राष्ट्र प्रेम मुख्यत शिक्षित वर्ग की जनता के जागरण का परिणाम था । समाज को सभी क्षेत्रों मे नेतृत्व प्रदान करने वाले इसी शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज के द्वारा ही साहित्य रचना भी की जा रही थी । राष्ट्र की प्रत्येक महत्व पूर्ण घटना का प्रभाव इस युग में साहित्यकारों की रचनाओ में प्रतिबिम्बित होता है । द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा में अन्तर्निहित चेतना, व्यापक राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक सुधार की भावना से ओत - प्रोत है । आगे हम गद्य की विभिन्न विधाओं की अलग- अलग विवेचना करेंगे ।

नाटक :—

हिन्दी मे नाटको की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। उस युग में नाटक लिखे भी जाते थे और उनका मचन भी होता था। द्विवेदी युग तक आते - आते इस विधा का विकास अवरुद्ध हो गया। यद्यपि कि इस युग मे भी नाटकों की रचना हुयी जो अत्यन्त साधरण स्तर के थे। बगला, अग्रेजी, सस्क्कृत भाषा में रचित नाटकों का अनुवाद भी हुआ। सस्कृत के भवभूति कालिदास, बगला के द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अग्रेजी के शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद अत्यन्त लोकप्रिय हुए। मौलिक नाटकों की रचना में पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी 'चौपट चपेट' तथा मयक 'मजरी', ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'सीता वनवास', अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'रूकिमणी', बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'सुदामा' जैसे नाटको का लेखन किया।

उपन्यास:—

गद्य विधा मे सबसे अधिक लोकप्रियता उपन्यास को मिली। जीवन के विभिन्न पक्षो को उजागर करने के कारण यह विधा जन साधारण में बहुत लोकप्रिय हुयी। द्विवेदी युग के बहुत से उपन्यासकार भारतेन्दु युग से ही लिखते चले आ रहे थे, जिनमें किशोरी लाल गोस्वामी का नाम प्रमुख है, जिन्होंने ६५ के करीब छोटे बडे उपन्यासो की रचना की जिनमें 'तारा', 'तरुण तपस्विनी', 'चपला', 'लीलावती', 'रजिया बेगम', 'लवग लता' आदि प्रमुख हैं। ये 'उपन्यास' नाम से मासिक पत्र भी निकाला करते थे। अयोध्यासिह उपध्याय 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' एव 'अधखिला फूल' जैसे उपन्यासों की रचना कर द्विवेदी युग को समृद्ध किया। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र जैसे व्यक्ति का पदार्पण इसी युग मे होता है, जिन्होंने विभिन्न उपन्यासो की रचना कर भाषा साहित्य को अमूल्य योगदान दिया। आरम्भ में ये उर्दू में लिखते थे जिनका हिन्दी सस्करण भी द्विवेदी युग से प्रकाशित होने लगा। 'प्रेमा' व 'वरदान' उनके ऐसे ही उपन्यास थे। प्रेमचन्द्र का पहला सामाजिक उपन्यास 'सेवासदन' १९१५ ई० में प्रकाशित हुआ।

हिन्दी उपन्यासों में रास –रग, रहस्य - केलि, प्रेम - चुहल के स्थान पर जीवन की वास्तविक समस्याओ को केन्द्र मे रख कर उपन्यास लिखे जाने लगे।

कहानी –

हिन्दी मे कहानी की शुरुआत भारतेन्दु युग से हुयी। प्रेमचन्द १९०० ई० के आसपास से ही कहानी की रचना कर रहे थे। वे सही मायने में आधुनिक तत्वो से युक्त कहानियो के आरम्भ कर्ता हैं किन्तु इनकी कहानियॉ १९१४ ई० में प्रकाशित हुई। इसके पहले जयशकर प्रसाद की 'ग्राम' कहानी १९११ में प्रकाशित हो चुकी थी किन्तु हिन्दी की प्रथम श्रेष्ठ कहानी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' का प्रकाशन १९१५ ई० में हुआ। इस युग के अन्य महत्वपूर्ण कहानीकार विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, राधिका रमण सिह, जी० पी० श्रीवास्तव, चतुरसेन शास्त्री हैं। उपन्यास विधा की तरह कहानी के क्षेत्र में भी प्रेमचन्द्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। १९१५ ई० में प्रकाशित इनकी कहानी 'पच परमेश्वर' में मानव मन के अन्दर छिपे देवत्व को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। सामाजिक समस्याओं, मानवीय भावनाओं एव राष्ट्रीय आदर्श की स्थापना से युक्त कहानियों की रचना करके प्रेमचन्द्र ने कहानी विधा को नया आयाम दिया। जयशकर प्रसाद भी द्विवेदी युग से ही कहानियों का सृजन कर रहे थे। उनकी कहानियों में भावनात्मक सघर्ष, मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व का आधिक्य मिलता है। 'आकाश दीप', 'पुरस्कार', 'इन्द्रजाल', 'छाया', 'ममता', 'गुण्डा', आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियॉ है।

निबन्धः—

निबन्ध के माध्यम से इस युग के निबन्धकारों ने जहॉ सामाजिक चेतना फैलायी वहीं राष्ट्रीय भावना को बढाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस विधा को बढाने में स्वय महावीर

प्रसार द्विवेदी ने अप्रतिम योगदान दिया। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने इस विधा में लेखन के लिए लेखकों को प्रोत्साहित किया। द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक विषय पुरातत्व एव समीक्षा सम्बन्धी अनेको उपयोगी निबन्धों की रचना की। निबन्ध के क्षेत्र मे उनके द्वारा बेकन के निबन्धों का हिन्दी अनुवाद से निबन्ध विधा और समृद्ध हुयी। इस युग की अन्य पत्र - पत्रिकाओ मे यथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समालोचक', 'इन्दु', 'मर्यादा', तथा 'प्रभा' में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित निबन्ध छपा करते थे। बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, सरदार पूर्णसिह, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा माधवप्रसाद मिश्र आदि ने महत्वपूर्ण निबन्धो की रचना की है। इन्होंने सामाजिक एव नैतिक विषयो से परिपूर्ण निबन्धो की रचना की। इनके कुछ महत्वपूर्ण निबधो के नाम इस प्रकार हैं - 'आचरणकी सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मजदूरी और प्रेम'। बालमुकुन्द गुप्त ने सम - सामयिक राजनीति को निबन्ध के बिषय के रूप मे चुना। व्यग्यात्मक भाषा और तीब्र राष्ट्रीय भावना इनके निबन्धों की विशेषता हैं। 'शिव शम्भु का चिट्ठा' इनका महत्वपूर्ण निबन्ध है। आलोच्य युगीन गद्य साहित्य के विवेचनात्मक सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग के साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय सास्कृतिक जागरण ही था। भारतेन्दुयुगीन जागरण ने साहित्य धारा को नये पथ पर मोड दिया और साहित्य तथा समाज के अन्तराल को कम कर दिया। यही जागरण द्विवेदीयुगीन साहित्य के प्रत्येक विधा का अनिवार्य अन्तर्वती प्रवाह बन गया। निबन्ध हो या अलोचना, कहानी हो या उपन्यास, नाटक हो या एकाकी, इनके कलात्मक परिधान के भीतर राष्ट्रीय सास्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य परिलक्षित होती है। इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों मे आमूल - चूल परिवर्तन कर दिया। शास्त्रीय रूढीयॉ टूटने लगे। साहित्य सृजन का उद्देश्य मनोरजन से हट कर जीवन के त्याग और आदर्शों की ओर मोडना हो गया। इस तरह हिन्दी प्रदेश की जनता अपने को नये युग और परिवेश के अनुकूल बना रही थी। इन सब के कारण हिन्दी साहित्य का प्रवेश सभ्य और शिष्ट समाज के योग्य समझा जाने लगा। निष्कर्षत प्रत्येक दृष्टिकोण से हिन्दी व्यापक प्रतिष्ठा अर्जित कर एक नयी ऊँचाई प्राप्त कर रही थी।

(ग) प्रवृत्तियाँ :—

तत्कालीन परिस्थितियों का साहित्य पर गहरा प्रभाव पडा। विभिन्न रचनाओं से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, समस्याओं को रचनाकारो ने अपना प्रमुख कार्य विषय बनाया। युग नया करवट ले रहा था। घिसी - पिटी मान्यतायें जर्जरित भवन के समान झर रही थीं। नयी मान्यताओ से नये युग के निर्माण की नींव डाली जा रही थी। इससे युग के साहित्यिक प्रवृत्तियों में व्यापक बदलाव आया जो निम्न लिखित हैं -

विषय की व्यापकता :

रीति कालीन स्थूल श्रृगारवाद एव हास - परिहास मनोरजन से हिन्दी साहित्य को निकाल कर राष्ट्रवाद, मानव कल्याण, सामाजिक विकास से प्रेरित उद्देश्य पूर्ण रचना विधान का क्रमिक विकास द्विवेदी युग की प्रमुख विशेषता है। आचार्य द्विवेदी तत्कालीन साहित्यकारो को उत्कृष्ट साहित्य रचना के लिए सदा प्रेरित करते रहते थे। साहित्य देश के उत्थान में कैसे योगदान दे सकता है और उसकी भूमिका किस प्रकार क्रातिकारी हो सकती है, इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी लिखते है - "ऑख उठा कर जरा और देशों और जातियों की ओर देखिये। आप देखेगें कि साहित्य ने वहॉ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे - कैसे परिर्वतन कर डाले हैं। साहित्य ने ही वहॉ समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है। शासन प्रबन्ध में बडे - बडे उथल पुथल कर डाले है , यहॉ तक की अनुदार धार्मिक भावों को भी जड से उखाड फेका है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तो, तलवार और बम के गोलों मे भी नही पायी जाती। यूरोप में धार्मिक रूढियो का उन्मूलन साहित्य ने ही किया है, जातीय स्वतत्रता के बीज उसी ने बोया है, व्यक्तिगत स्वतत्रता के भावों को भी उसी ने पाला - पोसा और बढाया है। पतित देश का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पाप की प्रभुता को किसने कम किया है ? फ्रास में प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किसने किया है? पदाक्रात इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया है? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने।"[१]

१ 'साहित्य की महत्ता' - महावीर प्रसाद द्विवेदी।

इस प्रकार द्विवेदी जी साहित्य को समाजोपयोगी बनाने के लिए पश्चिम के क्राति का उदाहरण देकर साहित्यकारों को अभिप्रेरित करते रहे।

वे साहित्य के विविध विषयो के पक्षधर थे। 'कवि कर्त्तव्य (१९०१ ई०) लेख में उन्होने साहित्यिक मानदण्डों का जो सारगर्भित विश्लेषण किया उसमे तत्कालीन समग्र साहित्य के प्रवृत्ति अन्तर्निहित है। वे लिखते हैं - ''कविता का विषय उपदेशक और मनोरजक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। अब न 'परकीयाओं' पर प्रबन्ध लिखने की कोई आवश्यकता है और ही न 'स्वकीयाओ' के गतागत की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल अनन्त आकाश अनन्त पृथ्वी अनन्त पर्वत अनन्त जगल सभी पर कविता हो सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरजन हो सकता है, फिर क्या कारण है कि इन विषयो को छोड कर स्त्रियो की चेष्टाओ का वर्णन करना ही कोई - कोई कवि कविता की चरम सीमा समझते हैं केवल अविचार और अन्ध परम्परा।''

उपर्युक्त विचारो के आलोक मे देखा जा सकता है कि द्विवेदी जी ससार में व्याप्त सभी चर अचर विषयों को साहित्य का विषय वस्तु मानते हैं। द्विवेदी युग में साहित्य के विषय वस्तु का और विस्तार हुआ। मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर साहित्य रचा जाने लगा। एक ओर इतिहास प्रेरणा लेकर उसे आधुनिक सदर्भ में रखा गया, तो दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं को विषय वस्तु के रूप में चुना गया। पहले काव्य रचना, गद्य रचना के लिए विशिष्ट वर्ग का चुनाव होता था। अब जनसाधारण और सर्वसाधारण से सम्बन्धित रचनायें होने लगीं। समान्य से सामान्य व्यक्ति को केन्द्र में रख कर साहित्य रचना होने लगी। नारी को भोग की वस्तु की घेरे से बाहर निकाला गया। उसे अबला से सबला का रूप दिया गया। द्विवेदी युग मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुयी कि अब तक जिन नारी पात्रों को साहित्य में उपेक्षित किया गया था, उनपर काव्य रचनाये हुयीं। यशोधरा, उर्मिला, विष्णु प्रिया, माण्डवी हिडिम्बा आदि को एक नये रूप मे प्रस्तुत किया गया। पुरुष द्वारा उपेक्षित ये नारी पात्र पुरुष के उत्थान की छिपी शक्ति के रूप मे चित्रित किये

गये।

साहित्य में आलौकिकता की जगह लौकिकता को स्थान मिला। लौकिकता मे भी मानवीयता, आदर्शवाद और यथार्थवाद को ही आश्रय मिला। अब कल्पना को छोड कर यथार्थ के कठोर धरातल पर साहित्य सृजन होने लगा। तत्कालीन सभी साहित्यकारो ने चाहे वे काव्य रच रहे हों या गद्य, लोकमगल और लोकरक्षा को ही मुख्य ध्येय बनाया गया। साहित्य विशिष्ट वर्ग के प्रासाद से उतर कर सर्वहारा के झुग्गी - झोपडी तक पॉव पसार रही थी।

राष्ट्रीय जागरण, देश भक्ति, सुधार :—

अग्रेजों की शोषण नीति से जनता त्रस्त थी। देश का धन एक तरफ विदेश जा रहा था, तो दूसरी ओर देशी कुटीर उद्योग नष्ट हो रहे थे। पश्चिम के सम्पर्क से जनता को पता चला कि उन्हीं के देश में उनके अधिकारो को दबाया जा रहा है, जिन्हे वर्षो पहले यूरोपीय जनता प्राप्त कर चुकी थी। भारतीय नेताओं से लेकर साहित्यकारों तक और मजदूरो से किसानो तक सभी ने जालिम शासन को उखाड फेकने के लिए कमर कस लिया। साहित्यकारो ने राष्ट्रीय जागरण के प्रचार के लिए लेखन शुरू कर दिया। अग्रेजी सरकार के राष्ट्रीय भावना के विरोधी होने के बाद भी आचार्य द्विवेदी, कवियो और लेखकों को भयमुक्त हो कर राष्ट्रीय भावनाओ से ओत - प्रोत रचना करने के लिए प्रेरित करते रहे। तत्कालीन सभी कवियों ने देश भक्ति एव सुधार से युक्त कविताएँ लिखकर राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाने का प्रयास करते रहे। जन्म भूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए आचार्य द्विवेदी लिखते हैं -

'जन्म भूमि की बलिहारी है।
यह सुरपुर से भी प्यारी है।'[१]

इसी परिप्रेक्ष्य में मनन द्विवेदी ने भी लिखा है -

---

१ द्विवेदी काव्य माला' (महावीर प्रसाद द्विवेदी) पृ० ३६९

'ऐसी मातृभूमि मेरी है स्वर्गलोक से भी न्यारी ।
जिसके पद कमलों पर मेरा तन मन धन सब बलिहारी ।।'

राष्ट्र गायक मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने भी समय को वाणी प्रदान की । 'मातृभूमि' नामक कविता में वे कहते हैं -

'जय जय भारत भूमि भवानी ।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी ।।'[१]

राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो रहा था । राष्ट्रनेता देश को परतन्त्रता की बेडियो से मुक्त कराना चाहते थे । एक ओर कवियो ने देश को विश्व में श्रेष्ठ माना, तो दूसरी ओर यह आत्मचिन्तन करने के किये भी कहा कि आखिर हम क्यो गुलाम हुए । भारत की श्रेष्ठता के बारे मे सियाराम शरण गुप्त ने लिखा -

'पृथ्वी का श्रेष्ठ सितारा है,
भारत सर्वस्व हमारा है।'

इसी सन्दर्भ मे मैथिली शरण गुप्त कितने विश्वास के साथ घोषणा करते हैं -

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्यलीला स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गगाजल जहाँ ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है ।।[२]

\+ \+ \+ \+ \+ \+ \+ \+ \+ \+

'धरती हिलकर नीद भगा दे
बज्रनाद से व्योम जगा दे
दैव, और कुछ आग लगा दे।[३]

इसी भाव भूमि पर श्रीधर पाठक की यह रचना पठनीय है-

---

१ मगल घट (मैथिली शरण गुप्त) पृ० ३३
२ भारत भारती - मैथिली शरणगुप्त
३ स्वदेश सगीत - मैथिली शरण गुप्त

'वन्दनीय वह देश जहॉ के देशी निज अभिमानी हों ।
बान्धवता मे बँधे परस्पर परना के अज्ञानी हो ।।'

कविवर नाथूराम शर्मा 'शकर' ने स्वतत्रता-प्राति के लिये क्रान्ति एव आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी -

'देश भक्त वीरो मरने से नेक नहीं डरना होगा ।
प्राणो का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा ।'[१]

देश की हीन, दशा - धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्य तथा कला कौशल के अभाव - पर भी कवियो ने क्षोभ व्यक्त किया । ठाकुर गोपालशरण सिह की काव्य पक्तियॉ दृष्टव्य हैं -

''वह धीरता कहॉ है गम्भीरता कहॉ है ?
वह वीरता हमारी, है वह कहॉ बडाई ?
क्या हो गयी कलायें कौशल सभी हमारे ?
किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई ?''

१९१४ ई० में माखन लाल चतुवेर्दी ने लिखा -

''क्यों पडी परतन्त्रता की बेडियॉ,
दासता की हाय हथकडियॉ पडी ।
न्याय के 'मुह बन्द' फॉसी के लिये,
कठ पर जॅजीर की लडियॉ पडी ।।''

जागरण और अभियान गीतों द्वारा कवियों ने भारतीय जनमानस को अन्यायी शासक के खिलाफ तैयार किया । देश की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक कुरीतियों, रूढ प्रथाओ तथा धार्मिक आडम्बरों का द्विवेदी युगीन कवियो ने स्पष्ट शब्दों में प्रत्याख्यान किया । स्वेदशी वस्तुओ के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर बल दिया । मातृभूमि की महिमा का गान भी देशभक्ति का अग है, जिसकी ओर अनेक कवियों ने आग्रह पूर्वक ध्यान दिया है । रूपनारायाण पाण्डेय कहते हैं -

---

१ बलिदान गान - नाथूराम शर्मा 'शकर'

'उठो उठो क्यों शिथिल पडे हो ? देखो सुदिन सबेरा है,'[१]

\+ + + + + +

'न होगी हैट नैकटाई, न कालर और पतलूने,
हम इग्लिश कोट को फिर से अगरखा करके छोडेगे।। '[२]

समाज मे व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिये साहित्यकारों ने रचनाये की। उपन्यास, निबन्ध, नाटक, कहानी एव लेखो के माध्यम से यह कार्य हुआ। काव्य रचनाओ से लोगो को सही और गलत का ज्ञान कराया गया। भारतीय समाज को केन्द्र में रखकर रचनायें हुयीं। समाज को नये दृष्टि से देखने का यह प्रथम प्रयास था। आर्यसमाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी आदि के द्वारा सामाजिक सुधार के लिए आन्दोलन चलाये गये। राष्ट्रीय जन आन्दोलन, राजनीतिक उथल - पुथल मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा सामाजिक काव्य रचना की प्रवृत्ति का प्रसार हुआ। विषयों का नया भण्डार मिला। विधवा, किसान, नारी, दुर्भिक्ष, दलित, बाल और वृद्ध विवाह, निर्धनता, छुआ - छूत, दहेज, दम्भ, पाखण्ड, आडम्बर, छलकपट, अविद्या, धार्मिक और नैतिक पतन, शिक्षा, पर्दाप्रथा, पुजारी, पण्डे, तीर्थ, रईसों की विलाशिता, हिन्दू - मुस्लिम समस्या आदि न जाने कितने विषय थे जिन पर सहित्यकारों ने लेखनी चलायी और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की मॉग प्रस्तुत की।

बाल विधवाओं की दीन - हीन दशा का कारुणिक चित्रण करते हुए श्रीधर पाठक लिखते हैं -

''दुखी बाल विधवाओं की है जो गती।
कौन सके बतला, किसकी इतनी मती।।
दु ख सुख मरना जीना एक समान है।
जिनके जीते जी दी गयी तिलाजलि।''[३]

हिन्दू समाज की कठोर निष्ठुरता पर वे आगे लिखते हैं -

''बाल विधवा श्रापवश यह भूमिका पातक भई।
होत दु ख अपार सजनी निरखि जग निठुराई।'[४]

---

१ बलिदान गान - रूप नारायण पाण्डेय, पृ० २४८
२ ''पराग देश सम्बन्धी प्रोत्साहन'' - रूपनारायण पाण्डेय, पृ० २०
३ 'मनो विनोद' - श्रीधर पाठक, पृ० ७६
४ वही, पृ० १७०

कविवर नाथूराम शर्मा ने जाति प्रथा के कठोर और उलझी हुयी व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए इनको सुलझाने का सकल्प लेते हुए लिखा है कि -

"जाति पॉति के धर्म जाल मे उलझे पडे गॅवार ।
मै इन सबको सुलझा दूॅगा, करके एकाकार ।"[1]

गुप्त जी ने 'भारत भारती' में अपनी सुसम्पन्न लेखनी को विराट फलक प्रदान करते हुए समाज के प्रत्येक पक्ष का स्पर्श किया -

"हिन्दू समाज कुरीतियो का केन्द्र जा सकता कहा ।
ध्रुव धर्म पथ में कुप्रथा का जाल सा है बिछा रहा ।।"

इस प्रकार रामकृष्ण मिशन आदि के द्वारा चलाये गये सामाजिक सुधारों से अनुप्राणित होकर तत्कालीन कवियो ने समाज को एक नये राह पर लाने के लिए महान कार्य किया ।

मानवतावादी दृष्टिकोण :—

भारतेन्दु काल से ही भारतीय जन समाज में एक युगान्तकारी परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था । किसी भी बात को अन्ध श्रद्धा या अगाध विश्वास के आधार पर न मान कर तर्क की कसौटी पर कसने के बाद, मानने की वैज्ञानिक चेतना का विकास होने लगा । खण्डन मण्डन, तर्क - विर्तक और बौद्धिक जागरण के फलस्वरूप सत्य के द्वार तक दस्तक देने की प्रवृत्ति जाग गयी । नी र- क्षीर विवेक की इस प्रवृत्ति ने साहित्य जगत को भी प्रभावित किया । पश्चिमी विज्ञान, शिक्षा एव साहित्य ने साहित्यकारों को विषयों को देखने की एक नवीन दृष्टि एव एक नया तेवर प्रदान किया । इसी के आलोक में साहित्यकारों ने स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, राममोहन राय आदि के मानवतावादी चिन्तन से अनुप्राणित होकर मनुष्यता में ही देवत्व का

---

१ सरस्वती, खण्ड सख्या ०५ सन् १९०८ ई० - नाथूराम शर्मा

आरोपण किया । साहित्य मे इस विचार धारा को हम स्पष्ट रूप मे देख सकते हैं । राम और कृष्ण अब देवताओ के रूप मे नही बल्कि मानवीय रूप में चित्रित होने लगे । 'साकेत' और 'प्रिय प्रवास' मे रामकृष्ण को मानवीय धरातल पर उतार कर जन सामान्य के आदर्शों के रूप मे प्रतिष्ठापित किया गया है । 'पचवटी' के लक्ष्मण का कथन यह दर्शाता है कि मनुष्यता के द्वारा ही देवत्व की भी उत्पत्ति होती है -

"मै मनुष्यता को सुरत्व की,
जननी भी कह सकता हॅ।" [१]

साहित्य मे मानवीय भावना किस प्रकार जाग्रत हो रही थी वह द्विवेदी युगीन कवि 'ठाकुर गोपाल शरण सिह' की इन पक्तियों में देखा जा सकता है -

"मानव का जीवन ही जग मे
मानवता का माप हुआ ।
भव्य भावनाओ का आकार
बन कर काव्य कलाप हुआ।"

द्विवेदी युग के साहित्य मे मानवता को रूढिगत धर्म से भी बडा माना गया । मन्दिरो के भव्यतम् प्राचीरों में धर्मकपाटों से बन्द, भोग प्रसादों का सेवन करने वाले कैद नारायण को वहॉ से मुक्त करके दीन, हीन, दलीत, किसान, मजदूर और दरिद्रनारायण मे स्थापित किया गया । इनकी सेवा को ही ईश्वर - सेवा का ही रूप माना गया । कृषक, मजदूर, दलित आदि का कारुणिक चित्रण काव्य के वर्ण्य विषय बने । किसनों की दीन - हीन दशा पर मैथिलीशरण गुप्त लिखते है -

"पानी बना कर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहॉ ।
फिर भी अभागे भूख से, दिन रात मरते हैं यहॉ ।'

गया प्रसाद शुक्ल मजदूरो का पूॅजीपतियों द्वारा शोषण का मार्मिक चित्रण किया है -

"खपाया किये जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर ।
उडाते माल धनिक भरपूर, मलाई, लड्डू, मोतीचूर ।" [२]

---

१ 'पचवटी' - मैथिली शरण गुप्त
२ 'मर्यादा' - गश प्रसाद शुक्ल 'सनेही' पृ० ४९

वस्तुत मानव सुलभ सहानुभूति, स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषो के विचारो एव भावधारा का प्रेरक स्पर्श पाकर काव्यधारा के रूप मे जीवत हो उठे। इसी भावना से प्रेरित होकर 'हरिऔध' ने उच्चतर जातियों द्वारा निम्न जातियो के प्रति किये गये अन्याय और दुर्व्यवहार का हृदयस्पर्शी उल्लेख किया है

'' आप ऑखे खोल कर के देखिये,
आज जितनी जातियॉ है सिर धरी।
पेट में उनके पडी दिखलायेगी,
जातियॉ कितनी सिसकती या मरी।''

'सरस्वती' उस युग की जन चेतना की पत्रिका बन गयी थी। लेखों के माध्यम से लेखकों ने जन-जागरण का कार्य किया। जून १९१४ ई० में 'सरस्वती' मे द्विवेदी जी ने ''हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक से कविता छापी। कवि थे 'जनार्दन भट्ट' इसमें अमीरी - गरीबी के रूप का विश्लेषण किया गया है। वर्ग चेतना का यह प्रथम प्रयास था

''सबके होकर रहो, सहो सबकी व्यथा,
दुखिया होकर सुनों, सभी की दु ख कथा।
परहित में रत रहो, प्यार सबको करो
जिसको देखो दु खी, उसी का दु ख हरो।
बसुधा बने कुटुम्ब, प्रेम धारा बहे,
मेरा तेरा भेद, नही जग में रहे।।''

इस प्रकार द्विवेदी युगीन साहित्य में जहॉ नये - नये विषयों का समावेश हुआ वही पुरानी सडी - गली मान्यताओं की जगह प्रगतिशील विचारधारा का प्रवेश हुआ जिससे अनुप्राणित हो लेखको और कवियो ने साहित्य रचना कर समाज और राष्ट्र को प्राचीन गौरव और गरिमा प्रदान करते हुए आगे बढाने का महती कार्य किया।

द्विवेदी युगीन साहित्य का महत्त्व :—

साहित्य समाज का दर्पण होता है। हिन्दी साहित्य के उत्थान का

सम्बन्ध भारत की तत्कालीन बदलती हुयी समाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों से है । द्विवेदी युग से हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का विकास हुआ । एक ओर राजनीतिक उत्थान पतन का दौर चल रहा था, तो दूसरी ओर साहित्य मे निरन्तर विकास का रूप भी उभर रहा था । इस युग मे साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय सास्कृतिक जागरण था । इस जागरण ने साहित्य के मूल्यो मे परिर्वतन किया । शास्त्रीय रूढियाँ टूटीं, साहित्य का उद्‌देश्य व्यापक जनसमुदाय को प्रभावित करना और उसे उदात्त मानवीय मूल्यों से युक्त आदर्श जीवन की ओर मोडना माना गया । साहित्य धनाढ्‌य रसिको के रगमहल की वस्तु न होकर समस्त शिक्षित जनता की वस्तु बन गया । नयी जीवनदृष्टि ने नई भाषा को माध्यम बनाया । खडीबोली पूर्णतया प्रतिष्ठित हुयी । उसे पण्डिताऊपन और ठेठ गॅवारूपन से मुक्त करके मॉजा सॅवारा गया । भाषा को युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की गयी । अपने सीमित साधनो को सगठित करके साहित्यकारो ने योजनाबद्ध रूप मे साहित्य के आभावों के पूर्ति का प्रयत्न किया । साहित्य का स्वर क्रमश गम्भीर हुआ । उसमे दायित्व बोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने के योग्य समझा जाने लगा । हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी । हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार बन गया । बडे - बडे नेताओं ने हिन्दी को अपनाया । पत्र - पत्रिकाओं का प्रकाशन बढा ।

द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा को अनुवाद के द्वारा उत्पन्न अराजकता के वातावरण से बाहर निकाला । साहित्य को विषयों की परिसीमा से बाहर निकाला । साहित्य मे मानवतावादी दृष्टि कोण का प्रचार हुआ । साहित्य मे सर्वहारा वर्ग को स्थान दिया गया । चाहे मजदूर हो या किसान, नारी हो या दलित सभी की समस्याओ को साहित्य में स्थान दिया गया ।

द्विवेदी युग की कविता राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता है । उस समय के साहित्य की सबसे बडी मॉग राष्ट्रीयता थी । देश को जालिम विदेशी शासन से मुक्त कराना सबसे बडी आवश्यकता थी । रचनाओं के माध्यम से लोगो में राष्ट्रीय भावना फैलाकर साहित्यकारो ने स्वाधीनता आन्दोलन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । उस समय रचनाकारों की रचनाये लोगो के लिए प्रेरणा स्रोत बन गयीं । इस युग की राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता से ऊपर अति उदार व्यापक राष्ट्रीयता है । मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान, स्वार्थ त्याग तथा पारस्सपरिक

वैमनस्य को दूर करने की अमोघ प्रेरणा देकर इन कवियो ने असकीर्ण राष्ट्रीय भावना को विकसित किया तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनो को बल प्रदान किया ।

इस युग की कविता का सास्कृतिक पक्ष अत्यन्त सबल है । उसी में इसकी शक्ति निहित है । उन्होने शुभ - पक्ष को प्रोत्साहित किया । अशुभ - पक्ष को तिरस्कृत किया । जहाँ सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरो तथा निरर्थक रूढियो पर जोरदार प्रहार किये, वहाँ अपनी परम्परा के उपयोगी तत्वो का सबल समर्थन और पोषण भी किया ।

प्रस्तुत युग मे एक मानवतावादी दृष्टिकोंण गृहीत हुआ । सामान्य मानव के गौरव की प्रतिष्ठा पहली बार इसी युग में हुयी । महिमामण्डित ही नही क्षुद्र और तुच्छ भी काव्य का विषय बना । इस प्रकार द्विवेदी युग में काव्यभूमि का अद्‌भुत विस्तार हुआ । आचार्य द्विवेदी के अथक प्रयत्लो से गद्य और पद्य की भाषा का एकीकरण 'खडी बोली'- जो बोलचाल की भाषा थी - के रूप मे हुआ । शनै - शनै उसका स्वरूप निश्चित, सुघड और मधुर बनता चला गया । काव्य में सदुपदेश और उच्चादर्शो का समावेश अन्त तक बना रहा ।

सामान्यतया द्विवेदी युगीन काव्य सास्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता, जागरण सुधार, एव उच्चादर्शो का काव्य है । इसमे विषयगत अपार वैविध्य एव व्यापकत्व मिलता है । सभी काव्य रूपों का सफल प्रयोग इस युग मे हुआ । राष्ट्र के उद्‌बोधन एव विभिन्न सस्कारों आदि के कारण हिन्दी काव्य के इतिहास में इस युग का अवमूल्यन नही किया जा सकता है ।

इस प्रकार द्विवेदी युग में हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम मिला ।

चतुर्थ अध्याय

रामकृष्ण – विवेकानन्द
भावधारा का
द्विवेदी युगीन काव्य पर प्रभाव

(अ) धार्मिक प्रभाव

(ब) राष्ट्रीय प्रभाव

(स) सामाजिक प्रभाव

(द) आर्थिक प्रभाव

द्विवेदी युग के पूर्व कविता के क्षेत्र मे मुख्यत श्रृगार, नायिका भेद एव ज्ञान के पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन की भावना प्रमुख रूप से व्याप्त थी। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होते यह हवा बदलने लगी। वैज्ञनिक दृष्टिकोण के प्रसार से नवजागरण की लहर दौड गयी। राष्ट्र के उत्थान की भावनाओ के विकास से राजनीति के क्षेत्र मे क्रान्ति फैल गयी। अग्रेजों की नीतियों से जनता के अन्दर आक्रोश बढता ही गया। इस प्रकार १९०० से १९२०ई० के बीच जितनी भी राजनीतिक घटनाएँ घटी उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पडा। इसके साथ धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे भी बडा परविर्तन हो रहा था। यह परिवर्तन तत्कीलन समाज सुधारक एव समाज सुधार आन्दोलनो द्वारा उपस्थित हुआ। रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, एनीबेसेन्ट जैसे समाज सुधारक नेताओ ने राष्ट्रीय सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक पुनरुद्धार के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि सगठनो के द्वारा अपने- अपने तरीको से सामाजिक और धार्मिक कुरीतियो को दूर करने का सार्थक प्रयत्न किया जा रहा था। छुआ- छूत, बाल विवाह, वर्ण - भेद, शिक्षा का अभाव तथा अन्धविश्वास आदि कुरीतियाँ समाज को खोखला कर रही थीं। विवेकानन्द सदृश तत्कालीन समाज उद्धरार्को ने इन कुरीतियो को नष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके द्वारा राष्ट्रीय जागरण एव राष्ट्र की स्वतन्त्र कराने की प्रेरणा ने लोगो को जाति, धर्म और वश से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय विकास के कार्यो में प्रेरित किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार एव मानवता के कार्यो के लिए जनमानस को रामकृष्ण एव विवेकानन्द आदि नेताओं ने नया चिन्तन प्रदान किया। इन सबके प्रभाव से पुरानी परम्पराओ एव मान्यताओ की बेडियाँ टूटने लगीं और लोग एक नयी दिशा की ओर उन्मुख हुए।

द्विवेदी -युगीन काव्य में रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव का अवलोकन - धार्मिक ,राष्ट्रीय, सामाजिक एव आर्थिक वर्गो मे विभाजित कर- किया जा सकता है -

(अ) धार्मिक प्रभाव

इस युग मे पौराणिक धर्म की प्रमुखता के कारण बहुदेववाद, यात्रा, ब्रत,

कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा और त्यौहारो का बोलबाला था । धर्म अपने मूल प्रकृति से दूर होकर अनेक जटिलताओ मे उलझ गया था । पढे- लिखे लोगों पर पश्चिम के प्रभाव के कारण अनीश्वरवाद एव नास्तिकता का प्रभाव बढ रहाथा । प्रत्येक धर्म,मत, पन्थ और सम्प्रदाय आपस मे उलझ कर जनता के समक्ष धर्म की गलत व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे । सक्षेप मे धर्म पतनोन्मुख हो चुका था ऐसे विखराव के युग मे रामकृष्ण देव अपीन सहज, सहल आडम्बरहीन पूजा पद्धति के द्वारा- धर्म की जटिलता के पाश में जकडे हुए- लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं इन्होनें सभी धर्मो को एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के विवधि मार्ग बताते हुए, उनका समन्वय किया । अनीश्वरवादी एव नास्तिकों का सन्देह दूर करते हुए इन्होने पूरे विश्वास से कहा कि, ईश्वर है और ईश्वर की प्राप्ति ही जवीन का चरम् लक्ष्य है । वह ईश्वर सामाजिक मूल्यों की उपेक्षा करके पहाड या गुफाओ मे बैठने से नहीं मिलेगा । वह तो प्रत्येक जीव में विद्यमान है । रामकृष्ण देव कहते हैं -" जीव ही शिव है। जीव की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है ।" धर्म के इन्हीं मूल तत्वो को आधार बना कर विवेकानन्द जीवन पर्यन्त मानव कल्याण एव मानवहित का कार्य करते रहे । रामकृष्ण देव माॅ काली के सगुण रूप के अनन्य भक्त थे । वे पूर्ण समर्पण भाव से अपनी इष्ट देवी की आराधना तथा वन्दना किया करते थे । इनके अनुसार आर्त होकर समर्पण भाव से पुकारने पर ही ईश्वर की कृपा मिलती है। इससे प्रभावित होकर द्विवेदी युग के कवियो ने आर्त एव समर्पण भाव से परिपूरति हो ईश्वर विषयक अनेक रचनायें की । शिवकुमार त्रिपाठी की 'आह्वान' कविता मे यह भाव देखा जा सकता है -

'दयामय क्यों हो गये कठोर ।
हाय। तनिक भी पडी न मुझ पर दया दृष्टि की कोर ।
दैन्य और दु ख झन्झानिल मुझे रहा झकझोर ।
तो भी आप बने हैं निश्चल चले न मेरी ओर ।।'[१]

उपर्युक्त कविता में कवि ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए अर्त भाव से उसे पुकार रहा है ।

अनीश्वरवाद एव नास्तिकता पर प्रहार करते हुए ईश्वर एव उसकी कृपा पर दृढ विश्वास व्यक्त करते हुए रामकृष्ण देव- भावधारा से अनुप्राणित होकर मैथिलीशरण गुप्त' नाम का

---

१ 'सरस्वती' - वर्ष १९१८ अक - जून पृ० २८१

साहरा' शीर्षक से अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते हैं -

' किस पाप पक से है मानस मलिन हमारा,
जिससे विहार उसमे होता नहीं तुम्हारा ।
सकोच कर रहे हैं पद-पद्म क्यो तुम्हारे,
क्या धो उन्हें न देगी अविराम अश्रु धारा ।।''[१]

याचना के साथ-साथ कवि को प्रभु की कृपा पर पूर्ण विश्वास भी है और वह प्रभु के सहारे के अतिरिक्त किस अन्य सहारे की कामना भी नही करता है -

'' अनुचित कभी नही है यह याचना हमारी,
तुमने कृपालु होकर किसको नही उबारा ।
हे देव! हे दयाधन!! तुम भूल क्यों न जाओ,
है बस हमें तुम्हारे शुभ नाम का सहारा ।।''[२]

रामकृष्ण के ईश्वर को मन-प्राण से व्याकुल होकर पुकारने की बात को 'विरहाकुल' कविता में इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

'' प्रभो तुम्हारे शुभागमन की सुनी न मैंने कुछ भी बात,
निज प्रण के पक्के हो प्यारे आज हो गया मुझको ज्ञात ।
नटवर यह वियोग का अभिनय बन्द करो, है चित्त अशान्त,
क्या मेरे जीवन नाटक का अन्तिमाक होगा दु खान्त ।।''[३]

इस कविता मे कवि अपने हृदय की वियोग जनित वेदना को ईश्वर के पाद - पद्मो मे समर्पित करते हुए मिलन की आकाक्षा रखता है ।

ईश्वर को सर्वशक्तिमान और सर्वव्याप्त मानते हुए अपने जीवन-मृत्यु, उत्थान - पतन, यश - अपयश, सुख और दु ख सभी भावों को, उसी को समर्पित कर लोचनप्रसाद पाण्डेय 'ईश विनय' कविता के माध्यम से अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते है -

---

१- सरस्वती वर्ष १९१४ अक - सितम्बर पृ० ५०८
२ वही
३ सरस्वती वर्ष १९१८ अक - सितम्बर पृ० २०२

' तूने साराजगत बनाया,
अनुपम दृश्य हमे दिखलाया।
सूरज,तारे, चॉंद बनाये,
जल,थल, अनल, पवन प्रकटाये।

जीना-मरना तेरे हॉथ,
अध पतन, उन्नति तव साथ ।
यश - अपसश का तू ही दाता,
रोग - शोक भव - भय दुख त्राता।।''[१]

ईश्वर की विराटता व्यापकता, सर्वशक्ति सम्पन्नता आदि विभूतियो से अभिभूत हो कर उस जगत नियन्ता की शक्ति का वर्णन करते हुए अयोध्यासिह उपाध्यय 'हरि औध' 'प्रभुप्रताप' नामक कविता मे लिखते है -

''चॉंद वो सूरज गगन मे घूमते हैं रातदिन,
तेज वो तुमसे दिशा होती है उजली वोमलिन ।
वायु बहती है, धरा उठती है अगिन,
फूल होता है। अचानक बज्र से बढ कर कठिन ।
जिस निराले काल के भी काल के कौशल के बल,
वह करे सब काल मे ससार का मगल सकल ।।''[२]

आगे कवि उसके सामथर्य कावर्णन करते हुए लिखता है-

''क्यानही है हाथ में उसके वह क्या करता नही,
चाहता जो कुछ है वह फिर वह कभी टरता नहीं ।
सुख नही पाता है वह जिस परहै वह ठरता नही,
कौन फिर उसको भरे जिसको है वह भरता नहीं ।
जिसकी है करतूत उसकी वह निराली है सभी,
उसके भेदों का पता कोई नहीं पाता कभी।।''[३]

---

१ सरस्वती वर्ष१९०८ अक - जनवरी पृ० १८
२ वही १९०७ मई पृ० २०६
३ वही

जो काल के साथ रमण करे वही काली है मानते हुए रामकृष्ण देव माँ काली को उद्‌भव सिथित सहार कारिणी तीनो रूपों मे देखते थे। ईश्वर के स्रष्टा, पालनकर्त्ता एव सहारकर्ता तीनो रूपो का महत्व द्विवेदी युगीन कवियो ने भी समझा हैं, एक तरफ वह सर्जक हैं तो दूसरी तरफ घ्वस का कारण भी। सम्पूर्ण सृष्टि उसकी लीला का विलास है ।इसी बात को अयोध्या सिह उपाध्याय इस तरह व्यक्त करते है -

कितने ही सुन्दर बसे नगरो को देता है उजाड
धूल कर देता है ऊँचे-ऊँचे कितने ही पहाड।
एक झटके मे करोडो पेड लेता है उखाड,
इस सकल ब्रह्माड को पलभर में सकता है विगाड।

उसके भय से कापते है देवता भी रात-दिन
मोम हो जाता है वह भी जो है पत्थर से कठिन।
राज पाकर जिसको करते देखते थे हम विहार,
माँगता फिरता है वह कल भीख हाथों को पसार।

एक टुकडे के लिए जो घूमता था द्वार-द्वार,
आज धरती है कँपाती उसके धौंसे की हुँकार।
नित्य ऐसी कितनी ही लीला किया करता है वह,
रक करता है कभी सिर पर मुकुट धरता हैं वह ।।"[१]

ईश्वर से अमृत-लाभ की अभिलाषा करते हुऐ श्रीधर पाठक उससे याचना करते हैं -

"जय -जय श्रीश हे। भुवन-भूपति, भूत गति,
जय करुणा निधे, जगत कारण, सत्य सखे।
सुहृद त्रिधाम के सकल सद्‌गुण मन्दिर हे।
नित-नित दे हमें, अमृत-जीवन ज्योति हरे।।"[२]

'ससार में रहते हुए सासारिक सुखो के मध्य ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति करते रहना चाहिए। रामकृष्ण देव की इस बात को श्रीधर पाठक इस प्रकार व्यक्त करते है -

---

१- सरस्वती वर्ष १९०७ अक - मई पृ० २०६
२ भारत गीत - श्रीधर पाठक

"सारा सासारिक सुख पाकर ईश्वर को पहिचानो हौ ।
उसकी विद्यमानता सत्ता वस्तु मात्र मे जानो हौ।"[1]

ईश्वर के सगुण रूप माधुर्य मे आप्लावित होकर माखनलाल चतुर्वेदी अपनी विरह वेदना इस तरह प्रकट करते हैं -

"श्याम लोचन मनबस गयो रे ।
मधुर बैने कर सैन नैन सो छीन लीन मन चैन फेन सो,
कुछ न सुहावत सुधिन रैन सो जब हरि हँसि गयो रे ।।"[2]

अपनी विपत्ति एव सकट से मुक्ति के लिए माखनलाल जी ईश्वर से सहयोग की अभिलाषा भी रखते हैं -

"नटवरचल चल ।
इस बार पडी मझधार,
उठा पतवार, अरे करतार ।
यह रण तरगिणी रही मचल
नटवर चल चल ।।"[3]

द्विवेदी युगीन काव्य मे ईश्वर के सगुण साकार रूप की भक्ति परक रचनाओ के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव से उसके निर्गुण - निराकार एव अद्वैत भाव का दर्शन भी समान रूप से मिलता है । ईश्वर के अभेद एव अनन्त रूप को किसी भी सीमा में न बॉधकर उसका वर्णन व्यापक रूप मे करते हुए 'हरिऔध' लिखते हैं -

" हे प्रभो है भेद तेश शिव भी पाता नहीं,
शेष , शिव,सनकादि को भी अन्त दिखलाता नहीं ।"[4]

प्रत्यग चैतन्य आत्मा समष्टि चैतन्य आत्मा का ही स्वरूप है। अविद्या एव अह भाव के कारण भेद बुद्धि उप्रन्न होती हैं इसी भाव को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए

१ जगत सच्चाई सार - श्रीधर पाठक पृ० ३
२ माखनलाल चतुर्वेदी ग्रन्थावली - ६ ३ वही
४ सरस्वती, वर्ष - १९०७ अक - मई पृ० २०६

बद्रीनारायण भट्ट लिखते हैं -

''सागर मे तिनका है बहता,
उछल रहा है लहरो के बल ।
मैं हूँ, मैं हूँ कहता ।
धोखे ही धोखे मे मित्रो ।
अपने को खोयेगा,
जिस गोदी मे उछल रहा है
उसमे ही सोवेगा ।।''[१]

ससार के मायाजाल मे आवद्ध जीव, जो अपना मूल स्वरूप विस्मृत कर चुका है, उसे उसके स्वरूप कास्मरण दिलाते हुए राधकृष्ण दास बताते हैं -

'' हे राजहस यह कौन चाल ।
तू पिंजर बह चला होने, बनने अपना ही आप काल,
यह है कचन का बना हुआ, तू इसमें मोहित मना हुआ ।
कनकावश प्रभावि मानव भी है, उसको विस्मृत भर कर मराल ।''[२]

यहाँ कवि का यह आशय है कि -आत्मा का सच्चा निवास यह ससार नहीं है ।

'तस्यचाचक प्रणव ' ओम् परमात्मा का वाचक है । उस ओम्कार को जानकर ही सर्वव्याप्त ब्रह्म को पहचाना जा सकता है । नाथूराम शर्मा शकर ' इसी बात को व्यक्त करते हुए लिखते हैं -

'' ओमक्षर अखिलाधार
जिसने जान लिया ।
एक अखण्ड, अकाय, अभगी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक ब्रहन, विशुद्ध विधाता विश्व - विश्व भरतार
को पॅहचान लिया ।''[३]

---

१ सरस्वती, वर्ष - १९१८ खण्ड - १९ सख्या - ५
२ वही
३ शकर सर्वस्व - गीतावली, नाथूराम शर्मा, पृ० ४

ईश्वर को प्रियतम मानते हुए जीवन भर उसके निकट रह कर भी उसके मूल सवरूप को भी न पहचान पाने की वेदना राम नरेश त्रिपाठी इस रूप मे प्रकट करते हैं –

' रहकर निपट निकट जीवन भर,
प्रियतम को पहचान न पाई ।
यौवन के दिन व्यर्थ बिनाये,
प्रियतम की न कभी सुधि आयी ।।''[१]

ईश्वर के अलख, निरजन, अद्वैत, शुद्ध - बुद्ध, चैतन्य स्वरूप का उल्लेख करते हुए नाथूराम शर्मा शकर कहते हैं -

'' पूरण पुरुष परम सुखदाता,
हम सब को करतारहै ।
मगल मूल अमकल हारी,
अगम अगोचर अज अविकारी ।
शिव सच्चिदानन्द अविनाशी,
एक अखण्ड अपार है ।
बिन कर करे चरण बिन डोले,
बिन दृग देखे मुख बिन बोले ।
बिन श्रुति सुने नाक बिन सूघे,
मन बिन करत विचार है ।''[२]

अपनी एक अन्य रचना में ससार के विभिन्न भ्रॉन्ति पूर्ण भेदों को इसी अभेद सत्ता का विस्तार मानते हुए वे लिखते हैं -

'' एक शुद्ध सत्ता मे अनेक भाव भासते हैं,
भेद भावना मे भिन्नता का न प्रवेश है ।
नानाकर द्रव्य गुणधारी मिले नाचते हैं,
अन्तर दिखाने वाले देश का न लेश है ।।''[३]

---

१ 'मानसी' - प्रियतम - रामनरेश त्रिपाठी पृ० २६
२ शकर सर्वस्व - करतार कीर्तन - नाथूराम शर्मा पृ० ५
३ वही, ब्रह्मविवेकाष्टक - वही पृ० ४१

उपर्युक्त सन्दर्भ में यह द्रष्टवय है कि रामकृष्ण देव कहते थे कि - जो निर्गुण है, वे ही सगुण हैं। जिनका नित्य है, उन्हीं की लीला है। मोम के बगीचे में सब मोम का है, परन्तु रूप अनेक हैं। जो सत्ता अरूप है वही रूप हो जाता है, जैसे -एक ही जल 'वाष्प' और 'बर्फ' दानो रूपो मे रूपान्तरित होता है उसी तरह भाक्ति रूपी हिम से भक्त उसे बर्फ (सगुण-साकार) की तरह बना लेता है। ज्ञान सूर्य के उदय से वह बर्फ पिघल कर जल का, फिर जल ही हो जाता है। अन्तत सगुण और निर्गुण में कोई भेद नही है। तात्विक दृष्टि से देखने पर वे एक ही हैं। इसी भावधारा को विवेकानन्द ने ग्रहण किया और द्विवेदी युगीन अन्यान्य कवियो मे भी इसी का प्रभाव व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होता है। नाथूराम शर्मा की इस कविता में यह भाव प्रत्यक्षत देखा जा सकता है -

यो शुद्ध सच्चिदानन्द
ब्रह्म को बतलाता है वेद।
केवल एक अनेक बना है,
निर्विवेक सविवेक बना है,
रूपहीन बन गया रगीला,
लोहित,श्याम सफेद ॥''[१]

नववेदान्त

रामकृष्ण देव और विवेकानन्द का धर्म समाज से पलायन कर हिमालयगामी या गुफावासी हो कर नाक दबा कर केवल अपना उत्थान कर लेने का विरोध करता है। इनके अनुसार प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है एव उसकी सेवा ही ईश्वर की वास्तविक पूजा है। दीन मे ही दीनानाथ को देखना उनके धर्म का मूल है। शोषित - पीडित, दीन - दु खियों की उपेक्षा करके धर्म लाभ नही किया जा सकता है। एक बार विवेकानन्द ने जब अपने गुरू रामकृष्ण देव से समाधि सुख की इच्छा प्रकट की तो उनके इस स्वकेन्द्रित उत्थान की भावना पर धिक्कारते हुए रामकृष्ण देव ने उन्हे जन - सेवा के कार्यो के लिये प्रेरित किया। गुरू की इसी प्रेरणा से अभिप्रेरित होकर

---

१ शकर सर्वस्व - विश्वरूप ब्रह्म - नाथूराम शर्मा पृ० ५

उन्होने जीवन पर्यन्त दीन - दु खियो के उत्थान का कार्य किया । उनके अनुसार भूँखो को रोटी देना ही सबसे बडा धर्म है, पडोसी भूँखा हो तो मन्दिर मे प्रसाद चढाना अपराध हैं । धर्म को उसके व्यापक रूप मे, जन - जन के उत्थान के रूप मे देखना ही नव वेदान्त है । इस भाव को रामकृष्ण एव विवेकानन्द के वक्तृत्व एव कर्तृत्व मे व्यापक रूप से देख जा सकता है ।

रामकृष्ण एव विवेकानन्द के नववेदान्त का द्विवेदी युगीन कवियों पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता हैं । इनकी रचनाओ में मानवीय सवेदना, दीन - दु खी के प्रति प्रेम, एव शोक्षित पीडित के उत्थान की बात व्यापक रूप मे अभिव्यजित हुई है । रामनरेश त्रिपाठी की 'अन्वेषण' नामक कविता मे जन - जन में ईश्वर को देखने का विलक्षण भाव प्रकट हुआ है, उनके अनुसार दरिद्र नारायाण का स्मरण ही नारायण का यथार्थ चिन्तन है -

"मैं ढूढता तुझे था जब कुज और वन मे,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ।
तू आह बन किसी की मुझ को पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता सगीत मे भजन में ।

मेरे लिये खडा था दु खियों के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन मे ।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिये बहा तू,
आँखे लगी थी मेरी तब मान और धन मे ।

बाजे बजा-बजा के मैं था तुझे रिझाता,
तब तू लगा हुआ था पतितो के सगठन मे ।
मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में ।"[१]

उक्त कविता के माध्यम से कवि बताना चाहता है कि ईश्वर का निवास कुज और वन मे न हो कर दीन - दुखियो के झोपडे मे है, उसे सगीतमय भजन एव कीर्तन के द्वारा नहीं अपितु किसी के आँसुओं को पोंछ कर प्राप्त किया जा सकता है । कवि आगे कहता है कि -

---

१ मानसी - अन्वेषण - रामनरेश त्रिपाठी पृ० १

" बेबस गिरे हुओं के तू बीच मे खडा था,
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में ।
तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं,
तू कर्म मे मगन था मैं व्यस्त था कथन मे ।

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था,
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन मे ।
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही,
तू अन्त मे हँसा था महमूद के रुदन में ।
प्रहलाद जानता था तेरा सही ठिकाना,

तू ही मचल रहा था मसूर की रटनमे ।
अखिर चमक पडा तू गाँधी की हड्डियो में,
मैं था तुझे समझता सुहराव की लतन मे ।
कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है,
हैरान हो के भगवान आया हूँ मैं शरण मे ।[1]

उपर्युकत पक्तियो मे कवि ने पारम्परकि रूढिवादी कर्मकाण्डीय अवाधारणाओं का खण्डन करते हुए ईश्वर की प्राप्ति हेतु मानवीय भावनाओ, एव कर्तव्य कर्मो को ऊँचा स्थान प्रदान किया है ।

ईश्वर को मन्दिर - मास्जिद, गिरजा और गुरुद्वारे से दूर दीन - दु खियों की भूँख और प्यास मे देखने की बात 'राम कहाँ मिलेंगे' कविता में कुछ इस तरह से व्यक्त हुई है -

ना मन्दिर मे ना माजिस्द मे,
ना गिरजे के आस-पास में ।
ना पर्वत ना नादियो मे,
ना कुजो में ना उपवन के,
शन्ति - भवन या सुख निवास मे ।

---

१ मानसी - अन्वेषण - रामनरेश त्रिपाठी पृ० २ - ३

ना गाने मे, ना बाने मे,
ना आँसू मे नहीं हास में।
ना छन्दों मे ना प्रबन्ध में।
अलकार ना अनुप्रास मे।
खोज ले कोई, राम मिलेगे।
दीनजनो की भूँख प्यास मे।[१]

स्वामी विवेकानन्द अपने जीवन के अन्तिम समय के कुछ दिन पहले एक भूखें को अपना भेजन कराकर आह्लादित हुए थे। उक्त कविता मे वही दर्शाया गया है। दीन जनो के प्रति द्विवेदी -युगीन कवियो का हृदय अत्यधिक कोमल है। 'आकाक्षा' नामक कविता में यह भाव कुछ इस तरह देखा जा सकता है -

"दु खी दिलतो मे हम आशा की किरन होते,
होते पछतावा अविवेकियों के मन में।
मानते विधाता का बडा उपकार हम,
होते गाँठ के धन कहीं जो दीन जन के।"[२]

यहाँ कवि गरीबों के अर्था भाव की स्थिति मे उसका धन बनने पर अपने को धन्य मानता है।

राजा और रक की समानता ही मानवता है। सभी जीवों में अभेद दृष्टि रखना ही मानवता का मेरुदण है। जय शकर प्रसाद की 'नमस्कार' नामक कविता मे यही भाव मुखारित हुआ है —

"जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है,
जिस मन्दिर में रक नरेश समान रहा है।
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा,
जिस मन्दिर के दीप इन्दु, दिनकर और तारा,
उस मन्दिर के नाथ को, निरुपम निर्मल स्वस्थ को,
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गुहस्थ को।"[३]

---

१ मानसी - अन्वेषण - रामनरेश त्रिपाठी पृ० २७
२ वही, पृ० १५
३ इन्दु - कला - ४ यख्या - २ पृ० ९

सर्वव्यापी ईश्वर को कहीं खोजने या ढूँढने की आवश्यकता नहीं है । वह परमेश्वर तो जन - जन मे विद्यमान है उसकी इस विद्यमानता की अनुभूति सरल स्वभाव से युक्त किसान एव परिश्रमशील श्रमिक मे सहजता से की जा सकती है । मुकुटधरपाण्डेय की इस कविता में यही भाव व्यक्त किया गया है –

" खोज मे हुआ वृथा हैरान,
यहाँ ही था तू हे भगवान ।
दीन-हीन के अश्रु नीर मे,
पतितों के परिताप पीर में ।
सरल स्वभाव कृषक के हल मे,
श्रम सीकर से सिचित धन मे ।
तेरा मिला प्रमाण ।"[१]

ईश्वर को विभिन्न पथ, मत तथा मन्दिर एव वाह्य - आडम्बरो मे खोजने की अपेक्षा साधारण कुटी में दरिद्र नारायण के रूप में उसका दर्शन करना सरल और सुगम है । मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी निम्न काव्य पक्तियों मे इन्हीं भावों का अवगुठान किया है -

" तेरे घर के द्वार बहुत है, किससे होकर आँऊ मैं,
सब द्वारों पर भीड बहुत है कैसे भीतर जाऊँ मैं ।
द्वार पाल भय दिखलाते हैं,
कुछ भी जन जाने पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं,
कैसे घुसने पाऊँ मैं ।

कुटी खोल भीतर आता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ,
अतिथि कहो क्या लाऊँ मै ॥"[२]

इस धरती से परे अन्यत्र किसी दूसरे स्वर्ग की कल्पना करना व्यर्थ है । यहीं सभी

---

१ सरस्वती, वर्ष - १९१७ खण्ड - १८ सख्या - ६
२ वही, स्वयमागत वर्ष - १९१८ अक - नवम्बर पृ० २२७

को सुखी और सम्पन्न बना कर स्वर्ग को साकार किया जा सकता है । 'साकेत' के मानवतावदी राम जनमानस को यही सन्देश देते हैं -

> "सन्देश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया,
> इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया ॥"[१]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी -युगीन काव्य मे रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की धर्मिक भावधारा के सभी तत्व व्यापक रूप मे विद्यमान हैं । आर्तभाव से ईश्वर की आराधना और वन्दना, ईश्वर को पाने की इच्छा,ब्रह्माड के कण कण में ईश्वर का अनुभव करना एव दीन - दु खी की सेवा करना ही उसकी सच्ची पूजा है, आदि भव द्विवेदी युगीन काव्य मे विस्तृत रूप से वर्णित हैं ।

(ब) राष्ट्रीय –भावधारा

हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रीय चेतना का आरम्भ भारतेन्दु युग से ही होन लगाा था किन्तु उसमें वह उमग नही थी जो द्विवेदी युग मे देखी जाती है । नयी चेतना और नए दृष्टिकोण के प्रसार से समाज मे जनजागरण की लहर दौड गयी । अग्रेजों के दमन और शोषणकारी नीति से जनता त्रस्त थी । राष्ट्र के उत्थान की भावनओं के विकास से राजनीतिक क्षेत्र मे भी क्रान्ति फैल गयी । जन- मानस मे स्वराज्य और स्वतन्त्रता की भावना प्रबल होने लगी । इसके लिए तत्कालीन समाज सुधारक और राजनेताओ ने महत्वूपर्ण कार्य किया महातमा गाँधी, लोकमान्य तिलक, दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले आदि राजनेताओ ने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति एव इसके उद्धार के लिए सार्थक प्रयत्न किया । स्वामी विवेकानन्द ने मूलत सन्यासी होते हुए भी राष्ट्र के उद्धार उसकी स्वतन्त्रता एव उन्नति के लिएअपने ओजस्वी विचारों द्वारा देश में राष्ट्रीयता की एक नयी स्फूर्ति तथा नया प्राण फूक दिया । देश के उत्थान के लिये प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने वाले राजनेता

---

१ साकेत - मैथिलीशरण गुप्त

भी विवेकानन्द की राष्ट्रीय भाव धारा से पूर्णत प्रभावित हुए।

इस प्रकार १९०० से १९२० के बीच जितनी भी राजनीतिक घटनाएँ घटीं और इसके लिए जो भी वैचारिक भाव कारण बने, उनका सीधा प्रभाव द्विवेदी युग के काव्य में देखा जा सकता है। राष्ट्रीयता, देश प्रेम, राष्ट्रोत्थान की भावना, अतीत गौरव, देश की अवनति और अवदशा पर क्षोभ तथा स्वाधीनता की इच्छा आदि भाव- श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा शकर, महाबीरप्रसाद द्विवेदी, मौथिलीशरण गुप्त, सनेही जैसे संहित्सकारों की रचनाओं मे स्पष्ट देखा जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भारत एक निर्जीव भौगोलिक भू भाग न होकर करोडों लोगो की ममतामयी माँ सदृश है। वे भारत भूमि मे मातृभाव का दर्शन करते थे, जिसे उन्होने, समय - समय पर अपने कर्तृत्व एव वक्तृत्व के द्वारा प्रदर्शित किया। देश के प्रति यही मातृभाव द्विवेदी युग के कवियो मे भी सहज ही देखा जा सकता है। सियाराम शरण गुप्त की इस कविता मे यही मातृभाव मुखरित हुआ है -

"हे! हम सब की मातृभूमि भयहारिणी माता,
बस तेरा ही रूप हमे जी से है भाता।
तेरा सा सौन्दर्य सृष्टि में दृष्टि न आता,
तेरी शोभा देख स्वर्ग भी है सकुचाता।"[१]

अन्यत्र गिरिधर शर्मा की एक कविता में ऋषियों (विवेकानन्द आदि) द्वारा जन्म भूमि को मातृ सदृश कहते हुए उद्‌धृत किया गया है -

"सब प्रकार बडी सुरलोक से,
जनम भू, जननी ऋषि भी कहे।
हम भला मुक्ति न पाये क्यों,
अटल भक्ति करें यदि मात की॥"[२]

---

१ मौर्य विजय - सियाराम शरण गुप्त पृ० १३
२ प्रभा, वर्ष-१९१३, अक - जुलाई पृ० १८९

आगे कवि इस मातृदेवी के चरणों मे अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए प्रेरित करता है -

> ''कमर तो कस लो दृढ हो उठो,
> न अब भी कुछ दुर्लभ है हमें।
> चरण -वन्दन मे निज मान के,
> सब समर्पण जीवन को करे।''[१]

जन्म भूमि होने के कारण इसके प्रति अतिशय स्नहे और प्रेम रखते हुए द्विवेदी युग के कवियों ने श्रद्धा एव भक्ति से परिपूरित हो अनेक रचनाओं में देश की वन्दना की। कविवर रूप नारायण पाण्डेय की कविता मे यह भाव देखाजा सकता है -

> '' पुण्य-भूमि है, स्वर्गभूमि है,
> जन्म भूमि है देश यही।
> इससे बढ कर या ऐसी ही
> दुनिया मे है जगह नही।''[२]

देश को सर्वस्व मानते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं -

> '' इष्टदेव आधार हमारे,
> तुम्हीं गले के हार हमारे,
> जै जै-जै-जै -देश,
> जै-जै- सुभग सुवेश।''[३]

अपने देश को ससार मे सबसे श्रेष्ठ और सबसे प्रिय मानते हुए श्रीधर पाठक अपनी भावना इस तरह से व्यक्त करते हैं -

> '' जय-जय-प्यारा भारत देश,
> जय-जय प्यारा जग से न्यारा,

---

१ प्रभा, वर्ष-१९१३, अक-जुलाई पृ० १८९

२ सरस्वती, वर्ष-१९१६ भाग-१४ सख्या-६

३ द्विवेदी काव्यमाला - महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४५४

शोभित सारा देश हमारा,
जगत मुकुट जगदीश दुलारा,
जय सौभाग्य सुरेश ।
जय-जय प्यारा भारत देश ।''[१]

एक अन्य स्थल पर वे देश की वन्दना कुछ इस तरह से करते हैं -

''जय भारत-जय भारत,
जय मम प्राणपते।
जय ससार शिरोमणि,
करुणाऽगार मते।''[२]

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त देश मे दैवी भाव का आरोपण करते हुए, उसकी बन्दना करते हुए लिखते हैं -

'' जय भारत भूमि भवानी ।
अमरों तक ने तेरी महिमा बारम्बार बखानी ।
तेरा चन्द्रवदन वर विकसित शन्ति सुधा बरसाता है,
मलयानिल नि श्वास निराला, नवजीवन सरसाता है ।
हृदय हरा कर देता है, यह अचल तेरा धानी,
'' जय भारत भूमि भवानी ।[३]

श्रीधर पाठक ने भारत को महिमा मण्डित करते हुए उसे न केवल इस धरा पर अपितु तीनो लोकों मे वन्दनीय माना है -

त्रिभुवन वन्द्य भारत धाम ।
त्रिभग सम्पति सुकृत सुखथल त्रिजग छवि अविराम,
सुरुचि सुमति सनेह शुचिता पुज मजुल नाम,
वीर गेह अमेय विक्रम ध्येय ध्रुव गुणधाम,
त्रिभुवन वद्य भारत धाम।।''[४]

---

१ भारतगीत - देश वन्दना - श्रीधर पाठक पृ० १९ २ वही पृ० ६५
३ सरस्वती - मातृभूमि, वर्ष - १९१८, अक - दिसम्बर, पृ० २८३
४ भारतगीत - भारत घाम - श्रीधर पाठक

व्यक्तिगत स्वार्थो से ऊपर उठ कर देश के प्रति अनन्य प्रेम का जो सन्देश स्वामी विवेकानन्द ने जन - जन तक प्रचारित किया, उसी भावना से ओत - प्रोत होकर द्विवेदी युगीन कवियो ने अपनी रचनाओं मे उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया । राम नरेश त्रिपाठी की इस कविता मे देश - प्रेम का उदात्त भाव देखा जा सकता है -

> " जब तक रहे फडकती नस एक भी वदन में,
> हो रक्त बूद भर भी जब तक हमारे तन में ।
> छीने न कोई हमसे प्यारा वतन हामरा,
> छूटे स्वदेश ही की सेवा मे तन हमारा ।"[१]

देश प्रेम को ऊँचाई देते हुए उसके लिये तन, मन और धन सब कुछ न्यौछावर करने को गिरिधर शर्मा प्रेरित करते हैं -

> "भारत माता यही हमारी,
> है यह हमको अतिशय प्यारी ।
> इसकी बार - बार बलिहारी ।
> तन-मन, धन सब इस पर वारी।"[२]

रामचरति उपाध्याय ने अपनी 'विनय'नामक कविता में देशप्रेम की भावना को पराकाष्ठा पर पहुॅचाते हुए स्वर्ग की कामना एव नर्क के भय को भी बौना कर दिया -

> "भारत में ही जन्म -मरण हो,
> भारत ही मे वास ।
> रहना मुझको पडे न पल भर
> बनकर पर का दास ।
> कभी न छूटे अपना देश ।
> नहीं स्वर्ग की मुझे चाह है ।
> नहीं नरक की भीति ।
> बढती रहे सदा मेरी बस
> जन्म भूमि में प्रीति ।।[३]

---

१ मानसी - स्वदेश गीत, रामनेश त्रिपाठी, पृ० १०९
२ सरस्वती - भारत माता, वर्ष - १९०७, अक - नवम्बर, पृ० ४६५
३ प्रभा, वर्ष - १९१५, अक - मार्च पृ० १९

कवि माखन लाल चतुर्वेदी ने अपनी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' मे पुष्प को माध्यम बनाकर देश भक्ति एव देश भक्तो के प्रति दिव्यतम् भावों का प्रकटन किया है -

"चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में विध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवो के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड लेना बनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेक।
मातृभूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक ।।"[१]

गौरवमय अतीत से प्रेरणा लेकर ही राष्ट्र उन्नति की सीढियाँ चढता है। इस सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्द कहते हैं -"आपना विकास जितना भविष्य को देखकर करने की आवश्यकता है, हमें उतना ही इपने इतिहास का पुनरावलोकन भी करना चाहिये,तभी हमारा विकास चिरस्थायी और मानवीय होगा। हमे ऐतिहासिक भूलो से कुछ न कुछ सीखने की जरूरत है।"[२] राष्ट्र के नवनिर्माण के सम्बन्ध मे इतिहास के महत्व को रेखाकित करते हुये वे कहते हैं-" जिस राष्ट्र का कोई अपना इतिहास नही हैं वह इस ससार में अत्यन्त हीन और नगण्य है । इसीतरह राष्ट्र का गौरवमय अतीत राष्ट्र को नियत्रण मे रखता है।"

द्विवेदी युग के कवियों ने भी अतीत गौरव के महत्व को समझकर इसे राष्ट्रीय प्रगति का अनिवार्य अग मानते हुये , अपनी रचनाओं में पर्याप्त महत्व दिया है । 'मैथिली शरण गुप्त' अपनी पुस्तक 'भारत-भारती' मे अतीत के गौरवमय इतिहास का वर्णन करते हुये लिखते हैं---

"भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि-भूमि है, वह कौन ? भारत वर्ष है।"[३]

---

१ युगचरण - माखन लाल चतुर्वेदी,
२ विवेकानन्द साहित्य - ३
३ भारत भारती - अतीत खण्ड पृ० १०

अपने पूर्वजो की धर्म परायणता वीरता और त्याग का वर्णन करते हुए गुप्त जी लिखते हैं -

उन पूर्वजो की कीर्ति का वर्णन अतीत अपार है,
गाते नही उनके हमीं गुॅण गा रहा ससार है ।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे,
उनसे वही गम्भीर थे, वरवीर थे,ध्रुव धीर थे।
उनके अलौकिक दर्शनो से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था ।
उपदेश उनके शन्तिकारक थे निवारक शोक के,
सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के।।''[१]

भारत में प्रीचन-काल के ऋषियों, मुनियों राजाओं की महिमा का वर्णन करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं।

''जहॉं हुये व्यास मुनि प्रधान,
रामादि राजा आदि कीर्तिमान ।
जो थी जगत पूजित धन्यभूमि,
वही हमारी यह आर्य भूमि।।''[२]

भारत का अतीत, धर्म-अर्धम के विवेक से युक्त था। इस काल मे समाज का सभी वर्ग धर्म परायण था। धर्म इनके जीवन की धुरी थी। रूपनारयण पाण्डेय अपनी कविता में अतीत की उस गौरवमय धार्मिकता का वर्णन इस तरह करते हैं -

''धर्माधर्म विवेक युक्त थे यहॉं सभी जन,
वेद-शास्त्र से ले पुराण तक धर्म ग्रन्थ हैं,
एक धर्म के लिए अनेकों चले पन्थ हैं ।
जो कुछ है सो धर्म है यही यहॉं सिद्धान्त था ।
अन्त्यज भी इस देश का धर्मभीरु और शान्त था।।''[३]

अतीत में यह देश आर्थिक रूप से सम्पन्न , धन- धान्य से परिपूर्ण एव ज्ञान- विज्ञान

---

१ भारत भारती - अतीत खण्ड पृ० ११
२ द्विवेदी काव्यमाला पृ० ४०६
३ सरस्वती वर्ष - १९१३ अक - जुलाई पृ० ३८४

से युक्त था और अधर्म, अज्ञान तथा विपन्नता का यहॉ अभाव था । देश के इस गौरवपूर्ण स्थिति का वर्णन करते हुए सियाराम शरण गुप्त कहते हैं -

> '' भरत भाग्याकाश स्वच्छ था, सुप्रसन्न था,
> था सर्वत्र सुकाल, विपुल धन और अन्न था ।
> फैला था आलोक ज्ञान रूपी दिनकर का,
> हटा रहा था अन्धकार जो भूतल भर का ॥''[1]

गौरवमय अतीत के सापेक्ष वर्तमान के अध पतन पर दु ख और क्षोभ व्यक्त करते हुए मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

> '' हम कौन थे, क्या हो गये है ?
> और क्या होंगे अभी ।
> आओ विचारे आज मिलकर
> ये समस्यायें सभी ।''[2]

इस तरह हम देखते हैं कि -स्वामी विवेकानन्द ने अपने गौरवमय अतीत का जिस प्रकार गुणगान करते हुए, उससे प्रेरणा लेकर वर्तमान का सुधार तथा वैभवपूर्ण भविष्य के निर्माणकी बात की थी उसे द्विवेदी युगीन कवियो ने अपनी कविताओ में सशक्त रूप से व्यक्त किया ।

स्वामी विवेकानन्द भारत की वर्तमान दशा से क्षुब्ध थे । राष्ट्र अपने गौरवमय अतीत से दूर अवनति और अवदशाअ को प्राप्त हो चुका था । अग्रेजों की गुलामी मे उनके दमन और शोषण से भारतीय जनता त्रस्त थी । सूखा, अकाल महामारी और भ्रष्टाचार से स्थिति और भी नारकीय हो गयी थी । अविद्या तथा अज्ञानता के अन्धकार मे देश डूब गया था । आलस्य अकर्मण्यता का बोलबाला था । छुआ-छूत, जाति-पाति, धार्मिक अन्धविश्वास, आदि कुप्रथाओ ने जीवन को कठोर और सवेदनहीन बना डाला । मानवीय मूल्यों का ह्रास हो चुका था । स्वामी विवेकानन्द ने समाज के शिक्षित और समृद्ध वर्ग का ध्यान आकृष्ट कराकर इसमें सुधार के लिये इन्हें प्रेरित किया । द्विवेदी युगीन कवियों ने इस भाव से प्रभावित होकर अपनी कविता के माध्यम

१	मौर्य विजय	सियाराम शरण गुप्त	पृ० ६
२	भारत भारती	अतीत खण्ड	पृ० १०

देश की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी उसके अध पतन पर गहरा क्षोभ व्यक्त करते हैं -

"जब कोई पीडित होता है,
उसे देख सब घर रोता है।
देश दशा पर प्यारे भाई,
आयी कितनी बार रुलाई॥"[१]

इसी बात को राम चरित उपाध्याय अपनी कविता में इस तरह व्यक्त करते हैं -

"ज्ञान से, मान से, शक्ति से हीन हो,
दान से , ज्ञान से, भक्ति से हीन हो,
आलसी भी महामूढ प्राचीन हो,
सोच देखो सभी से तुम्हीं दीन हो।
अग को आँसुओ से भिगोते रहो,
क्यों जगोगे, अभी देश सोते रहो ॥"[२]

उक्त कविता मे देश की अकर्मण्यता आदि पर व्यग करते हुए तीखा प्रहार किया गया है। देश की वर्तमान अवदशा का वर्णनकर उसमे सुधार के लिए प्रेरित करते हुए लक्ष्मीधर बाजपेयी लिखते हैं -

"दशा देश की देखो मित्र,
क्या से क्या है हुई विचित्र।
इसका भी कर खूब विचार,
भारत का तुम करो सुधार ॥"[३]

भारत की अवदशा का, सगुण साकार रूप में अनुभव करके मनोहर प्रसाद मिश्र अपनी मनोवेदना इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

"माँ यह तेरा कैसा वेष।
देख रहा हूँ आज हाय मैं विखरे तेरे केश

---

१ द्विवेदी काव्यमाला पृ० ३६७
२ सरस्वती वर्ष-१९१६ अक-मार्च पृ० १९०
३ सरस्वती वर्ष-१९०७ अक-नवम्बर पृ० ४५७

मुख मे तेरे पूर्वकाल का नहीं तेज सविशेष ।
मूर्छित सी तू पडी हुई है शक्ति नहीं है लेश,
वही व्योम है, वही भूमि है वही हमारा देश ।
फिर क्यो माता तेरे उर मे दु ख ने किया प्रवेश
हम सब पुत्रों को अब दे तू शीघ्र उचित उपदेश ।
जिससे तव दु ख दुर्गति सत्वर हो पावे नि शेष ॥''[१]

प्राचीन गौरव का वर्तमान अवनति से तुलनात्मक अन्तर दिखलाते हुये, कवि रामचरित उपाध्याय', उदासीनता को इसका कारण मानते हुये कहते है -

''पहले हम सुख से मक्खन को खाते थे रोटी के सग,
आज हमारा पेट न भरता रहते हम, सबविधि से तग।
नेत्र हमारे खुले न तो भी, सोते लम्बी तान के,
हिन्दुस्तान हमारा मित्रो, हम हैं हिन्दुस्तान के ॥''[२]

देशवासियो को जगाते हुये कवि आगे लिखता है -

'' पहले दशा देशकी क्या थी,
अब क्या दुर्गति होती है।
ऑसू तनिक पोछ दो उसके,
भारत जननी रोती है ।
जागों देश निवासी अब मत,
रहो भरोसे आन के ॥''[३]

मातृभूमि के प्रति अपने दायित्वों से विमुख होकर आलस्य और निद्रा में डूबे लोगो को देश की वर्तमान स्थिति का बोध कराते हुए राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' कहते हैं -

'' देशी प्यारे भाइयों! हे भारत सन्तान ।
अपनी माता भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी ।''[४]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९१८ अक - अक्टूबर पृ० १७१
२ प्रभा वर्ष - १९१३ अक - नवम्बर पृ० ४७२
३ वही
४ स्वदेशी कुण्डल राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', पद - १

अग्रेजी शासन में सच्चे देशभक्तो का दमन व उन पर अत्याचार तथा झूठे और चापलूसो का महिमा मण्डित होना कवि राम चरति उपाध्याय को अखरता है -

"सच्चो को हथकडी पडी है।
झूँठे कुर्सी तोड रहे।
मोड रहे हैं माता से मुख,
विमुखों से रति जोड रहे।
जहाँ भूप के भृत्य नित्य ही,
धूस मूसते रहते हैं।
रहते हैं दुर्जन सुखपूर्वक।
सुजन सदा दु ख सहते हैं।"[१]

विदेशी शासन के दमन के प्रति विवशता असमर्थता और पराधीनता से दु खित होकर नाथूराम शर्मा 'शकर' ने अपनी मर्मान्तक वेदना इन शब्दो मे प्रकट की है –

"बिन शक्ति समृद्धि - सुधा न रही,
अधिकार गया, बसुधा न रही।
बल साहस हीन हताश हुआ,
कुछ भी न रहा सब नाश हुआ।"[२]

स्वामी विवेकानन्द ने देश की अवनति और दुर्दशा पर केवल क्षोभ ही नही व्यक्त किया वरन उसकी उन्नति और विकास के लिए देशवासियो में नयी चेतना का सचार भी किया। 'उत्तिष्ठत , जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत' का उद्घोष करते हुए वे सोये हुए जनमानस को जगाते हैं और उन्हें लक्ष्य के प्रति प्रेरित करते हैं। देश के सर्वांगीण विकास के लिए स्वामी विवेकानन्द जीवन प्रर्यन्त प्रयत्न करते रहे। इसके लिए उन्होने एक तरफ राजाओं, महाराजाओं एव समाज के सम्पन्न वर्ग को उत्प्रेरित किया तो दूसरी ओर जनता- जनार्दन को जागृत भी किया। स्वामी विवेकानन्द की इस राष्ट्रीय भावधारा का प्रभाव द्विवेदी-युगीन कविताओ में व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। इस युग के कवि अपनी रचनाओं के द्वारा जनसामान्य को राष्ट्र उत्थान के कार्यो में प्रेरित करते हुए दीखते हैं। कविवर रूपनारायण पाण्डेय अपनी कविता में देश के उत्थान

---

१ देव सभा - राम चरित उपाध्याय पद - ३५ पृ० १८
२ शकर सर्वस्व - नाथू राम शर्मा 'शकर' पृ० २७

का भाव इस प्रकार से व्यक्त करते हैं-

> " ब्रह्मदेव फिर उठो देश का हित करने को,
> रोग शोक दारिद्र्य दु ख दुर्मति हरने को ।
> ज्ञान प्रेम आनन्द प्राप्तकर करमी हम हो,
> आलस बैर विकार वासना विप्लव कम हो ।"[१]

स्वतन्त्रता समानता और बान्धुत्व से विकास का सन्देश देते हुए श्रीधर पाठक लिखते हैं -

> " बदनीय वह देख जहाँ के देशी निज अभिमानी हो,
> बान्धवता मे बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हो
> निन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अज्ञानी हो,
> सब प्रकार परतन्त्र परायी प्रभुता के अभिमानी हों ।"[२]

तन्द्रा मे निश्चेत होकर पडे हुए देश को जगाते हुए पाठक जी कहते हैं -

> " भारत चेतहुँ नीद निबारौ,
> बीती निशा उदित भये दिन,
> मनि कबकौ भयौ सकारौ ।"[३]

देश के वर्तमान दयनीय अवस्था से मुक्त होकर - प्रगति , उन्नति और विकास के पथ पर अग्रसर होने के प्रति राम चरित उपाध्याय पूर्णत आशावादी दृष्टिकोंण रखकर लिखते हैं -

> " रात बीतने पर विमान में,
> जैसा जग हो जाता है,
> राहु-वदन से मुक्त निशाकर
> नभ में ज्यो सुख पाता है ।
> वर्षा ऋतु के अन्त अवनितल,
> जैसे शोभित होता है,
> उसी भाँति तू भी अब दुख से,
> छूटेगा, क्यों रोता है ?"[४]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९१३ अक - जुलाई पृ० ४०२
२ भारत गीत - श्रीधर पाठक, ३ वही
४ देवदूत - रामचरित उपाध्याय

भारत मे फिर पहले की तरह समृद्धि और खुशहाली आने की बात करते हुये कवि आगे लिखता है-

"कचुक छोड दिव्य तन विषधर,
श्वास छोडता है जैसे,
बन्धन मुक्त सिह हो गज के
शीश तोडता है जैसे।
वैसे ही निज प्रतिबन्धक को
तू भी दूर भगावेगा।
गत हताश हो भारत तेरा-
फिर पहला दिन अवेगा ।।"[१]

देश के लोगो को देश की उन्नति के प्रति प्रेरित करते हुये लोचन प्रसाद पाण्डेय कहते है-

"जाति देश और धर्मोन्नति,
निज करिए छोड व्यर्थ अभिमान।
ऐक्य,प्रेम आत्मावलम्ब का,
करो प्रचार, सभी दे ध्यान ।।"[२]

देश की कीर्ति बढाने के लिये और अपने बल बुद्धि का परिचय देकर, इसका नाम ऊँचा करने के लिये सियाराम शरण गुप्त वीरों का आह्वान इस तरह करते हैं--

'आओ वीरों। आज देश की कीर्ति बढा दे,
सब के सम्मुख मातृभूमि को शीश चढा दें।
शत्रुजनों को मार यहाँ से अभी हटा दें,
उनका घोर धमण्ड सदा के लिये घटा दे।
ससार देख ले फिर हमें तुच्छ नहीं हैं हम सभी
निज भारतीय बल वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ।।"[३]

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द की राष्ट्रीय भावधारा जिसमें देश

---

१ देवदूत - रामचरित उपाध्याय
२ प्रवासी - लोचन प्रसाद पाण्डेय
३ मौर्य्य विजय - सियाराम शरण गुप्त पृ० १७

प्रेम, देश के प्रति मातृभाव अतीत के उन्नति का गौरव वर्तमान अवनति व दुर्दशा तथा देश के उत्थान का भाव द्विवेदी युग की रचनाओं मे समान रूप से परिलक्षित होता है । द्विवेदी युग के कवियो ने विवेकानन्द के राष्ट्रीय भावधारा से प्रभातिव होकर राष्ट्र के उत्थान के प्रति अपने कवि-कर्तव्य का निर्वहन किया है ।

(स) सामाजिक भावधारा

विभिन्न सस्थाओं मे समाज सबसे प्राचीन, प्राकृतिक तथा स्वाभाविक सस्था है । समाज व्यक्ति के लिये अनिवार्य और आवश्यक है । व्यक्ति और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । व्यक्ति का चिन्तन और उसकेक्रिया कलाप समाज को तथा सामाजिक रीति- रिवाज एव उसके मूल्य व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को समझकर व्यक्ति के जीवन की गतिशीलता मे अवरोध बने समाज की अर्थहीन मान्यताओ, अन्धी परम्पराओ तथा कुप्रथाओं का तीब्र विरोध कर समाज को नयी दिशा देने का प्रयत्न किया । ज्ञान व शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति का विकास किया जा सकता है। यह मानते हुये स्वामी जी ने शिक्षा के प्रति लोगों को जागरुक किया । ज्ञान व तर्क की कसौटी पर कसकर ही प्राचीन परम्परा को स्वीकार करना चाहिए, अस्तु वे अन्धविश्वासों का विरोध करते थे । समुद्र यात्रा तथा पाश्चात्य लोगों के साथ भोजन करके स्वामी जी ने अपने आचरण के द्वारा इन कुप्रथाओ का विरोध किया, यह कार्य तत्कालीन समाज मे निन्दनीय माना जाता था । मानव का मानव के प्रति किसी भी प्रकार के भेद -भाव का वे विरोध करते थे । नारी जाति के प्रति भी उनके मन में अगाध सम्मान का भाव था ।

दीन–दशा

स्वामी विवेकानन्द की इस सामाजिक भावधारा को जिसमे समता, स्वतन्त्रता, और बन्धुत्व के साथ विकास का व्यापक सन्देश निहित है, द्विवेदी युग के कवियो ने अपनी कविता का मूल विषय बनाकर सामाजिक चेतना से, व्यापक परिवर्तन करने का सार्थक प्रयास किया । स्वामी विकेकानन्द समाज में व्याप्त अकाल, महामारी, निर्धनता एव गरीब जनता की भूख प्यास से क्षुब्ध

थे। समाज मे सर्वत्र हाहाकार मचा था। तत्कालीन समाज की इस अवस्था का द्विवेदी युग की कविता में वास्तविक चित्र खींचा गया है –

"अन्न नहीं अब विपुल देश मे काल पडा है।
पापी पामर, प्लेग पसारे पाव पडा है।
दिन-दिन नयी विपत्ति मर्म सब काट रही है,
उदरानल की लपट कलेजा चाट रही है।"[१]

देश में व्याप्त सभी दोषो का उल्लेख करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं —

"आलस्य, फूट, मदिरा, मद दोष सारे।
छाये यहाँ सब कहीं, टरते न टारे ।।"[२]

समाज की इस विषम स्थिति का कोई निदान न देख कवि रामदहिन मिश्र ईश्वर से ही इससे मुक्ति हेतु प्रार्थना करते हैं -

"दयामय कब लोगे अवतार।
जय जब होगी धर्म ग्लानि तब -
तब लूगा अवतार।
भूल गये क्या ?कहो शीघ्र यह,
अपना कौल करार।
दीन, दु खी, अबला, बालक सब,
सहते दु ख अपार।
दुर्गति अब इससे बढ कर क्या,
होगी करो विचार।
खुलता ही जाता है प्रतिपल
दु ख शोक का द्वार।"[३]

---

१ सरस्वती - १४ सख्या - १२
२ द्विवेदी काव्यमाला पृ० ३६२
३ सरस्वती वर्ष - १९१७ अक - फरवरी पृ० ५७

जो भारत पहले धन धान्य से परिपूर्ण, और सुख सम्पन्नता से युक्त था, उसकी वर्तमान दयनीय दशा देख कर मैथिली शरण गुप्त अपनी वेदना इस तरह व्यक्त करते हैं–

"भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो ।
हे पुन्य भूमि । कहाँ गयी है वह तुम्हारी श्री कहो ?
अब कमला क्या, जल तक नहीं, सर मध्य केवल पक है,
वह राज- राजकुबेर अब हा। रक का भी रक है।।"[१]

देश में दु ख दारिद्र्य सर्वत्र व्याप्त था। इसे व्यक्त करने हुए गुप्त जी लिखते हैं -

"रहता प्रयोजन से प्रचुर पूरित जहाँ धन धान्य था,
जो 'स्वर्ण-भारत' नाम से ससार मे सम्मान्य था
दारिद्रय दुर्धर अब वहाँ करता निरन्त नृत्य है,
आजीविका अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है ।।"[२]

देश में एक तरफ जहाँ सर्वत्र अकाल, दुर्भिक्ष, तथ अन्नाभाव से जन सामान्य त्राहि-त्राहि कर रहा था, तो दूसरी तरफ धनी और सम्पन्न वर्ग अपने भोग- विलास के लिए पानी की तरह पैसा बहा रहे थे । समाज की इस विसगति का वर्णन - महाबीर प्रसाद द्विवेदी करते हुए लिखते हैं -

" हजारो लोग भूखों मर रहे हैं,
पडे वे आज या कल कर रहे हैं ।
इधर तू मजु मलमल दूढता है,
न इससे और बढ कर मूढता है।।"[३]

दीन-दु खियो को त्रासदपूर्ण इन स्थितियों का नाथूराम शर्मा 'शकर' वर्णन करते हुए अपनी निराशा इस तरह से व्यक्त करते हैं –

" क्या शकर प्रतिकूल काल का अन्त न होगा,
क्या शुभ गति से मेल मृत्यु पर्यन्त न होगा,

१	भारत भारती	वर्तमान - खण्ड	पृ० ९१
२	वही		पृ० ९३
३	द्विवेदी काव्य माला		पृ० ३६८

क्या अब दु ख दारिद्रय हमारा दूर न होगा,
क्या अनुचित दुर्दैव, कोप कर्पूर न होगा ।।''[१]

देश की विपन्नता तथा दुर्भिक्ष का हृदय विदारक चित्रण करते हुए मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं –

'' दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है,
हा । अन्न । हा हा । अन्न का रव गूँजता घनघोर है ।
सब विश्व मे सौ वर्ष मे, रण मे मरे जितने हरे,
जन चौगुने उनसे यहाँ दस वर्ष में भूखों मरे ।।''[१]

देश की दयनीय अवस्था के प्रति जो पीडा स्वामी विवेकानन्द के हृदय में थी, उस पीडा की अभिव्यक्ति द्विवेदी- युगीन कविताओं मे व्यापक रूप से हुई।

मानवता

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू रामकृष्णदेव के मानवता की सेवा करने के लिए वटवृक्ष की तरह बनने की बात को कभी विस्मृत नहीं किया । आध्यात्मिक उत्थान एव ख्याति की चरम् ऊँचाइयो को छूने के बाद भी वे मानव मात्र के सुख- दु ख से जुडे रहे । मानव मात्र की पीडा को उन्होने अपनी पीडा बना ली और उनकी भुक्ति - मुक्ति के लिये जीवन पर्यन्त प्राण- प्रण से सतत् प्रयत्न किया । द्विवेदी युग के कवियों ने उनकी इस मानवतावादी भावधारा को अपनी रचनाओ का प्रमुख वर्ण्य विषय बनाया । स्वामी जी ने मानवता एव प्रेम में ही देवत्व की कल्पना की थी, जिसे कविवर मौथिली शरण गुप्त ने अपनी कविता मे इस तरह व्यक्त किया -

'' मैं मनुष्ता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ।''[२]

---

१ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० ९३
२ द्विवेदी काव्यमाला - पूनम चन्द तिवारी - पचवटी पृ० १०९

कलुषित स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर, एक दूसरे के सुख-दु ख मे सहभागी बन कर, मानव मात्र के कल्याण की भावना का सन्देश देते हुए, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं

"सब के होकर रहो, सहो सब की व्यथा,
दु खिया होकर सुनो, सभी की दु ख कथा।
पर-हित मे रत रहो, प्यार सब को करो,
जिसको देखो दुखी, उसी का दु ख हरो।
वसुधा बने कुटुम्ब, प्रेम धारा बहे,
मेरा तेरा भेद नहीं जग में रहे।"[१]

रामकृष्ण देव की लोक सेवा का भाव अयोध्या सिह उपाध्यास के महाकाव्य प्रिय - प्रवास मे राधा और कृष्ण के माध्यम से व्यक्त हुआ है। यहॉं राधा एव कृष्ण का दैवी वर्णन न करके उन्हे लोक सेवा तथा लोक मगल के कार्यो मे निरत दिखलाया गया है। प्रिय प्रवास के नवम सर्ग में परोपकार, दान, क्षमा, व सेवा आदि, उदात्त मानवीय गुणों से युक्त सूक्तियॉं प्रचुर मात्रा मे देखी जा सकती हैं। अपनी मुक्ति की कामना रखने वाला त्यागी नही होता, अपितु जगत के कल्याण की भावना रखने वाला ही सच्चा त्यागी है। प्रिय प्रवास के माध्यम से हरिऔध' जी यही सन्देश देते हुए लिखते हैं -

"जो होता है निरत तप मे मुक्ति कामना से,
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्म त्यागी।
जी से प्यारा जगत हित औ लोक- सेवा जिसे है,
प्यारी, सच्चा अवनि-तल में आत्मत्यागी वही है।"[२]

कवि रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' दीन - दु खियों के उत्थान के लिए सेवा प्रेमी लोगों का आहवान करते हैं --

"पूरन भारतवर्ष के सेवा प्रेमी लोग,
कर सकते है दूर दु ख ठाने यदि उद्योग।
ठाने यदि उद्योग कलह तज कर आपुस का,
नाना विध उपकार अभी कर डालें उसका।"[३]

---

१ प्रेम - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२ प्रिय प्रवास - नवम् सर्ग
३ स्वदेशी कुण्डल पद - ९

जो केवल अपने ही सुख और उन्नति के लिए तत्पर रहते हैं और दीन- दुखी के बारे मे रचमात्र भी नहीं सोचते, उनहे धिक्कारते हुए लोक कल्याण के लिए 'पूर्ण' जी प्रेरित करते हैं -

'' कूकर भरते पेट हैं, पर चरणो पर लेट,
शूकर घूरो धूम कर भर लेते हैं पेट ।
भर लेते है पेट सभी जिनके है काया,
पुरुष - सिह है वही भरे जो पेट पराया ।।''[१]

यह मानव शरीर लोक-मगल के लिये ही हैं इसके अतिरिक्त इसकी कोई सार्थकता नहीं है। 'हरिऔध' की इस कविता में यही भाव व्यक्त होता है --

'' हड्ड़ियॉ तो काम देती हैं नहीं ।
काम आता है न उसका चाम ही ।
वह बना है लोक सेवा के लिये।
साथ देना हाथ का है काम ही ।।''[२]

उपर्युक्त उद्धरणो के आलोक मे हम देख सकते हैं कि द्विवेदी - युगीन कवियो ने रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की भावधारा से प्रेरित हो कर, आत्म केन्द्रित जीवन-शैली को धिक्कारते हुए जन कल्याण एव लोक सेवा की भावना से ओत - प्रोत अनेक रचनाये की ।

ईर्ष्या– द्वेष

भारतीय समाज में व्याप्त ईर्ष्या व द्वेष यहॉ के अवनति व पतन का प्रमुख कारण है । इतिहास साक्षी है कि हमारी इसी कमजोरी का लाभ उठाकर मध्यकाल मे अरब आक्रान्ताओं ने और आधुनिक काल मे अग्रेज व्यापारियों ने हमें अपना दास बनाकर अनेक वर्षो तक हमारा दमन और शोषण किया, स्वामी विवेकानन्द ने ऐसी अनेक कमजोरियो की तरफ देश वासियो का ध्यान

---

१ स्वदेशी कुण्डल पद - ३२
२ चुभते चौपदे - हरिऔध

आकृष्ट कराते हुये इसे दूर करने का उपदेश दिया। वे यूरोप की उन्नति व प्रगति में ईर्ष्या व द्वेष के अभाव को महत्वपूर्ण मानते थे ।

द्विवेदी युग के कवियो ने भी समाज मे व्याप्त अनेक कमियों की आरे जनता का ध्यान अपनी कविता के माध्यम से आकृष्ट किया है । कामता प्रसाद गुरू अपनी ' ईर्ष्या' नामक कविता में इसके दोषों का वर्णन करते हुये लिखते हैं —

"हे ईरषा बडों की तू लाडती बडी है,
प्रभुता प्रमत्त मन को सुरलोक की जडी है ।
जडता समीप तेरे रहती सदा खडी है,
अभिमान भी टहल मे तैयार हर घडी है,
है श्रेष्ठ प्राणियों मे शिक्षा मनुष्य पा कर,
पर द्वेष से भरे हैं पशु से परम भयकर।
पशु भी कभी कपट कुछ करता नहीं परस्पर
धिक्कार उन नरो को जो हैं मलीन भीतर ।।"[१]

ईर्ष्या को ही परतन्त्रता का मूल मानते हुये कवि आगे लिखता है -

"जो ईरषा न होती इस देश मे हमारे,
परतन्त्रता बहाती, पर रक्त के पनारे ।"[२]

आपसी फूट एव द्वेष भाव के कारण भारतवासी क्या- क्या दु ख नहीं उठाये, अयोध्यासिह उपाध्याय ' हरिऔध " की कविता में यही भाव दिखलाया गया है -

"लुटे गये, पिट उठे, गये पटके,
आँख के भी बिलत गये कोये ।
पड बुरी फूट के बखेडे मे,
कब नहीं फूट- फूट कर रोये ।"[३]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९०८ अक - जनवरी
२ वही
३ चुभते चौपदे - हरिऔध

पारस्परिक ईर्ष्या भाव को त्याग कर हिल - मिल कर रहने की भावना के अभाव के कारण भारत वर्ष की यह दुर्गति हुई है और इसी ईर्ष्या के कारण अतीत मे महाभारत का युद्ध भी हुआ है । इसलिये ईर्ष्या के प्रति लोगो को सचेष्ट करते हुये मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं –

"सब लोग हिल मिल कर चलो,
पारस्पारिक ईर्ष्या तजो ।
भारत न दुर्दिन देखता ,
मचता महाभारत न जो ॥ "[१]

समाज मे व्याप्त कुरीतियो एव कुप्रथाओं, से भी हमारे वैचारिक पराभव का प्राकट्य होता है । इसे व्यक्त करते हुये मौथिली शरण गुप्त 'भारत- भारती' मे लिखते हैं -

"हिन्दू समाज कुरीतियों का केन्द्र जा सकता कहा,
ध्रुव धर्म- पथ मे कुप्रथा का जाल सा है विछ रहा ।
सु-विचार के साम्राज्य में कुविचार की अब क्रान्ति है,
सर्वत्र पद- पद पर हमारी प्रकट होती भ्रान्ति है ।"[२]

ईर्ष्या, द्वेष, आलस्य और दम्भ व्यक्ति तथा समाज की अवनति का मूल हैं । वर्तमान भारत मे सर्वत्र इसकी व्यापकता से क्षुब्ध होकर कविवर 'गुप्त' जी अपनी पीडा व्यक्त करते हुये कहते हैं -

"अब है यहाँ क्या ? दम्भ है, दौर्बल्य है दृढ- द्रोह है,
आलस्य ईर्ष्या, द्वेष है, मालिन्य है, मद, मोह है ।
है और क्या ? दुर्बल जनो का सब तरह सिर काटना,
पर साथ ही बलवान का है श्वान सम पग चाटना॥"[३]

व्यक्ति और समाज मे निहित अनेक बुराइयों और कुरीतियो के बाद भी जिस तरह देश के उत्थान के प्रति स्वामी विवेकानन्द आशावादी थे वही आशावाद द्विवेदी युग के कवियों में

---

१ जयद्रथ बध प्रथम सर्ग पृ० १
२ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १४६
३ वही पृ० १५६

भी परिलक्षित होता है-

"बीती नहीं यद्यपि अभी तक है निराशा की निशा।
है किन्तु आशा भी कि होगी दीप्त फिर प्राची दिशा।"[१]

कर्म– पुरूषार्थ

स्वामी विवेकानन्द जीवन पर्यन्त कर्मशील रहते हुये अपने आचरण के द्वारा जनमानस को 'कर्म' करने की प्रेरण देते रहे। कर्म एव पुरुषार्थ को मानव के विकास का वे महत्वपूर्ण अग मानते थे। अकर्मण्य एव आलसी लोगो को जगाते हुये उन्होने कहा -"उत्तिष्ठत् जाग्रत् —।" स्वामी जी के पुरूषार्थ व कर्मवाद से प्रभावित द्विवेदी युग की अनेक रचनाये देखी जा सकती हैं 'गोपाल शरण' सिह की आत्म विश्वास' नामक कविता में कर्म एव उद्यम के महत्व को इस तरह दर्शाया गया है --

"मुझमे न कुछ सामर्थ्य है यह मान लेना भूल है,
नर के लिये यह भावना दुर्भाग्य दुर्मति मूल है।
सबको विधाता ने बताया, शक्तिवान समर्थ है,
जों नर निपट निश्चेष्ट है केवल वही असमर्थ है।।"[२]

निष्चेष्टता पर प्रहार करते हुये मैथिली शरण गुप्त जी भी लिखते हैं --

"निश्चेष्ट होकर बैठ रहना,
यह महा दुष्कर्म है।"[३]

कर्मशील होकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से ही व्यक्ति सुख प्राप्त कर सम्पन्न बन सकता है। 'लोचनप्रसाद पाण्डेय' अपनी कविता के माध्यम से यही समझाने का प्रयत्न करते है -

---

१ भारत भारती - भविष्यत खण्ड पृ० १८२
२ सरस्वती वर्ष १९१४ अक - अक्टूबर पृ० ५७५
३ जयद्रथ बध - प्रथम सर्ग पृ०१

"केवल है कर्तव्य अकेला सच्चा सुख देने वाला।
यही निबल को सबल बनाता दुख दारिद्र हरने वाला।"[१]

कर्तव्य कर्म की शिक्षा देते हुये कवि गोपाल शरण सिह भी लिखते हैं --

"असमर्थ हैं किस भाति हम निज धर्म का पालन करे,
निज दीनदुर्विध बान्धवो के दु ख कैसे हम हरे।
ऐसे बचन मुख से कभी भी हम निकालेगें नहीं
कर हैं हमारे क्यो भला, कर्तव्य पालेंगे नही ॥"[२]

स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति की दीनता व हीनता के विचारो का विरोध करते हुये उन्हे उनके मूल स्वरूप का स्मरण कराते हुये कहते हैं -" तुम भेड नहीं हो, तुम सिह हो। अपने स्वरूप को पहचानो और हीनता का त्याग करो -- अपने अन्दर पौरुष का सचार करो।" इसी भावना को व्यक्त करते हुये मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं --

" मनुष्य जीवन में जय के लिये,
प्रथम ही दृढ पौरूष चाहिये।
विजय तो पुरुषार्थ बिना कहाँ,
कठिन है चिर जीवन भी यहाँ।
भय नही, भवसिन्धु तरो, उठो।
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ।[३]

पुरुषार्थ से क्या नहीं पाया जा सकता, यही उपदेश देते हुये कवि आगे कहता है --

" पुरुष क्या, पुरुषार्थी हुआ न जो,
हृदय की सब दुर्बलता तजो।
प्रबल जो तुममें पुरुषार्थ हो,
सुलभ कौन न तुम्हें पदार्थ हो ॥"[४]

---

१ प्रवासी - लोचन प्रसाद पाण्डेय
२ सरस्वती - आत्मविश्वास वर्ष -१९१४ अक - अक्टूबर पृ० ५७५
३ वही अक - जनवरी पृ० ४
४ वही

हीनता व निराशा का त्याग करके कर्म व पुरुषार्थ करने की प्रेरणा 'नर हो न निराश करो मन को' कविता के माध्यम से कवि इस प्रकार देता है -

कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग मे रह कर कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
समझो जिससे यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो न निराश करो मन को।''[१]

पौरुष रहित अकर्मण्य लोगो को पशु से भी गर्हित और पृथ्वी का भार बतलाते हुये 'श्रीधर पाठक' अपनी कविता में लिखते हैं —

''इस शरीर से जो मनुष्य नहि कुछ भी लाभ उठाता है,
उस्से तो वह पशू भला जो काम सैकडों आता है।
उस्का जन्म व्यर्थ है जो नर पौरुष न कुछ दिखलाता है,
न इस लोक, ना उसी लोक में हॉथ उसे कुछ आता है।।''[२]

हताशा और निराशा का त्याग करके सच्चा कर्म-वीर बनकर उद्योग करने की शिक्षा देते हुये— 'उत्तेजना' नामक कविता में 'हरिवंश मिश्र' लिखते हैं —

''होते हो क्यों व्यर्थ हताश,
पूर्ण सदा करते है, ईश्वर उद्योगी की आश।
आओ उठो लगो उन्नति में करके दृढ विश्वास,
जगा रहे हैं तुमकों यह कहकर वेद व्यास,
मन को अपने वश में कर लो छोडो हास विलास,
सच्चे कर्मवीर बन जाओ कर दो यश-प्रकाश।।''[३]

इस प्रकार हम देखते है कि विवेकानन्द ने 'कर्म' व पुरूषार्थ' की महत्ता प्रतिपादित

---

१ सरस्वती वर्ष-१९१४ अक-फरवरी पृ० ६७
२ जगत् सच्चाई सार-श्रीधर पाठक पृ० ३
३ सरस्वती वर्ष-१९१७ अक-दिसम्बर पृ० २८१

करते हुये जन-जन को जो सन्देश दिया, द्विवेदी युग के कवियो ने उसी सन्देश को अपनी कविता के माध्यम से जन जागरण करके जनता तक पहुॅचाने का प्रयत्नकिया ।

शिक्षा

स्वामी विवेकानन्छ ने व्यक्ति और राष्ट्र के विकास के लिये शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया । वे इसको सभी समस्याओ का अत करने वाला एकमात्र कारक मानते थे । शिक्षा को वे व्यापक दृष्टि से देखते थे । उनके अनुसार मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है, इस पूर्णता की प्राप्ति के लिये उचित वातावरण के द्वारा ही विकास सम्भव है । आगे वे कहते हैं -''हमे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढे, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खडा होना सीखे । शिक्षा के विकास के सम्बन्ध मे उनका मानना है कि जब तक इस देश में अध्यापन और शिक्षा का भार त्यागी और निस्पृह पुरुष वहन नहीं करेंगे तब तक भारत को दूसरे देशों के तलबे चाटने पडेंगे ।

स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा सम्बन्धी अवधारणा को आधार बनाकर द्विवेदी युग के कवियों ने शिक्षा की उन्नति और विकास के प्रति अपनी कवता के माध्यम से लोगो का ध्यान आकृष्ट किया । इन कवियों ने एक तरफ शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुये इसके गुणो का बखान किया तो दूसरी तरफ अशिक्षा तथा शिक्षा की गलत पद्धति पर प्रहार भी किया । शिक्षा के गॅुण और महत्व को दर्शाते हुये अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'विद्या' नामक कविता में लिख है–

' इस चमकते हुये दिवाकर से,
इस बरसते हुये निशाकर से,
जो अलौकिक प्रभाव वाली है,
औ सरसता में जो निराली है ।
वह जगद् बन्दनीय विद्या है,
अति अनूठा प्रभाव जिसका है,
ज्योति सूरज जहाँ नही जाती,
यह वहाँ भी है रग दिखलाती ।

जो शशी को सरस नहीं कहते,
इसके रस से मोद वह लहते,
यह सुधा अमर बनाती है ।
यह सुयश बेली को उगाती है ॥''[१]

उक्त कविता में शिक्षा से होने वाले लाभ पर प्रकाश डाला गया है और उसकी तुलना सूर्य और चन्द्रमा से भी बढकर की गयी है ।

भारतवासियो ने प्राचनी काल से ही शिक्षा के महत्व को जाना और समझा है । आदिकाल से ही यहाँ गुरू-शिष्य परमपरा के अन्तर्गत शिष्य गुरुकुल मे गुरु के सामीप्य मे रहकर उनसे नि शुल्क शिक्षा ग्रहण करता था । इस भारतीय शिक्षा पद्धति का वर्णन स्वामी विवेकानन्द ने एक बार जब लदन मे वहाँ के शिक्षाविदों के बीच किया, तो वे आश्चर्यचकित रह गये । उसी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का वर्णन करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

'' पढते सहस्रो शिष्य हैं पर फीस ली जाती नही ।
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धनपर बेच दी जाती नहीं ।
दे वस्त्र, भोजन भी स्वय कुलपति पढाते हैं उन्हे
बस, भक्ति से सन्तुष्ट हो दिन- दिन बढाते हैं उन्हें ।''[२]

समय के साथ इस प्राचीन गौरवपूर्ण शिक्षा प्रणाली का धीरे-धीरे ह्रास हो गया । वर्तमान में आते-आते इसका स्वरूप पूर्णत बदल गया । वर्तमान शिक्षा प्रणाली और उसकी हीन दशा का चित्रण करते हुये' गया प्रसाद शुक्ल सनेही' 'देहतियों की शिक्षा शीर्षक कविता मे लिखते हैं---

'' ऊना मासी धम्म' लगे बालकगण रटने,
उनकी मेधाशक्ति लगी क्रम से घटने ।
प्यौचा-ख्यौचा सिर्फ कभी थे विकट पहाडे,
कैथी-मुडिया लिखी शुद्ध लिपि वर्ण विगाडे,
अर्द्ध दग्ध से हो गये पेट पाल लेने लगे ।
किसी तरह से जगत में समय ढाल लेने लगे ।''[३]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९०७ अक - ९ पृ० ३५७
२ भारत भारती अतीत खण्ड पृ० ६८
३ सरस्वती वर्ष - १९१५ अक - मई

देश मे शिक्षा की कमी एव उसकी दुर्गति का वर्णन करते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं -

" विद्या नहीं है, बल नहीं है, धन भी नहीं है।
क्या से हुआ है यह गुलिस्तान हमारा ।।"[१]

शिक्षा के अभाव मे मनुष्य, मानव होते हुये भी दानव के समान रहता हैं, कविवर मैथिलीशरण गुप्त अपनी यह भावना 'भारत- भारती' के माध्यम से इस तरह व्यक्त करते हैं -

" विद्या बिना अब देख लो, हम दुर्गुणों के दास हैं,
हैं तो मनुज, हम किन्तु रहते दनुजता के पास हैं।
दाये क्या बाये सदा सहचर हमारे चार हैं-
अविचार, अन्धाचार, है व्यभिचार, अत्याचार हैं ।।"[२]

अविद्या और ज्ञान के अभाव में हम भारतवासी निशाचर बनकर रह गये हैं, गुप्त जी अपनी कविता मे यही भाव व्यक्त करते हुये लिखते है- -

' छायी अविद्या की निशा है, हम निशाचर बन रहे,
हा! आज ज्ञानाभाव से वीभत्स रस में सन रहे।"[३]

वर्तमन शिक्षा के व्यावसायिक एव अर्थ प्रधान होने से कमजोर और गरीब वर्ग शिक्षा से वचति होकर मूर्ख बनकर जीवन यापन करने को विवश है। शिक्षा पद्धति की इस बुराई की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये गुप्त जी कहते हैं -

" हा! आज शिक्षा-मार्ग भी सकीर्ण होकर क्लिष्ट है,
कुलपति- सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है।
बिकने लगी विद्या यहाँ अब, शाक्ति हो तो क्रय करो,
यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रह कर ही मरो ।।"[४]

शिक्षा की अवनिति और अवदशा पर अपनी कविता के माध्यम से जनता का ध्यान

---

१ द्विवेदी काव्यमाला पृ० ३८३
२ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १२२
३ वही
४ वही

आकृष्ट करने के साथ ही इस युग के कवि इसकी उन्नति और विकास का मार्ग भी दिखलाते हैं। गया प्रसाद शुक्ल ' सनेही' अपनी कविता के माध्यम से शिक्षा का विकास कैसे हो, के सम्बन्ध मे लिखते हैं -

" शिक्षा हो अनिवार्य फीस से पीछा छूटे,
करे वार सरकार, मूर्खता का गढ टूटे।
बालकगण को मिले लाभदायक शिक्षायें,
जो भविष्य में काम निरतर उनके आये।
हाथ बढाने के लिये शिक्षित दल आगे बढे,
तो ग्रामो मे बेलि यह शिक्षा की मडये चढे ॥"[१]

शिक्षा के प्रसार एव उसके महत्व पर प्रकाश डालते हुये राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' लिखते हैं -

" शिक्षा ऊँचे वर्ग की, पावें यहाँ के लोग,
तभी यहाँ से दूर हो, अधकार का रोग ॥"[२]

स्वामी विवेकानन्द केवल विभागो में बाबू बनाने वाली शिक्षा पद्धति का विरोध करते थे। उनकी इसी बात को मैथिली श्शरण गुप्त कविता के माध्यम से व्यक्त करते हैं -

" वह आधुनिक शिक्षा किसी विध प्राप्त हो कुछ कर सको-
तो लाभ क्या, बस क्लर्क बनकर पेट अपना भर सको।
लिखते रहो जो सिर झुका , सुन अफसरों की गालियॉ,
तो दे सकेंगी रात को दो रोटियॉ घरवालियॉ।"[३]

आधुनिक युग में मानव के शिक्षा प्राप्ति का उद्देश्य केवल नौकरी पाना ही रह गया है, जिससे शिक्षा अपने मूल उद्देश्यो से भटक गयी है। कविता के माध्यम से गुप्त जी इस सम्बन्ध मे अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

---

१ सरस्वती वर्ष - १९१५ अक - मई
२ स्वदेशी कुण्डल पद - ५१
३ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १२३

"अब नौकरी ही के लिए विद्या पढी जाती यहाँ
बी०ए० न हो हम तो भल गिनती गिनी रखी कहाँ।
इस स्वर्ग का सोपान है तू हाय री, डिप्टीगिरी।
सीमा समुन्नत की हमारी चित्त मे तूँ ही भरी।"[१]

स्वामी विवेकानन्द जापान की शिक्षा पद्धति की प्रसशा करते थे। वहाँ की शिक्षा पद्धति राष्ट्र के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती थी परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश की शिक्षा पद्धति मे वह भावना नही है। विवेकानन्द की इसी भावना को व्यक्त करने हुये गुप्त जी लिखते हैं -

"है व्यर्थ वह शिक्षा कि जिससे देश की उन्नति न हो,
जापान के विद्यार्थियों की सूक्ति है कैसी अहो। -
"साहब! हमे यूरोपियन हिस्ट्री न अब दिखलाइये,
बेलून की रचना हमें करके कृपा सिखलाइये।।"[२]

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि मैं उन शिक्षित लोगो को अपराधी मानता हूँ जो दीन- दुखियों के पैसे से खुद तो शिक्षित हो गये परन्तु उनकी शिक्षा पर जरा भी ध्यान नहीं देते। वे शिक्षित वर्ग का आवाहन करते हैं कि वे अज्ञानता के अन्धकार में पडे हुये लोगो के जीवन में ज्ञान रूपी प्रकाश का प्रसार कर दे। स्वाीजी की भावनना को मैथिलीशरण गुप्त ने इस तरह से व्यक्त किया है -

"हे शिक्षितो! कुछ कर दिखाओ, ज्ञान का फल है यही,
हो दूसरो को लाभ जिससे श्रेष्ठ विद्या है वही।
सख्या तुम्हारी अल्प है, उसको बढाओं शीघ्र ही,
नीचे पडे हैं जो उन्हें ऊपर चढाओ शीघ्र ही
अपने अशिक्षित भाइयों का प्रेम पूर्वक हित करो
उनकी समुन्नति से उन्हें उत्साहयुत परिचित करो।।"[३]

इस तरह हम देखते है कि स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सिद्धान्तो एव उससे

---

१ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १२३
२ वही पृ० १२५
३ वही भविष्यत खण्ड पृ० १७६

सम्बान्धित उपदेशो को द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी रचनाओ में व्यापक महत्व देते हुए उन्हें जन-जन तक पहुचाने का सार्थक प्रयास किया ।

कृषि व किसान

भारत मे करोडो की सख्या मे रहने वाले दीन- हीन, गरीब लोगो को ही स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र का प्राण मानते हैं । यहाँ के किसान और मजदूरो की दयनीय स्थिति देखकर वे द्रवित हो जाते थे । अहर्निश परिश्रम करने के बाद भी ये अपना पेट भरने के लिए अन्न तक की व्यवस्था नहीं कर पाते । उनकी दयनीय अवस्था एव उनकी शक्ति का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं -" ये किसान जुलाहे आदि जो भारत के नगण्य मनुष्य हैं, ये ही लगातार चुपचाप अपना काम करते जा रहे हैं और अपने परिश्रम का फल भी नहीं पा रहे हैं । इन लोगो ने मौन रहकर हजारों वर्षों तक अत्याचार सहा है, और उससे पाई है, अपूर्व सहनशीलता । चिरकाल से दु ख भोगा है, जिससे पाई है, अटल जीवनी शक्ति । ये लोग मुटठी भर सत्तू खाकर दुनिया को उलट सकेंगे । आधी रोटी मिली तो तीनों लोको में इनका तेज न अटेगा ।"[१]

द्विवेदी युग के कवियो ने स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित होकर राष्ट्र के उत्थान मे किसान और मजदूरों के योगदान को महत्व को समझते हुए अपनी रचनाओं मे अनेक स्थलों पर इनका वर्णन कियाहै। गया प्रसाद शुक्ल' सनेही' ने कृषको की दयनीय अवस्था का वर्णन- उन्हीं के मुँह से इस तरह कहलवाया है —

" नही मिलती है पेट भर हमको रोटी,
न जुटता है कपडा सिवा एक लगोटी ।
बनी झोपडी माद से भी है छोटी,
कहें और-क्या अपनी किस्मत है खोटी ।
नहीं ऐसा दु ख जो उठाया न हमने,
कभी किन्तु दुखडा सुनाया न हमने ।"[२]

---

१ विवेकानन्द साहित्य - ८
२ करुणा कादम्बिनी - गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

जमींदारो और पटवारियो के शोषण और अत्याचार का वर्णन करते हुए सनेही जी लिखते हैं -

"जमींदारो के पेट भरते नहीं हैं,
वे खाते हैं इतना, अफरते नहीं हैं।
किसानो पे क्या जुल्म करते नहीं हैं,
अभागे हैं हम, हाय ! मरते नहीं हैं।
जिलेदार जी भर हमें लूटते हैं,
न पटवारियों से भी हम छूटते हैं।"[१]

किसान की विपन्नता और उसकी दयनीय अवस्था देखकर बूढा बैल भी उसका कार्य करने से इन्कार न कर सका, इसका कारुणिक चित्रण कवि मुकुटधर अपनी कविता मे इस प्रकार करते हैं-

" खींचे रहा था हल आतप मे बूढा एक बैल सत्रास,
उसे देखकर विकल बहुत हो मैं जाकर के पूँछा पास।
बूढे बैल खेत मे नाहक क्यो दिन भर तुम मरते हो?
क्यो न चरागाहों मे चरकर मौज, मजे से करते हो?
सुनकर मेरी बात बैल ने कहा दु ख से भर कर आह ,
इस अनाथ, असहाय कृषक का होगा फिर कैसे निर्वाह ।।"[२]

कविवर मैथिली शरण गुप्त जी किसानों का, जो अपने खून को पसीना बना कर अन्न पैदा करके पूरे देश का पेट भरता है परन्तु स्वय वह और उसका परिवार भूँखे पेट सोता है। इस त्रासदपूर्ण जीवन का वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं -

पानी बना कर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहाँ,
फिर भी अभागे भूख से दिन रात मरते हैं यहाँ।
सब बेचना पडता उन्हें निज अन्न वह निरुपाय है,
बस चार पैसे के अधिक पडती न दैनिक आय है।"[३]

---

१ करुणा कादम्बिनी - गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'
२ सरस्वती - नि स्वार्थ सेवा वर्ष - १९१८ अक - दिसम्बर पृ० २२२
३ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० ९९

कृषको के परिवार की दयनीय अवस्था का सवेदनात्मक वर्णन करते हुए गया प्रसाद शुक्ल लिखते हैं -

"जब चिल्लाकर भूँख -भूँख बालक रोते हैं,
टुकडे सौ- सौ हाय कलेजे के होते हैं।
क्या दु खिया के पूत कभी सुख से सोते हैं,
रोते है, मुँह सदा ऑसुओं से धोते हैं ॥
जब घर मे कुछ न हो, कहो कोई क्या राधे,
रहते सदा दिवस हाय यो ही मुँह बाँधे ॥"[१]

देश मे कृषि एव किसानो की समस्या का वर्णन कवि अन्यत्र इस तरह करता है।

"सीच - साँच भी दिया मगर कुछ काम न निकला,
बेच बाच जो लगा दिया वह दाम न किनला।"[२]

किसान अपनी भूख बेवशी और लाचारी से सत्रस्त हो कर समाज के सम्पन्न वर्ग से तीखा सवाल पूछ बैठता है–

"खा रहे हो अन्न ?
मरणासन्न मेरी हड्डियों का
स्वाद कैसा लग रहा है"[३]

धूप, शीत व वर्षा की परवाह न करते हुये किसान अन्न पैदा करने के लिये हाड-तोड परिश्रम करता है, इसके बाद भी उसे भर पेट भोजन नसीब नहीं होता। इसका वर्णन करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

"बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा,
हैं चल रहा सनसन पवन, तन से पसीना ढल रहा।
देखो कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस ऑंच में वे निज शारीर जला रहे।

---

१ कृषक क्रन्दन - गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' पद - ४
२ वही पद - २
३ युग चरण - माखन लाल चतुर्वेदी

मध्याह्न उनकी स्त्रिया ले रोटिया पहूँची वहीं ।,
हैं रोटियाँ रूखी, खबर है शाक की हमको नहीं,
सन्तोष से खाकर उन्हें, वे काम मे फिर लग गये,
भर-पेट भोजन पा गये तो भाग्य मानो जग गये ।।[१]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवि, कृषि और कृषक की दयनीय अवस्था का वर्णन करके जन- सामानय को इसमें सुधार के प्रति प्रेरणा देते हैं । किसान और कृषि में सुधार के द्वारा ही राष्ट्र के सभी लोगो का समान रूपसे विकास स्म्भव है । यहॉ द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द मानते थे - उत्तम कृषि और सम्पन्न किसान के द्वारा ही राष्ट्र उन्नति की सीढियाँ चढ सकता है ।

भेद—भाव

रामकृष्ण देव मानव मात्र मे जाति - वर्ण, धर्म - सम्प्रदाय, किसी भी आधार पर भेद - भाव का विरोध करते थे । निम्न जाति के पेरिया के घर झाडू लगाकर इन्होंने छुआ - छूत एव जाति - प्रथा का अपने कर्तृत्व के द्वारा विरोध किया । विभिन्न धर्मो की साधना करने के बाद इन्होने यह सन्देश दिया कि धर्म का मूल तत्व एक है, विभिन्न पन्थ और सम्प्रदाय वहॉ तक पहुॅचने के अलग - अलग मार्ग हैं । इस तरह रामकृष्णदेव अपनी वाणी औरआचरण के द्वारा सामाजिक समन्वय करते हुए दीखते हैं । अपने गुरू के इन्हीं आदर्शो को विवेकानन्द ने भी आगे बढाया । शिकागो के महाधर्म सम्मेलन मे इन्होंने सन्देश दिया कि एक धर्म के पतन से दूसरे धर्म का उत्थान नहीं हो सकता । न हिन्दू को ईसाई बनना है न ईसाई को हिन्द । समान रूप से सभी धर्मो के विकास मे ही मानव का कल्याण निहित है ।

द्विवेदी- युगीन भारतीय समाज छुआ - छुत, जाति - पाति, भेद - भाव, ऊॅच - नीच एव विभिन्न मत - सम्प्रदायो मे उलझा हुआ था । रामकुष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द के सन्देशो को आधार बनाकर इस युग के कवियो ने अपनी रचनाओ के माध्यम से इन विसगतियों

---

१ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १००

को दूर करने हेतु सामाजिक एकताा का सन्देश दिया । समाज मे व्याप्त छुआ-छूत तथा अछूतो की दयनीय अवस्था का वर्णन करने हुए सियारामशरण गुप्त उनके तिरस्कार एव आत्वेदना को वाणी प्रदान करते हैं -

'' सिह पौर तक भी आँगन से नहीं पहुँचने मैं पाया,
सहसा यह सुन पडा कि - कैसे यह अछूत भीतर आया ?
पकडो, देखो भाग न जावे,
साफ स्वच्छ परिधान किये है
भले- मानुषो के जैसा ।
पापी ने मन्दिर में घुसकर,
किया अनर्थ बडा भारी ।
कलुषित कर दी है मन्दिर की,
चिर - कालिक शुचिता सारी ।''[१]

समाज के अछूतो के दु ख का वर्णन करते हुए उनसे घृणा की अपेक्षा प्रेम रखने का सन्देश अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' अपनी कविता के माध्यम से इस तरह देते हैं -

'' जो बहुत दु ख पा चुके हैं आज तक,
कम न दु ख होगा उन्हे दु ख दिये ।
सब तरह से जो बेचारे हैं दबे,
मत उन्हे आँखे दबाकर देखिये ।

छूत क्या है अछूत लोगों मे,
क्यो न इनका अछूतपन लखिये ।
हाथ रखिये अनाथ के सिर पर,
कान पर हाथ आप मत रखिये ।

बाहरी जात-पात के पचडे,
भीतरी छूत- छात की साधे ।
है हमें बाँध बेतरह देती,
क्यो उन्हें जाति के गले बाँधे।''[२]

---

१ आर्द्रा - एक फूल की चाह पृ० ५५ - ५६
२ चुभते चौपदे - छूत - छात - हरिऔध

अछूत एव दलित के प्रति प्रेमभाव रखकर उन्हें समाज की मुख्या धारा मे सम्मिलित करके देश से इस कुप्रथा को समाप्त करने का सन्देश देतु हुये राम नरेश त्रिपाठी लिखते हैं -

"कोई दलित न जग में हमको पडे दिखाई,
स्वाीधन हो, सुखी हों, सारे अछूत भाई।
सब को गले लगा ले यह शुद्ध मन हमारा,
छूटे स्वदेश की ही सेवा में तन हमारा ॥"[१]

सदियो की उपेक्षा एव तिरस्कार के कारण हीन भावना से ग्रस्त अछूतों एव शूद्रों को स्वय उठने की प्रेरणा देते हुए मैथिली शरण गुप्त उनमें आत्मबल का सचार करते हुए लिखते हैं -

'रखो न व्यर्थ घृणा कभी निज वर्ण से या नाम से,
मत नीच समझो आपको, ऊँचे बनो कुछ काम से।
उत्पन्न हो तुम प्रभु- पदों से जो सभी को ध्येय है,
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके श्रेय है ॥"[२]

यहाँ द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द शूद्रो एव अछूतो को अपना भाई कहकर ऊपर उठने के लिए प्रेरित करते थे। वे जाति या वर्ण के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करते थे। ब्राह्मणत्व उनकी दृष्टि मे प्रत्येक व्यक्ति के लिए जाति का आदर्श है एव आचाण्डाल सभी को ब्राह्मण बनना उनका ध्येय। इसी से राष्ट्र उन्नति कर सकेगा। स्वामी जी के इन आदर्शों को कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुये राम चरित उपाध्याय लिखते हैं -

"ऊँच नीच का भेद छोड यदि,
सभी बराबर हो जाते।
बातो ही बातो में फिर तो,
भारत के दु ख खो जाते।"[३]

---

१ मानसी - स्वदेश गीत पृ० १०९
२ भारत भारती भविष्यत खण्ड पृ० १७५
३ सरस्वती - हमीं हम वर्ष - १९१६ अक - फरवरी पृ० १०१

इसी बात को बदरी नाथ भट्ट इस तरह व्यक्त करते हैं -

“विस्तारें जातीय एकता,
भेद विरोध विसारे।
भारतमाता की जय बोले,
जल-थल नभ गुजारे ॥”[१]

समाज में भेद-भाव को दूर करने एव पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध बढाने हेतु नाथूराम शर्मा शकर यह सन्देह देते हैं -

“बैरफूट के पास न जाना,
सबसे रखना मेल मिलाप ।
पूण्यशील सुख से दिन काटे,
पापी करते रहे विलाप ॥”[२]

रामचारित उपाध्याय की काव्यकृति ‘देवदूत’ का नायक जाति - धर्म, रूप - रग आदि भेदो से रहित नये भारत का स्वप्न इस तरह देखता है -

“रूप- रग मे, जाति- धर्म में,
यहाँ बना है भेद नहीं ।
पर वैभव को देख, किसी के -
मन मे होता खेद नहीं ।”[३]

जाति एव वर्ण के विरोध के साथ ही इस युग के वियो ने धार्मिक विभेद को भी अपनी कविता के माध्यम से दूर करने का प्रयत्न किया । महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दू मुसलमान, ईसाई सभी की एकता में ही विकास देखते हुये अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते हैं -

हिन्दू मुसलमान ईसाई,
यश गावें, सब भाई -भाई।
सब के सब तेरे शैदाई,
फूलो फलो स्वदेश ।”[४]

१	सरस्वती - राग देश	वर्ष - १९१५	अक - अप्रैल	पृ० १९५
२	वायस विजय			पद - १०६
३	देव दूत - उत्तर भाग			पद - ३३
४	द्विवेदी काव्यमाला			पृ० ४५३ - ५४

बौद्ध, जैन , पारसी यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई, सभी को एकता का सन्देश देते हुये रूप नारायण पाण्डेय लिखते हैं -

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी,
मुसलामन, सिख, ईसाई,
कोटि कण्ठ से मिलकर कह दो,
हम सब हैं भाई-भाई ।।'[१]

हिन्दू और मुसलमान के आपसी बैमनस्य एव कटुता पर प्रहार करते हुये सियाराम शरण गुप्त लिखते हैं -

'' वह कहते हैं - इनकी चोटी कर देंगे हम साफ,
यह कहते है - उनकी दाढी हम न करेंगे माफ ।
कौन कहे इन हज्जामो से बको न यों निस्सार,
बहुत- बहुत हम देख चुके हैं इस कैंची की धार ।।'[२]

धर्म द्वेष और विवाद का विषय न होकर प्रेम का विषय है । बाह्य रूप से अनेक नाम और रूप होने पर भी ईश्वर का मूल स्वरूप एक ही है । रामकृष्ण देव के इस सन्देश को मैथिली शरण गुप्त अपनी कविता के माध्यम से इस तहर व्यक्त करते हैं -

'' प्रभु एक किन्तु असख्य उनके नाम और चरित्र हैं,
तुम शैव, हम वैष्णव इसी से हा अभाग्य ! अमित्र हैं ।
तुम इस को निर्गुण समझते, हम सगुण भी जानते,
हा! इब इसी से हम परस्पर शत्रुता हैं मानते ।।[३]

विभिन्न धर्म और मत एक ही उद्देश्य की पूर्ति करानें के साधन मात्र है। रामकृष्ण देव की इस शिक्षा को कवि मैथिली शरण गुप्त इस तरह व्यक्त करते है- -

''उद्देश्य हैं बस एक यद्यपि पक्ष अनेक प्रमाण है-
रुचि - भिन्नतार्थ किये गये जो ज्ञान से निर्माण है ।
पर अब पथो को ही यहाँ परधर्म्म हैं हम मानते,
करके परस्पर घोर निन्दा व्यर्थ ही हठ ठानते ।।''[४]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९१४ सख्या - ६
२ नोआखाली - अक्षय पृ० १२
३ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १३२
४ वही

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवि रामकृष्ण देव विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित होकर समाज में जाति एव धर्म के नाम पर भेद-भाव का अपनी कविता के माध्याम से विरोध करते हुये समाज मे एकता व समानता का सन्देश प्रसरित करते हैं।

नारी उत्थान

रामकृष्ण देव नारी जाति के प्रति मातृभाव रखते थे। उन्होने नारी को कभी भी दीन नही समझा। उनकी दृष्टि मे जगन्माता माँ काली उनको पैदा करने वाली उनकी माँ तथा उनकी पत्नी मे कोई भेद नहीं है। नारी के प्रति अपने गुरू के इन आदर्शात्मक विचारों से प्रभावित होकर स्वामी विवेकानन्द भी नारी जति के प्रति उदात्त भावरखते थे। वे भारतीय नरियो की तुलना सीता सावित्री व दययन्ती से करते हुये उन्हें सदैव उच्च कार्यो के लिये प्रेरित करते रहते। द्विवेदी युग के रचनाकारों ने भी रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द के नारी विषयक उच्च आदर्शो से प्रभावित होकर एकतरफ वर्तमान समाज मे उनकी दयनीय अवस्था एव उनकी अशिक्षा का वर्णन किया हैं तो दूसरी तरफ उनके गौरममय अतीत की याद दिलाते हुये उन्हे सत्कार्यो हेतु प्रेरित भी किया है। ठाकुर गोपालशरण सिह नारी के गौरवमय अतीत का वर्णन अपनी कविता मे इस तरह करते हैं -

"दमयन्ती की यही जन्म वसुधा मे प्यारी,
हुई रुकमिनी यही और गार्गी गाधारी।
जनकसुता की कथा विश्व विश्रुत है न्यारी,
और कहाँ है, हुई जगत मे ऐसी नारी।।"[१]

नारी का गौरवमय इतिहास होने के बाद भी वर्तमान समाज मे उनकी स्थिति अत्यत दयनीय है और उसी दयनीयता के कारण नारी अबला कहलाने लगी। नारी की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए सियारामशरण गुप्त 'अनाथ' नामक कविता मे लिखते हैं -

"यह अबला किसलिये यहाँ कर रही रुदन है,
किस विपत्ति में व्यथित आज ये इस का मन है।।

---

१ सरस्वती वर्ष-१९०७ खण्ड-८ सख्या-१

अविरल दृगजल बहा रही क्यूँ यह बेचारी,
अति अधीर हो रही कौन से दु ख की मारी ।।''[१]

नारी के उत्थान की भावना से प्रेरित होकर श्रीधर पाठक लिखते हैं -

'' अहो पूज्य भारत महिलागण, अहो आर्यकुल प्यारी,
अहो आर्य गृहलक्ष्मी, सरस्वति आर्य लोक उजियारी ।
आर्य जगत मे पुन जननि निज जीवन ज्योति जगाओ
आर्य हृदय मे पुन अर्यता का श्रुति स्रोत बहाओ।।''[२]

भारतीय महिलओ की दयनीय अवस्था का वर्णन कवि रामचरित उपाध्याय करते हुये अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते हैं -

'' वस्त्र बिना भारत अबलाये,
कर सकती है स्नान नही ।
मैले- कुचैले चिथडे से तन,
ढकी हुई हैं, कॉंप रही ।
बच्चे उनके सूख-सूखकर,
नगे भूखे फिरते हैं ।
अस्थि मात्र है उनके तन में,
लुढक- लुढक कर गिरते है।''[३]

समाज में नारियों पर होने वाले अत्याचार का वर्णन करते हुये कवि आगे लिखता हैं -

'' जीवित बाला ज्वलित दहन मे,
गयी जलायी हाय जहॉं ।
वहॉं पाप की रही न सीमा,
रहा न्याय का नाम कहॉं ।''[४]

स्वामी विवेकानन्द बाल विवाह का विरोध करते थे । कम उम्र मे बालिकाओ का

---

१ सरस्वती वर्ष - १९१७ अक - जून पृ० २४१
२ मनोविनोद पृ० ३२
३ देव सभा पद - ४२
४ वही पद ५२

गर्भधारण करना उनकी दृष्टि से अनुचित है। उनकी इस भावना को द्विवेदी युग के कवियो ने अपनी कविता के माध्यम से अनेक स्थानो पर व्यक्त किया है। बाल विवाह के दोषों की तरफ ध्यान आकृष्ट करते हुये नाथूराम शर्मा शकर लिखते हैं -

" बाल विवाह जाल रच पाप कमाया,
ब्रह्मचर्य व्रत काल वृथा विपरीत गवॉया।
अबला ने चुपचाप उठाय पछाडा मुझको,
बेटा जन कर बाप बनाय बिगाडा मुझको ।।[1]

बाल विवाह के कारण होने वाले अनिष्ट की चर्चा करते हुये मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं -

" कितना अनिष्ट किया हमारा हाय बाल्य विवाह ने!
अधा बनाया है हमे अनातियों के चाह ने।
हा! डस - लिया है वीर्य बल को मोह रूपी ग्रास ने,
सारे गुणो को है बहाया इस कुरीति प्रवाह ने।

अल्पायु मे हम सुतो का व्याह करते किसलिये?
गार्हस्थ्य का सुख शीघ्र ही पाने लगे वे इसलिये?
वात्सल्य है या वैर है यह हाय! कैसा कष्ट है?
परिपुष्टता के पूर्व ही बल- वीर्य होता नष्ट है।"[2]

नारी जाति में शिक्षा का अभाव होना भी उनकी अवनाति का एक प्रमुख कारण है। द्विवेदी युग के कवियो ने इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हये अनके स्थानो पर नारी शिक्षा के महत्व को दर्शाया है। शिक्षा के अभाव मे नारी की दुर्गति का वर्णन करते हुये गोपालशरण सिह लिखते हैं

"आज अविद्या मूर्ति सी है,
सब श्रीमतियॉं यहॉं।
दृष्टि अभागी देख ले,
उनकी दुर्गतियॉ यहॉं।।"[3]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९०७ खण्ड - ८ सख्या - १
२ भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १४५
३ सरस्वती - २६ खण्ड - ६

नारी को अशिक्षा के गर्त से निकालने के लिये कवि महावीर प्रसाद द्विवेदी ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं -

> "हे भगवान ! कहाँ सोये हो विनती इतनी सुन लीजौ,
> कामिनीयों पर करुणा करके कमले, जरा जगा दीजै ।
> कनवजियो में घोर अविद्या जो कुछ दिन से छायी है,
> दूर कीजिये उसे दयामय! दो सौ दफे दुहाई है ।"[१]

समाज को स्त्री शिक्षा के प्रति प्रेरित करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

> " विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयेगी,
> अर्द्धागियों को भी सु - शिक्षा दी न जब तक जायेगी ।।"[२]

द्विवेदी युग की कविताओं का अध्ययन करने के बाद हम देखते है कि इस युग की कविताओं मे नारी के प्राचीन गौरव, वर्तमान में उसकी अवदशा बाल विवाह एव उनकी अशिक्षा के सम्बन्ध मे व्यापक चिन्तन मिलता है । कवियो ने नारी की दुर्गति एव दुर्दशाा का वर्णन करने के साथ ही उनकी उन्नति के मार्गो पर प्रकाश भी डाला है ।

(द) आर्थिक भावधारा

स्वामी विवेकानन्द के विचारो में भारत की आर्थिक उन्नति पर भी पर्याप्त चिन्तन मिलता है । वे धर्म एव समाज सुधार के साथ आर्थिक प्रगति को भी मानव कल्याण की अनिवार्य शर्त मानते थे । उनके अनुसार बिना आर्थिक उन्नति किये राष्ट्र महान नहीं हो सकता । देश के हजारो नर -नारी जब अर्थ के अभाव में रोटी के लिये त्राहि- त्राहि कर रहे हो, तो उनके लिये धर्म के उपदेश का कोई महत्व नहीं है । भूखे को रोटी देना ही पहला धर्म हैं वर्तमान भारत मे व्याप्त सर्वत्र गरीबी, बेकोरी और भुखमारी से जनमानस त्रस्त था। इसलिये स्वामी विवेकानन्द ने इनकी

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ० उदयभानु सिंह पृ० ४३७
२ भारत भारती भविष्यत खण्ड पृ० १८१

दयनीय अवस्था मे सुधार के लिये समाज के उच्चवर्ग को प्रेरित किया। वे मानते थे कि भारत मे सभी अनर्थो की जड है- गरीबो की दुर्दशा। स्वामी जी के इन क्रान्तिकारी विचारों का द्विवेदी युग के कवियों पर गहरा प्रभाव पडा। इस युग के कवियो ने भी देश की अर्थिक अवदशा एव उसके सुधार के सम्बन्ध मे अनेक कवितायें लिखी। स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित होकर इस युग के कवि पाश्चात्य देशो से आर्थिक उन्नति की सीख लेने की प्रेरणा अपने कविता के माध्यम से देते हैं।

देश मे सर्वत्र व्याप्त धन और अन्न के अभाव एव यहॉं की दरिद्रता का वर्णन करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

" रहता प्रयोजत से प्रचुर पूरित जहॉ धन धान्य था,
जो 'स्वर्ण भारत' नाम से ससार मे सम्मान्य था,
दारिद्र्य दुर्धर अब वहॉ करता निरन्त नृत्य है,
आजीविका अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है।"[१]

देश मे समय - समय पर पडने वाले दुर्भिक्ष से भी यहॉ की आर्थिक दशा जर्जर हो गयी थी। जिससे यहॅाँ की जनता अन्न के अभाव में प्राण तक त्याग देती थी। इसका वर्णन करते हुये गुप्त जी ने लिखा है--

"दुर्भिक्ष मानों देह धर के घूमता सब ओर है,
हा! अन्न! हा हा! अन्न का रव गूँजता घनघोर है।"[२]

देश की दुरवस्था का वर्णन करते हुये 'कृषक बन्धु' 'वर्तमान दुर्भिक्ष' नामक कविता में दिखलाते हैं कि यहॅाँ के लोगों को दिन भर काम करने के बाद भी भर पेट भोजन नही मिलता--

" वैसे ही अतिशप दरिद्र हो रहा आज यह देश ललाम,
नहीं पेट भर भोजन मिलता दिन भर करने पर भी काम।
सभी हमारे व्यवसायो का ह्रास हो गया है इस काल
कैसे आर्थिक कष्ट दूर हो यही प्रश्न है बडा विशाल। "[३]

१	भारत भारती	वर्तमान खण्ड	पृ० ९३
२	वही		
३	सरस्वती	वर्ष-१९१४ अक-मार्च	पृ० १२९

खाते है उसको मुस्टडे,
पुष्ट हुए इतराते हैं ।
किन्तु पुकार भारतीयो की,
कोई सुनता कहीं नहीं ।।"[१]

समृद्ध भारत की आर्थिक अवदशा पर प्रश्न करते हुये रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' लिखते हैं -

"दायक सब आनन्द का, सदा सहायक बधु,
धन भारत का क्या हुआ, हे करुणा के सिधु ।"[२]

अग्रेजों द्वारा भारत पर लगाये गये अनेक करों के कारण ही यहाँ का व्यापार, लाभ की बजाय हानिपरक हो गयी थी । अपनी कविता मे रामचारित उपाध्याय इसी भवना को व्यक्त करते हैं -

"भारत का व्यापारी गण भी,
बहुत दबाया जाता है ।
नया - नया उस पर प्रति वत्सर,
टिकस लगाया जाता है ।
नाकों दम है यदपि हमारे,
लेने पाते सॉस नहीं ।
पर निराश हम होकर अपना,
कर सकते उपहास नहीं ।[३]

कविवर माखन लाल चतुर्वेदी भारत के अर्थ के सभी क्षेत्रों मे आई गिरावट पर दु ख व्यक्त करते हुए यहॉ की आर्थिक विपन्नता का कारण - शिल्प, वाणिज्य एव उद्योग के ह्रास को मानते हुए लिखते हैं -

"शिल्प गया, वाणिज्य गया, गुरु शिक्षा का मान नहीं,
कृषि भी डूबी, हुए दरिद्री, पर इसका कुछ ज्ञान नहीं ।
हाय ! आज हम भोग रहे हैं, झिडकी, घृणा और अपमान,
कैसे यह दू ख दूर करेंगे, भारत के भावी विद्वान ।।"[४]

---

१ देवसभा - रामचरित उपाध्याय पद - २६ पृ० १४
२ वही पद - ४४ पृ० २५ ३ वही पद - ५६ पृ० ३०
४ माता - भारत के भावी विद्वान - माखन लाल चतुर्वेदी

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवियों ने देश की आर्थिक विपन्नता का व्यापक चित्रण करते हुये इसके कारणों पर भी प्रकाश डाला है। अपनी कविताओ के माध्यम से ये प्रकारान्तर से देश को आर्थिक रूप से सुदृढ बनाने का भी सन्देश भी देते हैं।

द्विवेदी युग की कविताओ का व्यापक अवलोकन करने पर यह देखा जा सकता है कि युग की कविता, रामकृष्ण विवेकानन्द की भावधारा से व्यापक रूप से प्रभावित रही है। युग के कवियो ने धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एव आर्थिक क्षेत्र मे इनकी भावधारा को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। रामकृष्ण देव के धार्मिक समन्वय व जीव सेवा का भाव तथा विवेकानन्द के राष्ट्रप्रेम एव समाज सुधार की भावना, युग की कविताओ मे सहज ही देखी जा सकती है।

पंचम् अध्याय

रामकृष्ण – विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन गद्य पर प्रभाव

(क) भावधारा का निबन्ध पर प्रभाव

(ख) भावधारा का उपन्यास पर प्रभाव

(ग) भावधारा का कहॉनी पर प्रभाव

(घ) भावधारा का नाटक पर प्रभाव

रामकृष्ण – विवेकानन्द

भावधारा का

द्विवेदी युगीन गद्य

के सभी विधाओ पर

व्यापक प्रभाव पड़ा ।

जिसका हम

अलग – अलग

विधाओ मे बाँट कर

अवलोकन करेगे

(क) भाव धारा का निबन्ध पर प्रभाव

समाज किसी समय पर जिस भाव एव चेतना से परिपूर्ण अथवा परिप्लुत रहता है, उसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य पर अवश्य पडता है। उसकी प्रवृत्तियो का मूल उद्‌गम, विकास एव परिणाम साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। साहित्य, समाज और व्यक्ति की भावनाओं, आकाक्षाओं, अनूभूतियो तथा विचारों का अद्‌भुत् सम्मिश्रण है। व्यक्ति समाज का अग है, अतएव साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योकि उसमे समाज के हृदयगत् भावों तथा विचारो का प्रतिबिम्ब पडता है। किसी भी जाति के साहित्य की सत् समालोनचना से उसकी प्रवृत्तियों की झलक एव गतिविधियों का सकेत सरलता से देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के निबन्धो मे अग्रेजी राज्य के कठोर पजो में जकडे हुए, समाज के निस्तार के लिये एक छटपटाहट एव सामाजिक कुरीतियों तथा उसकी जडता को दूर करने की नयी चेतना दृष्टिगोचर होती है। साहित्य व्यक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकता, उसमें व्यक्ति का, समाज की स्वीकृत तथा निर्णीत धारणाओ के प्रति विद्रोह और विरोध भी अकित करना पडता है।

प्रतिभाशाली व्यक्ति सामाजिक विसगतियों एव उसकी रूढियो के प्रति कोरा विद्रोह अथवा विरोध ही प्रकट नही करते अपितु एक नवीन पथ का प्रदर्शन कर, उस पर चलने की प्रेरणा भी देते हैं। रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की भावधारा का स्पष्ट एव प्रत्यक्ष प्रभाव द्विवेदी युगीन निबन्धों मे देखा जा सकता है। देश काल एव परिस्थितियो से प्रभावित होकर समाज मे जो भावनायें एव कल्पनायें उत्पन्न होती हैं, वही साहित्य का अनिवार्य विषय हो जाता है। द्विवेदी युग की परिस्थितियो में स्वतत्रता, देश - प्रेम, समाज - सुधार एव मानववाद रामकृष्ण तथा विवेकानन्द सदृश महापुरुषो के क्रियात्मक चिन्तन के फलस्वरूप साहित्य के अनिवार्य विषय बन गये। इन नवीन विषयों को साहित्यकारो ने अपने लेख एव निबन्धो का आधार बनाया।

वास्तव में निबन्ध ही एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें साहित्यकार अपने तथा समाजगत् भावों एव विचारों का प्रकाशन, स्वच्छन्दतापूर्वक कर सकता है। द्विवेदीयुग के निबन्ध

साहित्य मे तत्कालीन परिस्थितियो से प्रभावित होकर प्रचलित प्रवृत्तियो में सुधार एव सहयोग, अधोगामी रूढियो के प्रति विद्रोह तथा उज्जवल भविष्य के प्रति सकेत एव मानववाद की भावनाओ का प्रकाशन भली भॉति देखने को मिलता है । द्विवेदी युगीन निबन्धो पर रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव को धार्मिक भावधारा, राष्ट्र्य भावधारा, सामाजिक भावधारा एव आर्थिक भावधारा में विभाजित कर अवलोकन करेगे ।

(अ) धार्मिक प्रभाव

जब किसी राष्ट्र या जाति मे नया जीवन, नयी चेतना का आविर्भाव होता है तो वह राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अग एव पक्ष पर अपना प्रभाव डालती है । समाज मे उन्नति एव परिवर्तन के लिये यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय चेतना का प्रारम्भ राजनीतिक क्षेत्र से ही हो, वह जीवन के किसी भी पहलू से प्रारम्भ हो सकती है । द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय चेतना का श्रीगणेश धार्मिक सुधारो से ही हुआ । भरत मे अग्रेजो का अधिपत्य स्थापित होने एव 'फूट डालो राज करो' की नीति के कारण धार्मिक भेदभाव एव विद्वेष चरम् पर था । ईसाई धर्म प्रचारक, हिन्दू धर्म को हीन व गर्हित घोषित करने मे लगे थे । बल प्रयोग से धर्म परिवर्तन भी कराया जा रहा था । धीरे-धीरे भारतीयो को यह अनुभव होने लगा कि अग्रेज उनकी धार्मिक कमजोरियो का पूरा-पूरा लाभ उठा रहे हैं । भारतीय जीवन में धर्म को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । अतएव भारतीयों का ध्यान अपने धर्म की रक्षा की ओर गया । ऐसे मे अनेक समाज सुधारक एव समाजसेवी सगठन समाज को धर्म सम्बन्धी नयी दिशा देने लगे । विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, केवशचन्द सेन एव रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज के द्वारा धार्मिक रूढियो का विखण्डन कर, समाज को नयी दिशा प्रदान की गयाी । पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर हमारे यहॉ नास्तिकवाद और पाखण्डवाद के प्रबल झोको ने हिन्दू धर्म की नीव हिलाने के प्रयत्न में उसे झकझोर डाला । ऐसे समय मे रामकृष्ण देव की भावना को आधार बनाकर स्वामी विवेकानन्द ने अपने क्रान्तिकारी एव ओजस्वी विचारो के द्वारा हिन्दू धर्म को इतना सुदृढ आधार प्रदान किया जिसे कोई धार्मिक विक्षेप प्रभावित नही कर सका ।

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के लिए वही कार्य किया जो किसी हद तक मार्टिन लूथर ने

ईसाई धर्म के लिए किया। इन्होंने धर्म के वाह्य आडम्बरो का खुलकर विरोध किया और धर्म के मूल तत्व को ही ईश्वरीय ज्ञान का आधार बताया। इस युग मे हिन्दू धर्म की पूर्ण रक्षा एव उसका प्रबलतम् समर्थन श्री रामकृष्ण एव स्वामी विवेकानन्द के द्वारा ही हुआ । श्री रामकृष्ण देव ने सेवा धर्म का प्रचार किया । उन्होने स्पष्ट रूप से कहा कि सभी धर्म सच्चे हैं एव एक ही उदेश्य की पूर्ति के विभिन्न साधन हैं । इनके शिष्य विवेकानन्द ने वेदान्त धर्म का देश - विदेश मे प्रचार कर, भारतीय धर्म को सभी धर्मों से श्रेष्ठ सिद्ध किया । रामकृष्ण एव विवेकानन्द के धार्मिक प्रभाव को प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से द्विवेदी युगीन निबन्धों मे देखा जा सकता है ।

द्विवेदी युग के प्रवर्तक आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी अपने द्वारा सम्पादित पत्रिका 'सरस्वती' (जो उस युग की प्रतिष्ठित पत्रिका थी) में रामकृष्ण देव के जीवन चरित एव उनके धार्मिक भावनाओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं - ''पुत्र, कलत्र आदि बेडियो को तोडना, विषय वासना से छुटकारा पाना, मृत्तिका और स्वर्ण मे अभेद मानना और ईर्ष्या - द्वेष रहित होकर प्राणिमात्र के कल्याण की आकाक्षा रखना महाकठिन काम है । कठिन क्या आजकल प्राय असम्भव है । सासारिक बन्धनो को तोडने के लिए एक ही रामबॉण उपाय है, उस उपाय का नाम विराग है । परन्तु विरागता रूपी खड्ग का स्मरण होते ही मनुष्य के होश जाते रहते हैं, उस ओर देखने तक का साहस किसी को नहीं होता । परन्तु कोयले से हीरा निकलता है, सीप ही के भीतर मोती पाया जाता है । आज हम 'सरस्वती' के पाठको के सम्मुख एक ऐसे महात्मा का चरित सादर प्रस्तुत करते हैं जिनमे उक्त गुण पूरे प्रकार से निवास करते थे । यह वह महात्मा हैं जिनके पीयूष पूरित उपदेश सुनकर अन्य धर्मावलम्बी मुग्ध हो गये । जिनके चरित् को विस्तारपूर्वक लिखकर विदेशी विद्वान मैक्समूलर ने भी अपने को धन्य समझा । यह वह महात्मा हैं जिनके शिष्य विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका तक के विद्वानों को भारतवर्षी वेदान्त शास्त्र की महिमा सुनाकर मोहित कर लिया। इस महात्मा का नाम परमहस रामकृष्ण है ।''[१]

उपर्युक्त लेख' महात्मा रामकृष्ण परमहस' मे उनके जीवन चरित एव धार्मिक

१- सरस्वती वर्ष १९०३ अक - फरवरी - मार्च पृ० ४१

विशिष्टताओ का वर्णन करते हुए रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द का चित्र भी छापा गया है।[१] आचार्य द्विवेदी जी रामकृष्ण देव के जीवन चरित का विश्लेषण करते हुए उनके समत्व दृष्टि एव एकत्वभाव का वर्णन करते हुये लिखते है -'' इस जगत के सारे अनर्थों का मूल बहुत करके दो ही वस्तु हैं- एक कनक और दूसरी कान्ता । इसलिये रामकृष्ण स्त्री मात्र को माता और द्रव्य मात्र को मिट्टी के टुकडे से भी तुच्छ समझते थे । कुछ दिन में उन्होने द्रव्य को हॉथ से छूना तक छोड दिया । यह कहना चाहिये कि निर्लोभता की सीमा का उन्होंने उल्लघन कर दिया ।''[२]

'रामकृष्ण देव' धर्म के वाह्य आडम्बर एव प्रदर्शन, चमत्कार का पूर्णत विरोध करते थे । वे इसे ईश्वर की उपासना मे बाधा समझते थे । इसका वर्णन महाबीर प्रसाद द्विवेदी जी करते हुये लिखते हैं ,-'' रामकृष्ण यद्यपि महायोगी थे, तथापि अघटित घटनाओ को दिखलाकर वे अपना सामर्थ्य सब लोगो पर विदित नहीं करना चाहते थे । वे इसे खेल समझते थे और कहा करते थे कि ऐसा करना ही बुरा है। इससे ईश्वर की उपासना में अन्तर पडता है और अहकार से मन के कलुषित हो जाने का डर रहता है । एक बार उनके एक शिष्य ने पानी पर चलने की सिद्धि प्राप्त करके उसका वृत्तान्त उनसे कहा, वे उसके कथन को सुनकर प्रसन्न तो हुए नहीं ,उल्टा उन्होने अप्रसन्नता प्रकट की । उन्होंने कहा कि, '' तूने इतना परिश्रम और इतने दिन एकान्तवास करके क्या यही एक पैसे की वस्तु प्राप्त की । क्या एक पैसा देकर कोई मनुष्य नाव के द्वारा नदी नहीं पार हो सकता? तेरा परिश्रम व्यर्थ है । इस प्रकार का व्यवसाय छोडकर तुझे केवल ईश्वर की उपासना में लीन होना चाहिए। पानी पर चलने और अगार मुख मे रखने की सिद्धि से अणुमात्र भी लाभ नहीं ।[३]

रामकृष्ण देव के धार्मिक समन्वय एव सरलता के कारण सभी मत एव पन्थ के अनुयायी उनसे धर्मलाभ प्राप्त करते थे । आचार्य द्विवेदी इस सम्बन्ध मे लिखते हैं-'' रामकृष्ण के माहात्म्य एव उनकी कीर्ति को सुनकर लोग दूर से उनके दर्शनों के लिये आने लगे । उनके ज्ञानामृत मधुर उपदेशों को सुनकर अपने को धन्य मानने लगे। उनके उपदेश ऐसे सीधे परन्तु हृदयगामी होते थे कि उनको सुनकर महानास्तिक भी अपनी नास्तिकता छोड देते थे। प्रसिद्ध बह्म

१ सरस्वती वर्ष १९०३ अक - फरवरी - मार्च पृ० ४४
२ वही वही पृ० ४६
३ वही पृ० ४७

समाजी बाबू केशवदेव सेन रामकृष्ण के उपदेशों मे तल्लीन होकर उनके शिष्य सदृश हो गये थे। वे प्राय उनके दर्शनों को आया जाया करते और समाधिस्थ होने पर उनकी पाद सेवा अपने हाथ से किया करते थे । रामकृष्ण के मुख से निकले हुए दृष्टान्तों को उन्होंने पहले पहल अग्रेजी मे प्रकाशित किया । उनके प्रकट होते ही रामकृष्ण की कीर्ति और भी दूर-दूर तक फैल गयी। बडे-बडे अधिकारी अग्रेज भी उनको आदर की दृष्टि से देखने लगे । पादरी लोग भी कभी-कभी पूछ-पाछ की इच्छा से उनके पास जाने लगे। अगेजी के बडे-बडे विद्वान और कालेज के विद्यार्थी जिनमे नास्तिकता के बीज दृढता से आरोपित हो गया था, उनके सीधे-सादे उपदेशो को सुनकर चकित होने और साथ ही नास्तिकता को छोडने लगे । उनकी तर्क प्रणाली रामकृष्ण की ग्राम आरव्यायिकों के सम्मुख उडी-उडी फिरने लगी ।[१]

रामकृष्ण देव अपने विचारों के द्वारा समाज में धर्म का अनवरत प्रसार कर रहे थे । वे अपने धार्मिक अनुभव को जन -जन तक पहुँचाने मे सतत् लगे रहे । इस सम्बन्ध में 'सरस्वती' के सम्पादक द्विवेदी जी लिखते हैं - " अस्वस्थ होने पर भी वे बहुधा चुपचाप न बैठते थे, कुछ न कुछ ज्ञानोपदेश किया ही करते थे । इस सतत् भाषण का परिणाम उनके दुर्बल शरीर पर बडा बुरा हुआ। कुछ दिनों मे उनके कण्ठ मे पीडा होने लगी परन्तु तिस पर भी उन्होंने बोलना न बन्द किया। जो कोई उन्हे बोलने से रोकता तो वे कहते कि- यदि मेरे कथन से एक भी मनुष्य का थोडा भी उपकार हो और यदि उसके बदले मुझे मेरे प्राण भी विसर्जित करने पडे तो भी मै अपने को कृतार्थ मानूँगा ।"[२] इस तरह द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकार अपनी लेखनी के माध्यम से इस युग मे रामकृष्ण देव की भावधारा का प्रसार करते दीखते हैं ।

द्विवेदी युग के ही एक अन्य प्रतिष्ठित निबन्धकार माधव प्रसाद मिश्र ने भी रामकृष्ण के जीवन चरित पर अपनी लेखनी चलायी । इन्होने अपने निबन्ध सग्रह 'माधव मिश्र निबन्धमाला', भाग - एक मे " परमहस श्री रामकृष्ण देव का जीवन चरित" नाम से निबन्ध लिखकर इनकी धार्मिक भावनाओ का विश्लेषण किया है । निबन्ध के आरम्भ में ये लिखते हैं कि "अच्छे लोगो के चरित्र पढने और सुनने से जैसे उन्नति के साधनों का ज्ञान होता है वैसे ही अधोगति से बचने का

१- सरस्वती वर्ष १९०३ अक - फरवरी - मार्च पृ० ४८
२ वही पृ० ४९

अवसर मिलता है। इसलिए महाभारत में लिखा है कि पुराण और महात्माओ के चरित्र नित्य सुनने चाहिए। इस क्रम में हम वग देश के उस प्रसिद्ध महात्मा का जीवन चरित निज मातृभाषा में सक्षेप में लिखते हैं, जिसके निर्मल यश से न केवल देशवासियों का ही चित्त आकृष्ट हुआ है वरन योरोप अमेरिका के विदेशी सज्जनो का मन मोहित हो रहा है। इन विश्वविख्यात महापुरुष का नाम परमहस रामकृष्ण देव है।[1]

उपर्युक्त निबन्ध मे माधव मिश्र ने रामकृष्ण देव की विशिष्टताओ का - जन्मभूमि, माता-पिता, कुलदेवता, बाल्यकाल, लिखना-पढना, दक्षिणेश्वर, विवाह, काली देवी की पूजा, उन्मत्त की तरह, सन्यास ग्रहण, योग सिद्धि,एक विदुषी ब्राह्मणी,बाबू मथुरानाथ और पीडा शीर्षक से प्रेरणास्पद एव हृदयग्राही वर्णन किया है। रामकृष्ण देव के धर्म की तात्विक व्याख्या करते हए माधव मिश्र लिखते हैं - "अभिमान वा अकार ईश्वर के मार्ग मे बडा कटक है। रामकृष्ण ने इसके दूर करने का पथम यत्न किया। वह काली से कहने लगे कि 'मॉ। मेरा अहकार नष्ट कर दो मै दीन से दीन और हीन से हीन हूँ। यही मेरी समझ रहे, क्या शूद क्या चाण्डाल सब मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, यह ज्ञान मुझे सर्वदा रहे।' वे अपने अहकार को निवृत्त करने के लिए केवल प्रार्थना ही नहीं करते थे, वरन उन बातों को भी करते थे जिनके करने में एक ब्राह्मण को तो क्या, शूद्र को भी सकोच उपास्थित हो। उनका तिरस्कार करने पर भी इससे उनके भाव में कुछ अन्तर नहीं होता। कोई कहता यह पागल हो गया और कोई समझता इसमें भूत आ गया और कोई कहने लगता कि यह सस्कार भ्रष्ट है। इससे इनके निकट बन्धुओ का उपदेश, शत्रुओ का उपहास टिकने नहीं पाती थी। वे अपने कार्य को जब तक पूरा नही लेते थे तब तक उसी दत्तचित्त रहते।"[2]

रामकृष्ण देव के ईश्वर विषयक दृष्टि का वर्णन करते हुए माधव मिश्र लिखते है कि -"उन्होने कामिनी काचन के त्याग में मन लगाया। वे ईश्वर की शक्ति को माया कहते हैं। इस माया ही से जगत की सृष्टि हुई है। माता महामाया ही का स्वरूप सब स्त्रियॉ है इसलिये जगत की समस्त स्त्रियॉ हमारी माता हैं। उस दिन से सभी स्त्रियो में उनका मातृभाव हो गया।"[3]

१- माधव मिश्र निबन्धमाला - १ पृ० २४३
२ वही पृ० २४९
४ वही

रामकृष्ण देव की सरलता पवित्रता और दिव्यता का वर्णन सरदार पूर्ण सिह 'पवित्रता' निबन्ध के द्वारा करते हुये लिखते हैं - " कलकत्ते के पास एक निरक्षर नगा काली भक्त है। काली भक्त क्या ? ब्रह्मकान्ति का देखने वाला फकीर है। इसके नेत्र और इसका सिर, मेरे तेरे नेत्रो और सिरो से भिन्न है। किसी और धातु के बने हुये हैं। मामूली साधू नहीं, जो छू-छू करते फिरते हैं। एक कोई स्त्री आयी। आप चीख कर उठे। माता कहकर सिर उसके चरणो मे रख दिया। मेरी तेरी निगाहों मे यह कचनी ही थी। पर रामकृष्ण की तौ जगत् माता निकली। देखकर मेरी ऑखे फूट गयी। और मैने भी दौडकर उनके चरणो में शीश रख दिया। तब उठाया जब आज्ञा हुयी। दरिद्रों! क्या तुम दे रहे हो ? मेरे सामने परमहस ने कुल विराट् इस माता के चरणो मे लाकर रख दिया ? नेत्र खोल दिये। अहिल्या की तरह अपना साधारण शरीर छोडकर यह देवी आकाश मे उड गयी ? कहोगे - "पूर्ण" तो मूर्तिपूजक हो गया, कुछ भी कहो - मेरे मन की कोठरी ऐसी ऐसी मूर्तियो से भरी है। इस बुतपरस्ती से पवित्रता मिलने के भाग खुलते हैं पवित्रता को अनुभव कर ब्रह्मकान्ति का दर्शन होता है।"[१]

द्विवेदी युग के प्रमुख रचनाकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने सूर्य कुमारी ग्रन्थ माला के अन्तर्गत 'विवेकानन्द' के चरित्र व उपदेश को 'विवेकानन्द ग्रन्थावली' नाम से सकलित किया है।[२] इस प्रकार युग के प्रमुख निबन्धकारो पर विवेकानन्द का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दी गद्य विधा के सशक्त हस्ताक्षर कालजयी रचनाकार प्रेमचन्द की लेखनी भी रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रही। अपने निबन्ध पुस्तक 'कलम, तलवार और त्याग' में स्वामी विवेकानन्द शीर्षक निबन्ध में विवेकानन्द के धार्मिक ओज एव प्रवाह का मूर्तिमान चित्रण किया है। वे लिखते है -" कृष्ण भगवान ने गीता मे कहा है कि जब धर्म का ह्रास और पाप की प्रबलता होती है तब - तब मै मानव जाति के कल्याण के लिए अवतार लिया करता हूॅ। इस नाशवान जगत में सर्वत्र सामान्यत और भारतवर्ष मे विशेषत जब कभी पाप की वृद्धि या और किसी कारण (समाज के) सस्कार या नवनिर्माण की आवश्यकता हुई तो ऐसे सच्चे सुधारक और पथ - प्रदर्शक प्रकट हुए हैं जिनके आत्मबल ने सामाजिक परिस्थिति पर विजय प्राप्त

---

१ सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध - सम्पादक - प्रभात शास्त्री, पृ० १०२

२ प्रकाशक - काशी नागरी प्रचारिणी सभा - सवत् १९७८

की ।   ऐसे समय पुनीत भारत भूमि मे पुन एक महापुरूष का आविर्भाव हुआ जिसके हृदय मे आध्यात्मभाव का सागर लहरा रहा था, जिसके विचार ऊँचे और दृष्टि दूरगामिनी थी, जिसका हृदय मानव प्रेम से ओत-प्रोत था । उसकी सच्चाई भरी ललकार मे क्षण भर मे जडवादी ससार मे हलचल मचा दी । उसने नास्तिक्य के गढ में घुसकर साबित कर दिया कि तुम जिसे प्रकाश समझ रहे हो वास्तव में वह अन्धकार है और यह सभ्यता जिस पर तुमको इतना गर्व है, सच्ची सभ्यता नहीं है । इस सच्चे विश्वास के बल से भरे हुए भाषण ने भारत पर जादू का असर किया और जडवाद के प्रखर प्रवाह ने अपने सामने ऐसी ऊँची दीवार खडी पाई जिसकी जड को हिलाना या जिसके ऊपर से निकल जाना उनके लिये असाध्य कार्य था । आज अपनी समाज व्यवस्था, अपने वेदशास्त्र, अपने रीति व्यवहार, और अपने धर्म को हम आदर की दृष्टि से देखते हैं । यह उसी पूतात्मा के उपदेशों का सुफल है कि हम अपने प्राचीन आदर्शो की पूजा करने को प्रस्तुत हैं, और यूरोप के वीर पुरुष और योद्धा, विद्वान और दार्शनिक हमे अपने पण्डितो, मनीषियों के सामने निरे बच्चे मालूम होते हैं । आज हम किसी बात को, चाहे वह धर्म और समाज व्यवस्था से सम्बन्ध रखती हो या ज्ञान - विज्ञान से, केवल इसलिये मान लेने को तैयार नहीं हैं कि यूरोप मे उसका चलन है । किन्तु उसके लिए हम धर्मग्रन्थो और पुरातन पूर्वजो का मत जानने का यत्न करते और उनके निर्णय को सर्वोत्तम मानते हैं । और यह सब ब्रह्मलीन स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक उपदेशों का ही चमत्कार है। ''[१]

विवेकानन्द की धार्मिक विशिष्टता एव धर्म के सिद्धान्तों की विवेचना करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं -'' हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष सिद्धान्त को मानना या कुछ विशेष विधानों का पालन करना नहीं है । हिन्दू का हृदय शब्दों और सिद्धान्तो से तृप्ति लाभ नहीं कर सकता । अगर कोई ऐसा लोक है जो हमारी स्थूल दृष्टि के अगोचर है तो हिन्दू उस दुनिया की सैर करना चाहता है । अगर कोई ऐसी सत्ता है जो भौतिक नहीं है, कोई ऐसी सत्ता है जो न्याय रूप, दया रूप और सर्वशक्तिमान है तो हिन्दू उसे अपनी अन्तर्दृष्टि से देखना चाहता है । उसके सशय सभी छिन्न-भिन्न होते हैं, जब वह उन्हें देख लेता है ।''[२] इस तरह रामकृष्ण - विवेकानन्द की

---

१ कलम, तलवार और त्याग - प्रेम चन्द्र पृ० १०८

२ वही पृ० ११५

धार्मिक भावधारा का प्रभाव द्विवेदी युग के गद्य - शिल्पी साहित्यकार प्रेमचन्द्र पर प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है ।

थोडे किन्तु भावपूर्ण सशक्त निबन्धो की रचना से साहित्य जगत मे स्थापित सरदारपूर्ण सिह 'अध्यापक' द्वारा सम्पादित मासिक पत्र 'प्रभा' मे भी रामकृष्ण विवेकानन्द की धार्मिक भावधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है । इस पत्र मे रामकृष्ण देव का चित्र छापते हुए उनके धार्मिक विचार धारा का वर्णन करते हुए लिखा गया है - "इस महात्मा से भारत वर्ष अन्तरगता से परिचित है । इन्हीं की कृपा के एक कण स्वनाम धन्य श्री स्वामी विवेकानन्द थे । जिन्होंने नयी दुनिया मे भारतवर्ष की धर्मध्वजा फहरा कर धर्म की कवायद से घबडाये हुए पश्चिम को अनुकूल मार्ग दिखाया, इन्हीं के वाक्यो मे वह शक्ति थी जो मानव जीवन को पलट ही नही सकती थी प्रत्युत उसे एक महापुरुष का स्वरूप दे सकती थी ।"[१]

इसी पत्र मे अन्यत्र स्वामी विवेकानन्द का चित्र छापते हुए उनके धार्मिक अवदेय को इस तरह से दर्शाया गया है - " जिसने भारतीय धर्म ध्वजा को पश्चिमी सभ्य देशो में तथा पाताल तक मे फहरायी, जिसने स्वामी रामकृष्ण के उपदेशो का रूप बनकर अपने गुरू की गौरव दुन्दुभी बजायी जिसने भारतीय धर्म के तत्व, भूले हुए भारतीयो को समझाई । भरतीय धर्म के इस भगीरथ ने धर्म की भागीरथी के प्रवाह को ससार मे बहाकर अपने को पवित्र कर डाला । जिसने धर्म के बगीचे मे बढे हुए विषैले वृक्षो को उखाड फेका और अव्यवस्थित रूप से बढे हुए वृक्षो की शाखाओ की कलम करके भारतीय धर्मोद्यान को सुशोभित करने के हेतु प्रयत्न किया उस भारतीय, रामकृष्ण के एक मात्र भक्त और देवी निवोदिता के गुरू कार्यविजयी श्री स्वामी विवेकानन्द को कौन नहीं जानता । भारत के वासियों! इस वीर को प्रेम पूर्वक प्रणाम करो।"[२]

विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवोदिता के धार्मिक विचारों का द्विवेदी युग के निबन्धों मे वर्णन हुआ है एव इनके सेवा - भाव व धार्मिक क्रिया - कलापो की खुले मन से प्रसशा की गयी है । प्रभा पत्र में भगिनी निवोदिता का चित्र छापते हुए लिखा गया है -" यह परोकारिणी

---

१ प्रभा, १९१४, अक - जनवरी पृ० ६४०
२ वही - १९१३ अक - दिसम्बर पृ० ५८४

देवी इग्लैण्ड में पैदा हुई थी परन्तु इसने अपना शरीर भारतवर्ष को समर्पित कर दिया था एव धर्म हेतु अपना शरीर चढा दिया था हमारा हृदय निवोदिता को श्रद्धा की दृष्टि से देखेगा।''[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के प्रमुख पत्रो एव निबन्धो मे रामकृष्ण देव, स्वामी विवेकानन्द, भागिनी निवोदिता के चित्र छाप कर इनके जीवन एव इनकी भावधारा पर प्रकाश डाला गया है। यहॉ हम द्विवेदी युग के निबन्धो पर रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा के धार्मिक विचारो का प्रत्यक्ष एव स्पष्ट प्रभाव देख सकते हैं । प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ-साथ उक्त भावधारा का द्विवेदी युग के निबन्धों मे परोक्ष रूप से भी व्यापक प्रभाव पडा है । 'ईश्वर का वर्तमान होना', 'हम मूर्ति पजूक हैं', 'श्रुति रहस्य', 'ईसू खीष्ट और ईश - कृष्ण' जैसे निबन्धो में इनकी धर्म सम्बन्धी विचारधारा देखी जा सकती है ।

द्विवेदी युग के निबन्धों को देखने से ज्ञात होता है कि लेखकों का उदेश्य किसी विशेष धर्म का प्रचार न होकर पाठक वर्ग को धर्म के वास्तविक तथा मूल अर्थ को समझाना ही रहा है । 'मिश्रबन्धु', 'हिन्दूधर्म',निबन्ध में लिखते हैं- '' आजकल हमारे यहॉ पठित समाज तक में स्वधर्म विषयक तत्वों और रहस्यो का ऐसा घोर अज्ञान फैला हुआ है कि हम जैसे अल्पज्ञो को भी उसके विषय मे कुछ कहने का साहस हुआ । एक बार लीडर पत्र ने हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धान्तो के विषय में पडित समाज का मत मॉगा था । उसके उत्तर में प्राय बीस महाशयो ने छोटे-छोटे लेख भेजे, जो उक्त पत्रकार ने पुस्तकाकार छापे। उसके देखने से विदित होता है कि हिन्दुओं मे ही अपने धार्मिक सिद्धान्तो एव मुख्यताओं के विषय मे बडा मतभेद है।''[२]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन साहित्यकार धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो पर ही प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं । वह धर्म के वाह्य आडम्बर मे न तो स्वय फॅसना चाहता है और न पाठक को उसमें फॅसा हुआ देखना चाहता है । इस युग की धार्मिक भावना का दूसरा रूप विभिन्न धर्मो के समन्वय के रूप में परिलक्षित होता है जो रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से पूर्णतया अनुप्राणित है । इस युग के निबन्धकारो ने राष्ट्र तथा जनता के हित के लिए विभिन्न सम्प्रदायों में सामजस्य स्थापित करना आवश्यक समझा, क्यों कि उन्हें यह बोध था कि

---

१ प्रभा वर्ष - १९१३ अक - दिसम्बर पृ० ५८४

२ सुमनाजलि - १ पृ० ५५

यदि भारतीय इस समय मत मतान्तरों के झगडो मे फॅस गये तो उनकी उन्नति के मार्ग में बाधा पडेगी और उनके विकास की गति कुण्ठित हो जायेगी । पण्डित पद्मसिह शर्मा इसी भावना से प्रेरित हो कर लिखते है,-"सनातनी भाइयों! तुम्हारी दृष्टि में स्वामी दयानन्द ने कोई भूल की हो तो उसे भूल जाओ और उनके उपकारो को याद करो। धर्म जाति और देश की रक्षा के लिए जो मार्ग उन्होने सुझाये हैं, कृतज्ञता पूर्वक उनमें से अपने अनुकूल उपादेय अशो को अपनाओं, ऑखे खोलो और समय को देखो। मेल मे मुक्ति और विरोध में विनाश है, इससे बचो और उसकी ओर बढो ।"[१]

रामकृष्ण देव की भावधारा से अनुप्राणित होकर द्विवेदी युगीन निबन्धकार यह समझ गये थे कि समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्तों में कोई विशेष अन्तर नहीं है इसलिए उनके निबन्धो मे ससार के अन्य धर्मों से द्वेष अथवा घृणा का भाव देखने को नहीं मिलता परन्तु विवेकानन्द की तरह अन्य धर्मों से हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने की भावना अवश्य देखने को मिलती है। हिन्दू धर्म को अन्य धर्मों की अपेक्षा उच्च आसन प्रदान करने की भावना से युक्त होकर 'पाश्चात्य देशों को हिन्दू धर्म का सन्देश',[२] 'स्वामी विवेकानन्द और आधुनिक ससार',[३] 'बाइबिल मे वेदान्त शिक्षा',[४] आदि निबन्धो की रचना हुई ।

इस युग के धर्म विषयक निबन्धों से यह ज्ञात होता है कि उसमें धर्म के तत्वों की गूढ व्याख्या न कर, सरल तथा सीधी व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है । इससे यह ज्ञात होता है कि इस समय के साहित्यकारों की रुचि धर्म के सरलीकरण की ओर अधिक थी। इस परिप्रेक्ष्य मे यह द्रष्टव्य है कि रामकृष्ण देव कहा करते थे कि बगीचे मे पेड के मीठे फल खाने से प्रयोजन होना चाहिए न कि पेड में कितने पत्ते हैं यह गिनने में । धर्म के गूढ तत्वों के जाल में उलझने से बचने के लिए वे इस दृष्टान्त से समझाया करते थे कि - यदि दो पैसे की मदिरा पीने से ही नशा हो जाता है तो मदिरालय मे और कितनी मदिरा है, इससे जानने से क्या लाभ है । उनकी इस भावधारा के प्रभाव से द्विवेदी युग के निबन्धकार भी प्रभावित हो, इसका अनुकरण करते दीखते हैं ।

द्विवेदी युग के निबन्धकार धर्म की सकीर्णताओ को त्याग कर उसके व्यापक रूप

---

१ पद्मपुराण, पृ० २२
२ मर्यादा - राधाकमल, वर्ष १९१७ अक जुलाई
३ सरस्वती - हर्ष देव ओली, वर्ष १९२४ अक जुलाई
४ सरस्वती - लक्ष्मीधर, वर्ष १९१३, अक दिसम्बर

को ही अपना समर्थन देते हैं। उनके विचारो के मूल में यह बात गहरे रूप मे समाहित थी कि धर्म सहयोग, समानता, प्रगति और उन्नति का विषय है, न कि दून्द्व, द्वेष, पराजय और पतन का। जैसा कि, स्वामी विवेकानन्द भी कहते थे कि धर्म के द्वारा प्रत्येक अपनी-अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करे। इन्हीं विचारो के आलोक में द्विवेदी युग के धर्म विषयक निबन्धो की रचनाएँ हुई जिनमे 'हिन्दुत्व तथा हिन्दू धर्म,'[१] ''एशिया की धार्मिक एकता''[२] ''यूनानी राजदूत और वैष्णव धर्म[३] 'धर्म'[४] 'धर्म की परिवर्तनशीलता'[५] आदि प्रमुख हैं।

विवेकानन्द धर्म की जडता, सकीर्णता एव रूढिवादिता का मुखर विरोध करते थे। वे धर्म के अनेक औचित्यहीन वाह्य रूपो को सिर्फ इस आधार पर ढोते रहने का विरोध करते थे कि वे हमारे पूर्वजो द्वारा दीर्घकाल से व्यवहृत होती आ रही हैं। धर्म की यह व्यापक व्याख्या द्विवेदी युगीन निबन्धो में पूर्णरूपेण व्यक्त हुई है। इस युग के निबन्धो में काल और परिस्थिति के अनुसार धर्म के स्वरूप मे परिवर्तन कर लने की ओर भी सकेत मिलता है। इनमें शास्त्रानुमोदित उपयोगी प्रथाओ को अपनाने तथा बुढिया पुराण के कारण प्रचालित कुरीतियों के त्याग करने के लिये उचित उपदेश भी है। जिस प्रकार विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म का विरोध करने पर पश्चिमी जगत को धिक्कारा था उसी प्रकार पश्चिमी विद्वानो के इस आक्षेप का कि '' हिन्दू धर्म मृत रीतियों का धर्म है',- द्विवेदी युग के निबन्धकारो ने मुँहतोड उत्तर देने का प्रयत्न किया है।

(ब) राष्ट्रीय प्रभाव

विवेकानन्द की विचाराधारा मे देश प्रेम, राष्ट्रीय गौरव एव राष्ट्र उद्धार का स्वर स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने एव विदेश भ्रमण करने के बाद भी, साथ ही एक सन्यासी होते हुए भी जैसा उत्कट देश - प्रेम विवेकानन्द में देखा जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अमेरिका के शिकागो धर्म सम्मेलन में जाते समय विवेकानन्द के मन में देश से बिछुडने

१ सरस्वती - भाई परमानन्द वर्ष - १९२४ अक - जुलाई
२ वही, - सत्य देव वर्ष - १९२२ अक - नवम्बर
३ मर्यादा - गौरी शकर हीरा चन्द ओझा, वर्ष - १९१० अक - दिसम्बर
४ इन्दु - रूप नारायण पाण्डेय वर्ष - १९१५ अक - जनवरी
५ प्रभा - शीतला सहाय, वर्ष - १९२० अक - अक्टूबर

की जो असह्य पीडा थी उसे सहज ही समझा जा सकता है। भारत देश को वे एक निर्जीव तत्व के रूप में नहीं अपितु साकार देवी के रूप में देखते थे । धर्म में प्रतिष्ठित होने के बाद भी देश को गुलामी की जजीरों से मुक्त करने के लिए देशवासियो का आह्वान करते हैं - ''अगले पचास वर्षो के लिए सभी देवी देवताओं को विसार्जित कर दो, तब तक तुम्हारी देवी भारतमाता हैं । तुम इन्हीं की मुक्ति की आराधना करो ।'' उक्त कथन के आलोक मे विवेकानन्द के राष्ट्रप्रेम को देखा जा सकता है ।

मूलत एक सन्यासी होने के कारण और अपने को धर्म और समाज तक केन्द्रित रखने के कारण विवेकानन्द ने प्रत्यक्षत राजनीति में कोई सहयोग नहीं दिया किन्तु परोक्ष रूप से राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने वाले सभी राजनेता और क्रान्तिकारी इनकी राष्ट्रीय भावधारा से ओत-प्रोत रहे । सुभाष, गॉधी, नेहरू तथा टैगोर प्रभृति राजनेता विवेकानन्द से प्रत्यक्षत प्रभावित रहे । महात्मा गॉधी ने इस सम्बन्ध मे कहा कि ''विवेकानन्द को पढकर मेरा देश प्रेम बढा है । '' इसी सम्बन्ध मे रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते है,''देश को समझना है तो विवेकानन्द को पढो ।''

भारत के राजनीतिक आन्दोंलन का द्विवेदी युगीन साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव पडा तथा विवेकानन्द के राष्ट्रीय चिन्तन को द्विवेदी युग मे नया आयम दिया गया । जो कार्य भारतीय नेताओ की वाणी से न हो सका, उसे विवेकानन्द जैसे राष्ट्रवादी ने अपने विचारो से कर दिखाया । उनके राष्ट्रीय विचारो को साधारण जनता तक पहुँचाने का सबसे अधिक श्रेय साहित्यकारो को ही दिया जा सकता है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले, भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना देखने को नही मिलती । आधुनिक युग में साहित्यिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय भावना के मत्र का सर्व प्रथम उच्चारण करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहे जाते हैं । 'भारतवर्ष के सुधार का क्या उपाय है', 'इग्लैण्ड और भारतवर्ष' आदि निबन्धों में उनकी राष्ट्रीय भावना देखने को मिलती है । द्विवेदी युग के आने के समय तक राजनीतिक चेतना ने क्रियात्मक रूप धारण कर लिया था । राजभक्ति को राज विद्रोह की कोटि में गिना जाने लगा था । अतएव इस युग में परम्परा से चली आने वाली सुधार और आलोचना की प्रवृत्ति को प्रश्रय तो मिला ही, साथ ही विवेकानन्द जैसे नेताओं के वैचारिक प्रभाव के

कारण राष्ट्रभक्ति एव स्वराज्य प्राप्ति के लिये जनता को उत्तेजित करने की भावना भी देखने को मिलती है। इस राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर विद्वानों ने समाज को यदि भारत की तत्कालीन दुरवस्था पर क्षोभ प्रदर्शित करने के लिए बाध्य किया तो दूसरी ओर अतीत की भव्यता पर गर्व करना चाहिए, इसकी ओर सकेत किया। राष्ट्र के नवनिर्माण के सम्बन्ध में अतीत एव इतिहास के महत्व को रेखाकित करते हुए विवकानन्द कहते है, "जिस राष्ट्र का कोई अपना इतिहास नहीं है, वह इस ससार मे अत्यन्त हीन और नगण्य है।" राष्ट्रीय चेतना मे अतीत गौरव का यह भाव द्विवेदी युग के निबन्धों मे देखने को मिलता है।

जनता में आत्मविश्वास तथा आत्म सम्मान की भावना को प्रतिष्ठित करने के लिए द्विवेदी युग के निबन्धोकारो ने जनमानस को उसके भव्य अतीत से परिचित कराया। भारत सरकार द्वारा स्थापित प्राचीन शोध और अन्वेषण विभाग की खोजों ने भारतीय सस्कृति एव उसके साहित्य पर नया प्रकाश डाला। समाज के पढे - लिखे लोगों का ध्यान अपने प्राचीन बैभव तथा सस्कृति की ओर आकर्षित होने लगा। निबन्धकारों ने अतीत के गौरव को व्यक्त करने के लिए 'प्राचीन भारत की एक झलक',[१] 'भारतीय पुरातन राजनीति',[२] 'प्राचीन शासन पद्धति और राजा',[३] सम्राट अशोक का राज्य शासन',[४] 'तुलसीदास के राजनैतिक विचार',[५] आदि निबन्धों मे भारत के अतीत गौरव की ओर सकेत किया तथा भारत की प्राचीन राजनीति व्यवस्था पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया।

इसके अतिरिक्त 'इतिहास का महत्व'[६], 'सच्चे ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता'[७], 'इतिहास क्या है ?'[८] आदि निबन्धों मे भारत की प्राचीन व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले इतिहास को महत्व दिया गया है 'भारतीय स्कूलो में इतिहास की शिक्षा'[९] निबन्ध में यह स्पष्ट रूप से

१	सरस्वती - महावीर प्रसाद द्विवेदी	वर्ष - १९११	अक - मार्च
२	वही - गोविन्द राय परवार	वर्ष - १९१८ -१९	
३	इन्दु - शिवदास गुप्त	वर्ष - १९१४	अक - दिसम्बर
४	इन्दु - गगा शकर मिश्र	वर्ष - १९१४	अक - अगस्त
५	सरस्वती - एक रामायणी	वर्ष - १९०८	अक - फरवरी
६	मर्यादा - परशुराम मिरोत्रा	वर्ष - १९१९	अक - मई
७	मर्यादा - सम्पूर्णानन्द	वर्ष - १९१९	अक - अक्टूबर
८	सरस्वती - जनार्दन भट्ट	वर्ष - १९१३	अक - जनवरी
९	सरस्वती - सन्तराम बी० ए०	वर्ष - १९१६	

प्रतिपादित किया गया है कि इतिहास की शिक्षा से ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ आत्म सम्मान की भावना भी पुष्ट होती है। आचार्य द्विवेदी ने भारत के प्राचीन गौरव सम्बनधी अनेक निबन्ध लिखे हैं, भारत की प्राचीन सभ्यता से उनका विशेष मोह था। 'भारत के प्राचीन नरेशो की दिनचर्या',[१] भारतवर्ष की सम्यता की प्राचीनता',[२] 'प्राचीन भारत में लोक सत्तात्मक राज्य',[३] 'प्राचीन भारत मे युवराजों की शिक्षा',[४] 'सोमनाथ के मन्दिर की प्राचीनता'[५] 'भारत की प्राचीन शिक्षा का आदर्श',[६] आदि निबन्धो मे भारत के अतीत गौरव पर प्रकाश डालने प्रयत्न किया गया है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाॅ राजनीति धर्म का ही एक अग मानी जाती है। अतएव द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना का दूसरा रूप मातृभूमि के दैवीकरण में देखने को मिलता है। ऐसा स्वामी विवेकानन्द की भावधारा के प्रभाव के कारण है। स्वामी जी देश को जागृत देवी के रूप मे देखते थे। 'मातृभूमि की पूजा'[७] निबन्ध मे लेखक ने मातृभूमि और भगवान को एक रूप मे देखने का प्रयत्न किया है। भारत मे वे ईश्वरीय राज्य स्थापित करना चाहते थे। जिसमें राजनीति की दीवाल धर्म की नीव पर खडी की गयी हो।[८] धर्म को हमारे यहाॅ बहुत ही व्यापक अर्थ मे लिया गया है। इस युग मे कुछ ऐसे भी विद्वान हुए हैं जो धर्म और राजनीति की उन्नति तो चाहते थे परन्तु धर्म की अपेक्षा राजनीति को अधिक महत्व देते थे। परलोक सुधारने के लिए वर्तमान - इस लोक को पहले सुधार लेने को कहते थे। इस सम्बन्ध मे सत्यदेव परिब्राजक लिखते है कि "राजनीति व्यावहारिक धर्म है, वह धर्म जो बातूनी नहीं है, जहाॅ पूरी फिलासफी न चले, जिसमे पडने से खरे खोटे की पहचान हो जाती है। राजनीति इस लोक की बादशाहत की मशीनरी है। जिसको अपना परलोक, अपना भविष्य सुधारना हो, उसे अपना यह लोक - अपना वर्तमान पहले सुधार लेना चाहिए।"[९]

राष्ट्रीय चेतना से युक्त होकर जन्मभूमि की सुषमा के गान के साथ-साथ देश हित के लिए त्याग और सहानुभूति का पाठ पढाया जाने लगा। आत्म निर्भरता को अत्यधिक महत्व दिया

१-६	विचार विमर्श में सगृहीत		
७	मर्यादा - कन्हैया लाल पोद्दार	वर्ष - १९११	अक - जनवरी
८	सरस्वती - धर्म और राजनीति - हर्ष देव ओली	वर्ष - १९२३	अक - जनवरी
९	वही - धर्म और राजनीति - सत्यदेव परिब्राजक	वर्ष - १९२३	अक - मार्च

जाने लगा । आत्म गौरव, आत्म विश्वास उत्पन्न करने के लिए तथा जनता को उद्योगशील बनने का भी उपदेश दिया जाता रहा "हमारी सभ्यता हमको उपदेश कर रही है कि हम ससार के किसी भी देश जाति से कम नहीं हैं। यदि इस समय हमारी जाति जगत की दौड में पीछे है तो अब उद्योग करने से अवश्य वह साथ हो जायेगी । देशवासियों। अपने पूर्वजो के चरित्रो पर अभिमान कीजिए और राष्ट्रदेवी के सच्चे उपासक बन कर धर्मपूर्वक जननी जन्मभूमि के गौरवार्थ राष्ट्रीयता स्थापन करने का दृढ सकल्प कर लीजिए । परमेश्वर हमारी सहायता करेगा । ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वय अपनी सहाता करते है ।"[१]

स्वामी विवेकानन्द जनमानस के मध्य किसी भी स्तर पर विखण्डन एव विभेद को स्वीकार नहीं करते थे । वे सम्पूर्ण भारतवासियों को एक सूत्र मे आवद्ध देखना चाहते थे । उनकी इस राष्ट्रीय एकता की भावना से प्रेरणा प्राप्त कर भारत के राष्ट्रीय नेता भी सभी को सगठित करने का प्रयास कर रहे थे । द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने इस भावना को अपने निबन्धो में पर्याप्त प्रश्रय दिया । इस सम्बन्ध में बाबादीन शुक्ल लिखते हैं - " बडे-बडे उपदेशक, महोपदेशक गला फाड-फाड कर चिल्लाते हैं और हमारी उन्नति विषय की वक्तृता सुनाते हैं, परन्तु हम अपनी उन्नति क्यो नहीं कर सकते ? हमारी उन्नति के मार्ग का अवरोधक कौन सा पदार्थ है ? विचारने पर, मनन करने पर हमें यही प्रतीत होता है कि चाहे जो कुछ हो, किन्तु जब तक परस्पर एकता का सगठन न होगा तब तक सुधार का होना दुस्तर ही नहीं किन्तु असम्भव है"[२]

वर्षो से दबे कुचले भारतीय जन मानस में विवेकानन्द और अन्य राष्ट्रीय नेताओ के कारण राष्ट्रीय भावना का विकास होने लगा था । विवेकानन्द कहते थे कि दास व्यक्ति की कोई आत्मा नहीं होती, विकास की पहली शर्त स्वाधीनता है । इन बातों का द्विवेदी युगीन साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अब भारतवासी शासक वर्ग के अनुचित कार्यो का विरोध मुखर स्वर में करने लगें । 'आधुनिक शासन प्रणाली' निबन्ध में इस भावना को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है - " यह नही भावना (राष्ट्रीय भावना) चाहे आवेग पूर्ण हो परन्तु यह वास्तविक और देश भक्ति सम्पन्न है। यदि उसके साथ सहानुभूति का वर्ताव किया गया तो यह उपयुक्त मार्ग पर लगाई

---

१ मर्यादा - स्वराज की मॉग और भारतीय सभ्यता - बाला प्रसाद शर्मा - १३ सख्या - ४ पृ० १७१

२ इन्दु- ऐक्यता - बाबादीन शुक्ल - किरण - ७ माघ स० - १९६६ वि० पृ० १०८

जा सकती है। परन्तु इसकी उपेक्षा करना या इसे दबाना निर्बुद्धिता होगी । पुराने विचार बडी शीघ्रता से बदल रहे हैं और यह भारतवासियों का दोष नहीं है कि वे पितृ तुल्य शासन प्रणाली को अब स्वीकार नहीं करते ।''[१]

जनमानस मे भारतीय मनीषियो (विवेकानन्द आदि) के ओजपूर्ण क्रान्तिकारी विचारो के कारण राष्ट्र प्रेम एव राजनीतिक जागृति की भावना हिलोंरे लेने लगी । अज्ञानता एव मोह का आवरण उनके आलोक में धीरे-धीरे ऑखो के सामने से हटता जा रहा था । उनमें देश-सेवा का भी बीज अकुरित होने लगा । जनता के इस वैचारिक परिवर्तन से युग - द्रष्टा विवेकानन्द के विचार मूर्त रूप लेने लगी । राष्ट्रीय जागरण एव चेतना के सम्बन्ध में वे कहते हैं -'' यदि मै अपने देशवासियो को जडता के कूप से निकालकर मनुष्य बना सका, यदि उन्हें कर्मयोग के आदर्श में अनुप्राणित कर जगा सका तो मै हॅसते हुए हजारों बार नर्क में जाने को तैयार हूॅ ।'' द्विवेदी युगीन निबन्धो में इसी भाव का प्रभाव इस उदाहरण के द्वारा देखा जा सकता है -'' भारतवर्ष की अज्ञानता धीरे-धीरे दूर होकर अब भारतवासी मोह निद्रा से जगने लगे हैं । उनकी ऑखो के सामने अज्ञान,तम का पर्दा क्रमश हटता जा रहा है, भविष्य के लिये ये लक्षण शुभ सूचक हैं । भारतवासियों मे स्वार्थपरता का भाव भी कम होता जा रहा है । शिक्षित भारतीय अपने को किसी खास समाज का व्यक्ति न समझ कर सम्पूर्ण देश का आवश्यकीय अग समझता है ।''[२]

धीरे-धीरे यह चेतना भारतीयों के हृदय में गहरी होती चली गयी। स्वराज्य प्राप्त की अत्यन्त उत्कट अभिलाषा उन्हे बडे से बडा बलिदान करने में पीछे मुडकर देखने अथवा सोचने विचारने का अवसर देना भी उपयुक्त नहीं समझती थी । जनता की बाहुओं में बल, हृदय मे उत्साह, आत्मा मे ओज प्रवाहित होने लगा था । इसे इस अवतरण के माध्यम से समझा जा सकता है - '' आज हम भी स्वराज्य के लिए उत्सुक हो रहे हैं । कुछ दिन पहले तो हमारा प्रयत्न मौखिक था पर अब हम इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं । कल जहॉ हम प्रस्तावों पर करतल ध्वनि करने मे ही अपने कर्तव्यो की इति श्री समझते थे अब आत्मसमर्पण, त्याग, सेवा भाव ने हमारे तमोव्याप्त जीवन को ज्योतिर्मय बनाना आरम्भ कर दिया । अब हमारे मुख मण्डल पर तन्द्रा के स्थान पर

---

१ मर्यादा वर्ष - १९१७ अक - फरवरी

२ वही - समाज सेवा - जगन्नाथ प्रसाद मिश्र - १३ सख्या - ६

जागृति के चिह्न दीख पडने लगे हैं । हमारी बाहुओ में बल, हमारे हृदयों में उत्साह, हमारी आत्माओं मे ओज, आ चला है । पराधीनता के निविड तम को चीरकर स्वातन्त्र्य का अरूणोदय हो रहा है ।''[1]

विवेकानन्द राष्ट्र के उत्थान एव राष्ट्रीय प्रगति के लिए कूप मडूकता का त्याग कर विश्व के अन्य देशों से सीख लेने के लिये प्रेरित करते रहे हैं । इस सम्बन्ध में वे जापान देश का उदाहरण देते हुए उनकी राष्ट्रीय एकता एव राष्ट्र प्रेम का कई बार वर्णन करते हुए उससे भारतीयो को सीख लेने के लिए प्रेरित करते हैं । इसी सम्बन्ध में सरस्वती पत्र में भी 'जापान की आश्चर्य जनक उन्नति' लेख में वर्णन किया गया है कि , '' एशिया के सारे देशो मे जापान ही एक ऐसा देश है जिसे यूरोप और अमेरिका वाले शक्तिशाली देश समझते हैं। केवल जापान ही के साथ पाश्चात्य देशो ने ऐसी सन्धियॉ की हैं जिसे दो बराबर की शक्तियॉ आपस में करती हैं ।''[2]

देश की अवनति और दुर्दशा के प्रति जो चिन्ता विवेकानन्द मे थी , उसे इस युग के निबन्धकारों ने व्यापक रूप प्रदान करते हुए इसके उन्नति के उपायों पर भी प्रकाश डाला है । 'भारतवर्ष की दुर्गति' नामक निबन्ध में इस सम्बन्ध मे कहा गया है - '' देश की दुर्दशा के कारण शोक करना व्यर्थ है, शोक न करके यदि देश के उद्धार का कोई उपाय दिखाई पडता हो तो उसके लिए प्रयत्न करना उचित है । भारतवर्ष दुर्गति और विपत्ति के दलदल मे फॅसा हुआ है, इसमे सन्देह नहीं है । यूरोप की जातियॉ २००० वर्ष पूर्व असभ्य और जगली कही जाती थी, वही आज महाशक्तियो की पद्वी से विभूषित हैं जिस अमेरिका को कोलम्बस ने असभ्य और अशिक्षित मनुष्यो से पूर्ण पाया था वही अमेरिका सभ्यता, स्वाधीनता, विज्ञान और उन्नति का केन्द्र बना हुआ है । इसके विरूद्ध भारत वर्ष अपनी उन्नति और स्वालम्बनशीलता को तिलाजलि देकर अवनति और अध पतन के गर्त में गिरता चला जा रहा है''[3] इस तरह विश्व के अन्य विकसित देशो से तुलना करके अपनी कमियों को पहचान कर, उसे दूर कर प्रगति तथा उन्नति का मार्ग दर्शाते हुए राष्ट्रीय स्वाभिमान जागृत करने का सद्प्रयास द्विवेदी युग के निबन्धों में प्रमुखता से

---

१ श्री शारदा - किधर - श्री सम्पूर्णानन्द वर्ष - १९२२ अक - जुलाई पृ० १९८
२ सरस्वती वर्ष - १९१४ अक - जनवरी पृ० ५
३ सरस्वती - नन्दकिशोर वर्ष - १९१४ अक - सितम्बर पृ० ५०९

देश की वर्तमान राजनैतिक स्थिति, अग्रेजों का अन्तहीन शोषण और दमन के विरोध में द्विवेदी युग में कई लेख एव निबन्धों का प्रकाशन किया गया। 'बाल मुकुन्द गुप्त' ने 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के माध्यम से इस विरोध को नयी ऊँचाई प्रदान की। इस पुस्तक में व्यग के माध्यम से तत्कालीन राजनैतिक विकृति, अग्रेजों के कुशासन, भारतीय जनता के दमन, उसकी दुरवस्था तथा उसके प्रतिरोध का जिस तरह खुलासा किया गया है, वह अभूतपूर्व है। ये चिट्ठी और खत भारत के शासक- लार्डकर्जन, लार्ड मिण्टो तथा भारत सविच मि० मार्ली के नाम लिखे गये हैं। 'लार्ड कर्जन' को सम्बोधित कर लिखे गये एक चिटठे में जनता की दयनीय दशा व शासक वर्ग के द्वारा उनकी उपेक्षा के सम्बन्ध में कहा गया है -''आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराक से भरे कामो का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मिमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली दरबार। पर जरा विचारिये तो यह दोनो काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी' ? विक्टोरिया मिमोरियल हाल चन्द पेट भरे अमीरो के एक दो बार देख आने की चीज होगा, उससे दरिद्रो का कुछ दु ख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होगे।''[१]

विवेकानन्द विदेशी आन्दोलन और विदेशी शासन पद्धतियों से भारतीयो को सीख लेने के लिये प्रेरित करते रहते थे। जापान के अभ्युदय एव राष्ट्रीयता की, उन्होने अनेक बार प्रशसा की। इसी क्रम में द्विवेदी युग के निबन्धो मे भी विदेशी आन्दोलनों का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया हैं जिसमे -'अग्रेजी प्रजा का पराक्रम'[२] ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का विकास और उसका सगठन'[३] 'फ्रास का राष्ट्र विप्लव',[४] 'टर्की की जागृति'[५] 'चीन की क्रान्ति क्यो हुयी',[६] 'फ्रास की राज्यक्रान्ति पर एक दृष्टि'[७] 'आदि प्रमुख हैं। विदेशी शासन पद्धतियों का वर्णन - 'नैपोलियन बोनापार्ट की शासन पद्धति'[८] 'फ्रास की शासन पद्धति'[९] 'अमेरिका की शासन पद्धति'[१०] दक्षिणी अफ्रीका और

१	शिव शम्भू के चिट्ठे - बाल मुकुन्द गुप्त			पृ० ११
२	सरस्वती	वर्ष -१९०८	अक - मार्च	
३	वही	वर्ष -१९१८	वही	
४	मर्यादा	वर्ष -१९१२	अक - सितम्बर - अक्टूबर	
५	वही			
६	मर्यादा	वर्ष -१९१३	अक - अगस्त	
७	साहित्य	स० -१९७९ वि०	अक - मार्ग शीर्ष	
८	सरस्वती	वर्ष -१९२२	अक - दिसम्बर	
९	वही	वर्ष -१९२४	अक - सितम्बर	
१०	वही		अक - मई	

वहॉ की शासन प्रथा[१] इग्लैण्ड की शासन पद्धति[२] तथा 'अमेरिका का प्रजातन्त्र [३] आदि निबन्धो मे किया गया है । इन निबन्धों में भारतीय जनता को विदेशी राजनीतिक पद्धतियो से परिचित कराकर, तत्कालीन भारत मे प्रचलित राजनीतिक पद्धति की तुलना के द्वारा उन्हे राष्ट्रीय उन्नति के लिये प्रेरित करने का प्रयास किया गया है ।

भारतीय राजनीति एव राष्ट्रीय भावधारा विषयक निबन्धो में अग्रेजो की नीति की कटु भर्त्सना तथा भारतीयो को स्वराज्य प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन भी दिया गया है । 'स्वराज्य की योग्यता'[४] 'स्वराज्य और भारत'[५], 'स्वाधीनता और पराधीनता'[६] 'राष्ट्रों के कर्तव्य'[७] 'राष्ट्रीय आदर्श'[८] 'क्या हम स्वतन्त्र नहीं हो सकते '[९] 'हम स्वराज क्यो चाहते है'[१०] 'स्वदेशी आन्दोलन '[११] 'भारत वर्ष मे क्रान्ति की लहर [१२]'भारत का भविष्य और वर्तमान काल'[१३] आदि निबन्धों में तत्कालीन भारत की राजनीतिक व्यवस्था और स्वराज्य प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा का व्यापक वर्णन है।। भारतीय अब स्वराज्य प्राप्ति के लिये उतरोत्तर अग्रसर होते जा रहे थे ।

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द के राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय चेतना एव स्वाधीनता की भावना का द्विवेदी युग के निबन्धकारों पर व्यापक प्रभाव पडा है। इस युग के निबधकार स्वामी विवेकानन्द के विचारों को अपनी लेखनी के द्वारा प्रसरित करते दीखते है। द्विवेदी युग के साहित्याकारों एव पत्र पत्रिकाओ के द्वारा विवेकानन्द के राष्ट्रीय चिन्तन को सकारात्मक दिशा देने का श्लाघनीय प्रयास किया गया है ।

१	मर्यादा	वर्ष - १९१३	अक - दिसम्बर
२	इन्दु	वर्ष - १९१४	अक - दिसम्बर
३	वही	वर्ष - १९१४	वही
४	मर्यादा	वर्ष - १९१६	अक - नवम्बर
५	वही - जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	वर्ष - १९१७	अक - मार्च
६	वही - नन्द लाल भगत	वर्ष - १९१२	अक - अप्रैल
७	वही - जनार्दन भट्ट	वर्ष - १९१२	अक - जुलाई
८	वही - बदरी दत्त शर्मा	वर्ष - १९१६	अक - अगस्त
९	वही - के० डी० मालवीय	वर्ष - १९१४	अक - मई
१०	वही - गोकरण नाथ मिश्र	वर्ष - १९१४	अक - अक्टूबर
११	प्रभा - एक बैठा ठाला	वर्ष - १९२०	अक - सितम्बर
१२	वही - श्रीयुत् श० ष० स०	वर्ष - १९२०	अक - अक्टूबर
१३	लक्ष्मी - दुली चन्द सिंघई	वर्ष - १९१५	अक - जून

(स) सामाजिक प्रभाव

विभिन्न धर्म, मत, जाति व विचार के लोग, जब परस्पर सहयोग का भाव रखते हुए एक दूसरे की उन्नति एव विकास में तत्पर होते हैं तो इससे समाज का निर्माण होता है। छोटे-बडे,अमीर-गरीब सभी इस समाज के महत्वपूर्ण अग होते हैं। इनकी उपेक्षा करके कोई भी समाज न तो उन्नति कर सकता है और न ही सभ्य कहा जा सकता है। समाज के दीन - दु खी एव दबे-कुचले वर्ग के प्रति रामकृष्ण देव के मन मे असीम प्रेम था। प्रत्येक जीव में ईश्वरत्व का भाव रखते हुए वे कहते थे कि - जीव ही शिव हैं, दीन- दु खी की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। इसी भाव से अनुप्राणित होकर विवेकानन्द ने भी सभी दीन-दुखियों के उत्थान का जीवन पर्यन्त प्रयास किया। मानव मात्र के प्रति उनके मन में अतिशय प्रेम एव समर्पण का भाव था। देश में अकाल और रोग आदि फैलेन पर वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति इसके निवारण में लगा देने थे। वे रोटी को धर्म से ऊपर मानते थे। उनके अनुसार भारत का प्रधान अभाव धर्म नहीं है। अपितु यहॉ रोटी का अभाव हैं। कोटि-कोटि नर-नारी की सेवा करने एव क्षुधार्थ को रोटी देने से बडा कोई धर्म नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना भी जन कल्याण को केन्द्र में रखकर किया था। इस मिशन का ध्येय वाक्य -'आत्मनोमोक्षार्थम्- जगद्धितायच' था, जिसका आशय अपनी मुक्ति के साथ जगत का कल्याण करना भी है।

दीन — दुखी

द्विवेदी युग के निबन्धों में भी अब ऐसे पात्रों को स्थान दिया गया जो शताब्दियो से उपेक्षित थे। अब साहित्य मे मध्यवर्ग व निम्न वर्ग के किसान, मजदूर एव दलितों का चित्रण होने लगा। इस युग मे अब ईश्वर को किसी मन्दिर या अवतार के रूप में न देखकर विराट रूप मे उसका दर्शन किया जाने लगा। इसी सम्बनध में 'प्रभा' पत्र में लिखा गया है - "अपनी माता के प्रति प्रेम बनाये रखना हो तो उसके पुत्रों का भला करने में लग जाओ। अपने शहर के हर एक भाग में युवक मडल स्थापित करो। ज्ञान के प्रसार करने को, अनाथ की सहायता करने को , गरीबों की सेवा करने को, श्रम सेवकों को उत्तेजित कर दो।"[१]

---

१ प्रभा वर्ष-१९१४ अक-जनवरी पृ० ५२३

किसान — मजदूर

किसान व मजदूरो के उत्थान के प्रति भी विवेकानन्द के हृदय मे उच्च भाव थे । इन्हे वे देश का मेरुदण्ड कहते थे । शान्त होकर समर्पण भाव से अहर्निश जो अपना कार्य करते रहते हैं और बदले मे भरपेट भोजन भी नही पाते, इसके लिए वे देशवासियों को धिक्कारते भी हैं । स्वामी जी का यह भाव द्विवेदी युग के निबन्धो मे व्यापक रूप से देखा जा सकता है। सरदार पूर्ण सिह अपने निबन्ध ' मजदूरी और प्रेम, मे लिखते हैं —" हल चलाने वाले और भेड चराने वाले प्राय ' स्वभाव से ही साधु होते हैं । हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं । खेत उनकी हवनशाला है ।"[१]

देश मे सबसे अधिक सख्या में रहने वाले किसानो के हित से ही देश का हित किया जा सकता है । इस सम्बन्ध मे महावीर प्रसाद द्विवेदी 'देश की बात' शीर्षक से लिखते हैं —" देश हित और देश प्रेम, स्वदेशी ओर स्वदेश- प्रेम के गीत तो बहुत गाये जाते हैं, पुस्तके लिखी जाती हैं, पर यह देश है क्या और किस की हित साधने की बात कही जाती है। यहाँ के गाँव और कस्बे, पहाड और नदियाँ, मन्दिर और मस्जिद तो देश नही है । देश का मतलब है, देश मे रहने वाले आदमी । देश मे किस तरह के आदमी सबसे अधिक रहते हैं यहाँ ७० फीसदी किसान हैं । इसलिए देशभाक्ति का मतलब है, किसानों की सेवा"[२] खेद की बात है कि - देश मे सर्वाधिक सख्या किसानों की होने के बाद भी यहाँ उनका हित सुरक्षित नहीं है, जो लगातार कठोर परिश्रम करे दूसरो का पेट तो भरता है परन्तु स्वय खाली पेट ही होता है । इस सम्बन्ध मे सरदार पूर्ण सिह लिखते हैं - " विद्या यह (किसान) नहीं पढा, जप और तप यह नही करता, सन्ध्या, बन्दनादि इसे नहीं आते, ज्ञान-ध्यान का इसे पता नहीं, मन्दिर, मस्जिर्द गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं, कवेल शाक पात खाकर वह अपनी भूख निवारण कर लेता है ।"[३]

किसानो की दयनीय दशा के सम्बन्ध मे आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी कृषि प्रधान

---

१ सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध - स० प्रभात शास्त्री पृ० १३३
२ सरस्वती वर्ष - १९१४ अक - जुलाई
३ सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध - स० प्रभात शास्त्री पृ० १३३

देश एव उर्वरा भूमि होने के बाद भी उनकी विपन्नता का वर्णन करते हुये लिखते हैं -" भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है । यहॉं की भूमि मे जितनी उर्वरा शक्ति है उतनी शक्ति बहुत ही कम देशो की भूमि मे होगी । कृषि कार्य के योग्य जितनी भूमि यहॉं है उतनी शायद ही किसी और देश मे हो, फिर भी हमारे देश के किसानों को भरपेट भोजन नहीं मिलता ।"[१]

मजदूर किसान एव निम्न वर्ग के उत्थान के बिना देश के उत्थान की बात सोचना निरर्थक हैं इस बात को ' हमारे गरीब किसान और मजदूर' लेख मे जनार्दन भट्ट सशक्त रूप से रखते है -" जब वे अपने गरीब भाइयों को उनकी सच्ची हालत बतलावेगे और उनके दारिद्रय और दु ख का सच्चा कारण उन्हें सुझावेगे, जब उन्हे उनके अधिकारों का सच्चा ज्ञान करावेगे और उन्हे बतलावेगे कि जो धन वे पैदा करते हैं कहॉं जाता है और उन्हें क्यो नहीं मिलता, तभी देश का सच्चा सुधार होगा । क्यों कि सच्चे और असली भारतवासी शहरों में, महलों और बगलों में नहीं बसते गॉंव और झोपडो में रहते हैं । जब तक उनका सुधार नहीं होता तब तक देश के सुधार की बात करना बहुत ही कम लाभदायक है ।"[२]

अन्ध विश्वास

स्वामी विवेकानन्द अन्ध विश्वासो कुरीतियो एव रूढियों को समाज के लिए अभिशाप समझते थे । वर्षों पुरानी औचित्यहीन मान्यताये जिसका कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है, उसको बेवजह परम्परा के नाम पर ढोते रहने का वे विरोध करते थे । तदयुगीन समाज में अनेक कुरीतियॉं एव भ्रान्तियॉं व्याप्त थी । विवेकानन्द ने अपने वॉणी एव कर्म दोनों के द्वारा इन कुरीतियो को दूर करने का सार्थक प्रयास किया । उन दिनो समुद्र यात्रा को पाप समझा जाता था और समुद्र यात्रा करने वाले को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था । स्वामी जी ने समुद्र यात्रा करके इस पुरानी सडी गली मान्यता को तोड डाला । उनके इस कार्य पर देश के परम्परावादियों ने खूब हो हल्ला किया । जिस पर उन्हें लताडते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा -" इन लोगों को मेरे द्वारा विदेशों मे भारतीय धर्म और वेदान्त के प्रचार का कार्य अच्छा नहीं लगा । इसीलिए तो ये मेरी समुद्र यात्रा का विरोध करते

---

१ लेखाजलि - अमेरिका में कृषि कार्य पृ० ११५
२ सरस्वती वर्ष - १९१४ अक - जून पृ० ३४०

है ।'' इसी सम्बन्ध मे द्विवेदी युग के सशक्त रचनाकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' - अपने निबन्ध 'कछुआ धर्म' में भारतीयो की रूढिवादी मानसिकता एव अधी परम्पराओं के निर्वहन करने के कार्यों का विरोध करते हुए लिखते हैं - '' बहुत वर्ष पीछे की बात हैं । समुद्र पार के देशो मे और धर्म पक्के हो चले । वे लूटते मारते तो सही, बेधर्म भी कर देते । बस, समुद्र यात्रा बन्द । कहॉ तो राम के बनाए सेतु का दर्शन करके ब्रह्म हत्या मिटती थी और कहॉ नाव मे जाने वाले द्विज का प्रायाश्चित कराकर भी सग्रह बन्द । वही कछुआ धर्म। ढाल के अन्दर बैठे रहो ।''[१] भारतीय सामाजिक परम्पराओ मे इतने रूढिवादी और अन्ध विश्वासी थे कि किसी के छूने या सम्पर्क मात्र मे आने के कारण गॉव के गॉव का धर्म नष्ट हो जाता था । पाश्चात्य यूरोपियों को चाण्डाल सदृश देखा जाता था । इसी सम्बन्ध मे एक घटना के माध्यम से इसका वर्णन करने हुए गुलेरी जी लिखते हैं -'' कुँए पर सैकडो नर-नारी नहा रहे थे और पानी भर रहे थे । एक पादरी ने कह दिया- मैने इसमे तुम्हारा अभक्ष डाल दिया है । फिर क्या था, कछुए को ढाल बल उलट दिया गया । अब वह चल नहीं सकता । किसी ने यह नहीं सोचा कि, अज्ञात पाप, 'पाप ' नहीं होता । किसी ने यह नहीं सोचा कि कुल्ले कर ले, घडे फोड दें या कै ही कर डाले । गॉव के गॉंव ईसाई हो गये और दूर-दूर के गॉंवो के कछुओं को यह खबर लगी तो बम्बई जाने मे भी प्रायश्चित कर दिया गया ।''[२]

समाज मे व्याप्त कुप्रथाओ को उससे लडकर और उसका विरोध करके दूर किया जा सकता है, न कि उससे मुह मोड कर। सामाजिक आडम्बरो एव जटिलताओं के प्रति निरपेक्ष भाव रखने वालो को, कछुआ का भाई शुतुरमुर्ग की सज्ञा देते हुए, 'कछुआ धर्म 'मे लिखा गया है ,'' यह कछुआ धर्म का भाई शुतुरमुर्ग धर्म हैं । कहते हैं कि शुतुरमुर्ग का पीछा कीजिए तो वह बालू में सिर छिपा लेता है । समझता है कि मेरी ऑंखो से पीछा करने वाला नहीं दीखता तो उसे भी मैं नहीं दीखता । लम्बा चौडा शरीर चाहे बाहर रहे, ऑंखे और सिर तो छिपा दिया । कछुए ने हॉथ, पॉव, सिर भीतर डाल लिया''[३] इस कथन के द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक दायित्वो से मुँख मोडकर स्व तक ही केन्द्रित होकर कछुआ और शुतुरमुर्ग बनने से काम नहीं चलेगा । अपने खोल से बाहर आकर ही समाज का नव निर्माण किया जा सकताहै । यहॉ विवेकानन्द का समाजिक प्रभाव समझा जा सकता है।

---

१ प्रतिभा वर्ष-१९१९ अक - दिसम्बर
२ वही ३ वही

धर्म की गलत व्याख्या कर समाज को सकीर्ण सन्देश पहुँचाने वाले एव क्षुद्र विचारों का पोषण करने वाले धर्म ग्रन्थों, स्मृतियो एव मान्यताओं के विरोध से ही समाज का उत्थान एव उत्कर्ष किया जा सकता है। जो पुरानी मान्यताये समय के साथ अप्रासगिक हो गयी हैं उसे इस परिवर्तनशील युग में छोडना ही श्रेयस्कर है। जिसके अध्ययन एव पालन से सकीर्णता बढे उसे त्याग देना ही उचित है। इस सम्बन्ध मे गुलेरी जी लिखते हैं-" मनु स्मृति मे कहा गया है, जहॉ गुरू की निन्दा या असत् कथा हो रही हो वहॉं पर भले आदमी को चाहिए कि कान बन्द कर ले या कहीं उठ कर चला जाये। यह हिन्दुओ के या हिन्दस्तानी सभ्यता के कछुआ धर्म का आदर्श है। ध्यान रहे कि मनु महराज ने सुनने योग गुरू की कलक कथा के सुनने के पाप से बचने के दो ही उपाय बताये है, या तो कान दबा कर बैइ जाओ, या दुम दबा कर चल दो। तीसरा उपाय जो और देशों के सौ में नब्बे आदमियों को ऐसे अवसर पर पहले सूझेगा, वह मनु ने नहीं बताया कि जूता लेकर या मुक्का तानकर सामने खडे हो जाओं और निन्दा करने वाले का जबडा तोड दो या मुँह पिचका दो कि फिर ऐसी हरकत न करे। यह हमारी सभ्यता के भाव के विरुद्ध है। कछुआ ढाल मे घुस जाता है। आगे बढ कर मार नहीं करता।"[१]

मानववाद

अपने क्षुद्र जीवन का परित्याग कर जो समाज मानवता के लिए जीवन जीने का साहस रखता है, उनके लिए ससार में कुछ भी अगम्य नही है। इसी बात को सरदार पूर्ण सिह इस रूप मे व्यक्त करते हैं,-" सत्व गुण के समुद्र में जिसका अन्त करण निमग्न हो गया वही महात्मा साधु और वीर हैं। जो लोग अपने क्षुद्र जीवन का परित्याग कर ऐसा जीवन पाते हैं कि उनके लिए ससार के कुल अगम्य मार्ग साफ हो जाते हैं।"[२]

विश्वबन्धु स्वामी विवेकानन्द मानव मात्र के प्रति परस्पर प्रेम,सेवा, सहयोग, और उनके सुख मे ही अपना सुख समझने की प्रेरणा देते थे। यह इसी बात को अध्यापक

१ प्रतिभा वर्ष-१९१९ अक-दिसम्बर
२ सच्ची वीरता - सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध - स० - प्रभात शास्त्री पृ० ५२

पूर्ण सिह इस तरह व्यक्त करते हैं-''परस्पर निष्कपट सेवा ही से मनुष्य, जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य, जाति के आनन्द मगल का एक साधारण सा तुच्छ उपाय है धन की पूजा करना नास्तिकता है, ईश्वर को भूल जाना है, अपने भाई - बहनो तथ मानसिक सुख और कल्याण के देने वालों को मार कर अपने सुख के लिए शारीरिक राज्य की इच्छा करना है, जिस डाल पर बैठे हो उसी डाल को स्वय ही कुल्हाडी से काटना है सारी मनुष्य जाति का सुख ही जगत के मगल का मूल साधन है।''[1]

जीवन मे दिव्यतम सुख तथा अक्षय आनन्द की प्राप्ति के लिए सरदार पूर्ण सिह अध्यापक सेवा - भाव, समर्पण एव प्रेम की भावना को नई ऊँचाई देते हैं -'' अपनी जिन्दगी किसी और के हवाले करो , ताकि जिन्दगी को बचाने की कोशिशो मे कुछ भी समय जाया न हो नफरत और द्वेष दृष्टि छोडो, रोना छूट जायेगा। प्रेम और आनन्द से काम लो, शन्ति की वर्षा होने लगेगी।''[2]

आज हम स्वार्थ बुद्धि से घिरकर अपनी मनुष्यता खोकर पशु - तुल्य हो गये हैं, इस सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्द सचेत करते हैं- '' पहले मनुष्य बनों, फिर देखोगे कि पूरा जगत तुम्हारा अनुसरण कर रहा है।'' इसी बात को पवित्रता निबन्ध के द्वारा व्यक्त करते हुए पूर्ण सिह लिखते हैं - '' इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जीते-जागते मनुष्य, हँसते - खेलते मनुष्य, नहाये- धोये मनुष्य, प्रकृति के मनुष्य, जानने वाले मनुष्य, पवित्र हृदय, पवित्र बुद्धि वाले मनुष्य प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे मनुष्य। हल चलाने वाले, पसीना बहाने वाले, जान गँवाने वाले, सच्चे कपट रहित, दरिद्रता रहित, प्रेम से भीगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य। आओ सब परिवार मिलकर इसके लिए कुछ यत्न करें।''[3]

समन्वय -

विवेकानन्द को यह पूर्णतया विदित था कि हिन्दू समाज का अपना व्यक्तित्व है।

---

१ मजदूरी और प्रेम - सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध पृ० १४९
२ सच्ची वीरता - वही पृ० ६६
३ पवित्रता - वही पृ० ११६

उसे बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि वह ' ग्रहण और त्याग' की वृत्ति अपनाये । वीनता के साथ जो नयी और उपयुक्त चीजें हो उसे हम अपना ले और जो पुरानी चीजे अप्रासगिक हो गयी है उसका परित्याग कर दे इस भाव से द्विवेदी युग के साहित्यकार अभिप्रेरित हुए और वे समझने लगे कि प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व की भाँति प्रत्येक समाज का अपना व्यक्तित्व होता है । समाज का कल्याण चाहने वालो को उसके व्यक्तित्व को सदैवे ध्यान में रखना पडता है ।

जो समाज,अपने व्यक्तित्व की अवहेलना न कर अन्य समाज की विशेषताओ को ग्रहण करता है, वही अपने को सुदृढ एव अधिक दिनों तक जीवित रहने का दावा कर सकता है ।' क्या हम जीवित रहेगे' निबन्ध में इसी भावना को व्यक्त किया गया है - " जब तक हम समय के अनुकूल परिवर्तन नही करते और अपने सठियाये हुए अगों मे नवीनता का प्रॉण नहीं दौडाते, तब तक हम जीवन युद्ध में अपनी सत्ता स्थिर नहीं रख सकते । पुरानी जजीरों को तोडना,नयी रोशनी को अपनी तौर से लेकर सवर्था अपना बल देना, ये सब योग्य बनने के साधन हैं जब तक हम किसी पुरानी चाल को केवल इस लिए छोडना पसन्द नहीं करते कि वह हमारी पुरानी चाल है, तब तक हमारे जीवन की स्थिरता का कोई लक्षण नहीं है । नयी विद्या, नई सभ्यता इन सबाको अपना बनाकर ले लेने में ही हमारी जाति का भला है।"[१]

इस तरह उस काल के समाज विषयक निबन्धों मे हिन्दू समाज के परम्परागत सस्कारो की रक्षा करते हुए विदेशी समाज की विशेषताओं को अपनाने को कहा गया है । क्यों कि विवेकानन्द प्राच्य एव पाश्चात्य के समन्वय एव गुणों के परस्पर आदान - प्रदान से ही नये एव शक्तिशाली विश्व का स्वप्न देखते हैं । वे भारतवासियो को पाश्चात्य जगत से प्रगति एव उन्नति का मूल एव पाश्चात्य जगत को भारतवर्ष से धर्म और दर्शन ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं। द्विवेदी युग के निबन्ध - समाज सुधार[२] 'समाज सेवा[३]' हमारी सामाजिक अपूर्णता'[४] आदि मे इसी भावना को चित्रित किया गया है।

समाज के व्यक्तित्व मे विकास लाने के लिए वातावरण के परिवर्तन के अनुसार

१	प्रभा	सवत १९७० वि०	अक - वैशाख शुक्ल
२	श्री कमल	सवत १९७३ वि०	
३	श्री शारदा	वर्ष १९२२	अक - अगस्त
४	लक्ष्मी	वर्ष १९१९	अक - मई

समाज के आदशा मे भी हेर - फेर की आवश्यकता होती है । हिन्दू समाज का प्राचीन आदर्श भौतिकता के युग में अधिक मान्य नहीं समझा गया । अतएव उसमे परिवर्तन कर लेने की ओर भी साहित्यकारो का ध्यान गया है । इस सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि अगले पचास वर्षो के लिये भारत को धर्म की आवश्यकता नहीं है , अब इन्हें अपनी भौतिक उन्नति की ओर ध्यान देना होगा । यह कथन उनके सामाजिक परिवर्तन के व्यापक दृष्टिकोण की ओर इगित करता है ।' प्राचीन और अर्वाचीन भारत''[१]निबन्ध में इसी भाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है इसी सम्बन्ध मे हरिहर प्रसाद बी०ए० अपने निबन्ध में लिखते है-'' भारत वर्ष अपने को एक बन्द पानी का तालाब बनाकर और उसमें प्राचीन समय के कीडे - मकोडे पैदाकर के बीसवीं शताब्दी मे उन्नति नहीं कर सकता, उसे समय के साथ चलना होगा ।हमारी जाति मे जीवन के चिन्ह है जिन्हे काम मे लाने की आवश्यकता है, और आवश्यकता है इस बात की कि पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण हो । जो लोग भय से काम कर रहे हैं उनसे मैं कहता हूँ कि वह समय दूर नही जब कि उनकी अभिलाषायें पूरी हों, परन्तु शर्त यह है कि निराशा की वेदी पर वे अपने को बलिदान न होने दें ।''[२]

शिक्षा

शिक्षा के बिना किसी भी राष्ट्र एव समाज की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती । निरक्षरता और अज्ञानता प्रत्येक व्यक्ति के लिए अभिशाप है । भारत में शिक्षा की प्रगति एव उन्नति के लिए विवेकानन्द ने कई महत्वपूर्ण कार्य किये । इसके लिए वे यहाँ नये विद्यालयो की स्थापना के साथ नये पत्र पत्रिकाओं के प्रचलन पर जोर देते हैं । भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्याप्त न्यूनताओ की ओर सकेत करते हुए वे कहते हैं कि लादी गयी एव थोपी गयी शिक्षा से विभागो मे कार्य करने के लिए बाबू तो बनाया जा सकता है किन्तु व्यक्ति का विकास नहीं किया जा सकता । विवेकानन्द शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वाड्गीण विकास से जोड कर देखते हैं । उन्हीं के शब्दों में - ' व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास ही शिक्षा है ।' उनका मानना है कि देश उसी अनुपात मे उन्नत हुआ करता है जिस अनुपात में वहाँ के जनसमूह में शिक्षा तथा बुद्धि का प्रसार होता है ।

---

१ लक्ष्मी वर्ष १९१९ अक - जनवरी
२ मर्यादा वर्ष १९१९ अक - फरवरी

देश के निरक्षर एव अज्ञानी लोगो को शिक्षित करना देश के पढे - लिखे एव बुद्धिमान लोगो का प्रथम कर्तव्य बताते हुए वे कहते हैं- जब तक करोडों मनुष्य मूर्खता व अज्ञानता मे जीवन बिता रहे ह, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।

द्विवेदीयुगीन साहित्यकारो को अपने समाज मे शिक्षा का अभाव बहुत ही अखरा। अतएव शिक्षा के प्रचार की भावना से युक्त होकर उन्होने ऐसे सैकडों निबन्ध लिखे जिनमें जनता को शिक्षित बनाने के लिये कहा गया था।क्यो कि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने स्वप्न को पहचानता है और अन्धानुकरण न कर विवेचन युक्त मार्ग का अनुसरण करता है। किसी भी समाज की उन्नति, विचारशील प्रवृत्ति के अपनाने से ही होती है और यह शिक्षा के प्रचार द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा के अभाव में जनसाधरण में समयानुकूल बनने वाली शक्ति की न्यूनता होती है। जिससे वह विनाश की ओर अग्रसर करने वाली रूढियो को ही अपनाये रहता है। इस प्रकार वही समाज मानसिक दासता के रोग से पीडित होने लगता है।

द्विवेदी युग के रचनाकार प्रेमचन्द्र विवेकानन्द की शिक्षा सम्बन्धी अवधारणा को अपने निबन्ध ' स्वामी विवेकानन्द' में व्यक्त करते हैं -''वर्तमान शिक्षा प्रणाली के आप कट्टर विरोधी थे। आपका (विवेकानन्द) मत था कि शिक्षा उस जानकारी का नाम नहीं है जो हमारे दिमाग में ठूँस दी जाती है। किन्तु शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य के चारित्र का उत्कर्ष , आचरण का सुधार और पुरुषार्थ तथा मनोबल का विकास है अत हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हमारी सब प्रकार की लौकिक शिक्षा का प्रबन्ध हमारे हाथ में हो और उसका सचालन यथा सम्भव हमारी प्राचीन रीति-नीति और प्राचीन प्रणाली पर किया जाय।''[१] स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा के प्रसार की भावना को व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं-'' स्वामीजी की शिक्षा योजना बहुत विस्तृत है। एक हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने का भी आपका विचार था पर अनेक बाधाओं के कारण आप उसे कार्यान्वित न कर सकें। हाँ, उसका सूत्रपाल अवश्य कर गये।''[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने परोक्ष के साथ-साथ प्रत्यक्ष और सीधे रूप में वर्णन किया है।

---

१ कलम तलवार और त्याग - प्रेम चन्द पृ० १३२

२ वही पृ० १३३

विवेकानन्द के प्राचीन भारतीय शिक्षा सम्बन्धी अवधारणा का पाश्चात्य जगत (लन्दन) मे हुई एक घटना के माध्यम से प्रेमचन्द वर्णन करते हुए लिखते हैं-" पाश्चात्य शिक्षा विदो की प्रार्थना पर स्वामी जी ने भारत की शिक्षा प्रणाली पर पाण्डित्यपूर्ण भाषण किया। उन विद्या व्यसनियों को कितना आश्चर्य हुआ जब स्वामी जी के मुँह से सुना कि भारत मे विद्यादान सब दानो से श्रेण्ठ माना गया है और भारतीय गुरू अपने विद्यार्थियो से कुछ लेता नहीं, बल्कि अपने घर पर रखता है और उनको विद्यादान के साथ- साथ भोजन वस्त्र भी देता है।"[१]

शिक्षा के महत्व एव उसकी सार्थकता के सम्बन्ध मे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक लेख लिखे । वे निरक्षरता को दु ख का कारण मानते हुए कहते हैं,-" अज्ञानता और निरक्षरता ही अनेक दु खों की जननी है ।"[२] ' जापान और भारत मे शिक्षा का तारतम्य' निबन्ध मे भारत और जापान की शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए , इस सम्बन्ध मे जापान से सीख लेने की प्रेरणा देते हैं । इस लेख में शिक्षा की महत्ता सि करते हुए वे लिखते हैं" शिक्षा से ही मनुष्य का जन्म सार्थक होता है । उसी से मनुष्य अपनी सब प्रकार की उन्नति कर सकता है। उसकी दुरवस्था देख किस समझदार भारतवासी को परमावधि का परिताप न होगा ।"[३]

'सरस्वती के अको में द्विवेदी जी ने निरक्षरता पर अनेक लेख लिखा । उनका ध्यान विशेष रूप से गाँवों मे फैली हुई निरक्षतरा की ओर जाता था । इस सम्बन्ध में भारत मे शिक्षा की दशा' शीर्षक से अपना विचार कुछ इस तरह से व्यक्त किया -" गाँवें में मदरसे बहुत कम हैं । जितने हैं उनमें बहुत कम लडके पढने जाते हैं । सरकार हर आदमी के पीछे जनसख्या को देखते हुए आठ आने भी नही खर्च करती । यह स्थिति बहुत ही शोकजनक है । जाहिए था कि प्रारम्भिक शिक्षा मुक्त और अनिवार्य कर दी जाती पर वह तो दूर रहा, फीस देकर भी अपने बच्चों को शिक्षा देना या न देना माता-पिता की इच्छा पर छोडकर भी शिक्षा प्राप्ति का यहाँ यथेष्ठ सुभीता नहीं।"[४] आगे द्विवेदी जी देश की वर्तमान शिक्षा- दशा पर क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखते हैं -" इस देश में निरक्षरता का अधिपत्य है । हिसाब लगाया गया है कि किसी गॉव में

---

१ कलम तलवार और त्याग - प्रेम चन्द पृ० ११८
२ लेखाजलि - महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ० ३१
३ वही पृ० ३२
४ सरस्वती वर्ष १९१५ अक - मई पृ० १७६

किसी गाँव में मदरसा है तो तीन गाँव मे नही, यदि १०० मे पन्द्रह लडके मदरसे जाते हैं तो ८५ लडके गाय- भैंस चराते या गुल्ली डडा खेलते है।''[१]

आचार्य द्विवेदी यह अच्छी तरह जानते थे कि शिक्षा में सुधार ओर उसका प्रचार करने से ही भारत को विकास के रास्ते पर लाया जा सकता है। अज्ञानता और निरक्षरता को दूर किये बिना उन्नति का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इस बात को वे 'विचार- विमर्श' मे इस तरह व्यक्त करते हैं-'' देहात मे निरक्षरता का समुद्र उमड रहा है कोसों मदरसे का नाम नहीं। देहातियों को यह भी नहीं मालूम कि मदरसा खोलने के लिए किसको लिखना चाहिए गन्दगी का यह हाल है कि कूडे के ढेर मकानो के चबूतरे से लगे हुए हैं। याद रहे इन्हीं लोगो को सुधारने और इन्हीं मे शिक्षा प्रचार करने से भारत की उन्नति होगी। यह बात ध्रुव सत्यहै।''[२]

द्विवेदी युग के लगभग सभी निबन्धकारों ने शिक्षा प्रचार पर बल दिया है। शिक्षा का गुणगान करने में तो वे थकते ही नही थे -'' विद्या के प्रकाश से वह पदार्थ दीख पडते हैं जो कभी आँखो से दिखाई नहीं देते, विद्या के प्रभाव से घर बैठे देश - देशान्तर के समाचार विदित होते हैं, विद्या के होने से रूप की शोभा बढ जाती है। चित्त अत्यन्त प्रसन्न रहता है। इस गुप्त धन से बडा ही सुख मिलता है, इससे जगत मात्र वशीभूत होता है।''[३]

शिक्षा के विकास को मात्र सरकारी दायित्व न मानते हुए और केवल इसकी आलोचना ही करके अपने कर्तव्यो की इति श्री न समझ कर उसके विकास एव प्रसार के लिये द्विवेदी युग के निबन्धकार अपनी लेखनी के माध्यम से नये रास्ते भी दिखलाते हैं -''गवर्नमेन्ट पर निर्भर रह कर्तव्य परायणता को तिलाजालि दे बैठना उचित नही है, कुछ हाथ पैर बढाइये। अपने मुहल्लों, अपने गाँवों और अपने शहरो के लडको की शिक्षा का प्रबन्ध करिए। यदि आप को दिन मे समय नहीं मिलता तो आप 'नाइट' स्कूल खोलिये, इष्ट मित्रों को सहायता से शिक्षकों का कार्य अपने ऊपर ओढ लीजिये। कुछ कार्य कर दिखाइये, तब सहायक आप से आप पैदा ही जायेगे।''[४] यहाँ यह द्रष्टव्य है कि विवेकानन्द ने शिक्षा के उत्थान के सम्बन्ध में खेतडी नरेश को सम्बोधित

१	सरस्वती	वर्ष १९१५	अक - मई	पृ० १७६
२	विचार विमर्श - माननीय मेम्बरों की बात			पृ० ४०९
३	इन्दु	सवत १९६६ वि०	भद्रपद शुक्ल २	पृ० २५
४	मर्यादा	वर्ष १९१४	अक - मार्च	

करते हुए कहा था - ''यदि गरीब शिक्षा तक नहीं पहुॅच पा रहे हैं तो शिक्षा को ही उन तक पहुॅचना होगा।'' लेखक के कथन से विवेकानन्द के इसी बात की पुष्टि होती है।

इस तरह से हम देखते हैं कि शिक्षा के गुण-दोष, इसकी प्रगति, उत्थान एव सार्थकता पर द्विवेदी युग में अनेक निबन्धों की रचना हुई, जिनमें इनकी न्यूनताओ की ओर सकेत किया गया है और सुधार के मार्ग भी दर्शाये गये हैं। 'भारतीय शिक्षा प्रणाली मे कुछ दोष,[१] आधुनिक शिक्षा पद्धति,[२] 'शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य'[३] 'वर्तमान शिक्षा का आदर्श-[४] 'आधुनिक शिक्षा और देश का भविष्य-[५] 'हमारी शिक्षा-[६] आदि निबन्धो की रचना से यह सिद्ध होता है कि द्विवेदी युग के निबन्धकार शिक्षा के महत्व और इसकी सार्थकता तथा इसके सामाजिक प्रदेय के सम्बन्ध मे पूर्णत जागरूक थे।

भेद—भाव

स्वामी विवेकानन्द मानव मात्र के प्रति किसी भी स्तर के भेंद-भाव, ऊँच-नीच, जाति-पाति एव छुआ-छूत के सवर्था विरोधी थे। वे जन्म के आधार पर जातियों के विभाजन का विरोध करते थे। जाति प्रथा व वर्ण भेद को समाप्त करने के लिये वे जातियों को किसी प्रकार मिटाने की बात नहीं कहते थे। ब्राह्मत्व उनके लिए मानवता का आदर्श है और भारत मे सभी को ब्राह्मण बनाना उनका लक्ष्य था।' प्रत्येक जीव ईश्वर है इस भाव से वे निम्न से निम्न वर्ग में भी ईश्वर का भाव रखते थे। इस विषय में अपने गुरू रामकृष्ण देव का वर्णन करते हुये विवेकानन्द कहते हैं -'' मै उनका शिष्य हूॅ, जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राहमण होते हुये भी एक पेरिया (नीच चाण्डाल) का घर साफ किया था, इसलिये यदि मैं पेरिया होता तो मुझे और आनन्द आता।''

प्रेमचन्द,' विवेकानन्द की सामाजिक एकता की अवधारणा से

१	सरस्वती	वर्ष १९१९	अक - जुलाई
२	मर्यादा	वर्ष १९१२	अक - नवम्बर
३	सरस्वती	वर्ष १९२१	अक - मार्च
४	मर्यादा	वर्ष १९१९	अक - जून
५	माधुरी	वर्ष १९२४	अक - फरवरी
६	श्री कमल	सवत १९७३ वि०	श्रावण सख्या - ८

प्रभावित हो कर अपने निबन्ध स्वामी विवेकानन्द मे उनकी विचारधारा व्यक्त करते हुये लिखते हैं कि स्वामी जी कहते थे-" क्या भारत में कभी सुधारकों की कभी रही है। क्या तुम कभी भारत का इतिहास पढते हो। रामानुज कौन थे ? शकर कौनि थे ? नानक कौन थे ? चैतन्य कौन थे ? दादू कौन थे ? क्या रामानुज नीची जाति की ओर से लापरवाह थे ? क्या वह आजीवन इस बात का यत्न नहीं करते रहे कि चमारों को भी अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित कर ले ? क्या उन्होने मुसलमानों को अपनी मण्डली में मिलाने की कोशिश नही की थी ? क्या गुरू नानक ने हिन्दू मुसलमान दोनों जातियो को मिला कर एक बनाना नहीं चाहा था ? इस सब महापुरुषो ने सुधार के लिये यत्न किये, और उनका नाम अभी तक कायम है। अन्तर इतना है कि वह लोग कटुवादी न थे। उनके मुँह से जब निकलते थे, मीठे बचन ही निकलते थे। वह कभी किसी को गाली नही देते थे, किसी की निन्दा नहीं करते थे। नि सन्देह सामाजिक जीवन के सुधार के इन गुरुतर और महत्वपूर्ण प्रश्नो की हमनें उपेक्षा की हैं और प्राचीनो ने जो मार्ग स्वीकार किया था उससे विमुख हो गये हैं।"[१]

स्वामी जी सामाजिक कुरीतियो के पक्के विरोधी थे ओर उसमे सुधार के हिमायती थे। परन्तु सुधार की वर्तमन गति से वे सहमत न थे। उस समय समाज सुधार के जो यत्न किये जाते थे, वह प्राय उच्च और शिक्षित वर्ग से ही सम्बन्ध रखते थे। जाति बन्धन इस समय की एक बडी सामाजिक समस्या थी। इस समबन्ध में स्वामी जी का आदर्श बहुत ऊँचा था, जिसे व्यक्त करते हुये प्रेमचन्द लिखते हैं -" निम्न श्रेणी वालों को ऊपर उठाना, उन्हे शिक्षा देना और अपना भाई बनाना होगा। यह लोग हिन्दू जाति की जड है और शिक्षिति वर्ग उसकी शाखाएँ। केवल डालियों के सींचने से पेड पुष्ट नही हो सकता। उसे हरा- भरा बनाना हो तो जड को सींचना ही होगा। इसके सिवा इस विषय में आप कठोर शब्दों के व्यवहार को अति अनुचित समझते थे, जिनका फल केवल यही होता है कि जिनका सुधार करना है वही लोग चिढकर ईट का जबाव पत्थर से देने को तैयार हो जाते हैं, और सुधार का मतलब केवल यही रह जाता है कि निरर्थक विवादों और दिल दुखाने वाली आलोचनाओं से पन्ने के पन्ने काले किये जॉय, इसी से तो समाज सुधार का यत्न आरम्भ हुये सौ साल से ऊपर हो चुका और अभी तक कोई नजीता न निकला।"[२]

---

१ कलम तलवार और त्याग पृ० १३१
२ वही पृ० १३०

के प्रति इन भावनाओ का, समकालीन एव परवर्ती साहित्य पर सकारात्मक प्रभाव पडा । द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने भी इसी भावना से अनुप्राणित होकर नारी के -विकास उत्थान व प्रगति से सम्बन्धित निबन्धोकी रचना की ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध ' महात्मारामकृष्ण परमहस ' में रामकृष्ण देव के नारी विषयक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुये लिखते है" उन्होंने रामकृष्ण देव सारदा देवी से भी कहा था यह रामकृष्ण ससार की स्त्रियों को माता के समान देखता है, और उनको भी इसी दृष्टि से देखेगा।"[१] रामकृष्ण देव के इसी भाव को ' माधव मिश्र' इस प्रकार व्यक्त करते है।-" माता महामाया ही का स्वरूप सब स्त्रियों है। इसलिये जगत की समस्त स्त्रिया हमारी माता है।"[२] स्वामी विवेकानन्द के नारी आदर्श को व्यक्त करते हुये प्रेचन्द्र लिखते है–" विवेकानन्द कहा करते थे, हे भारत निवासी भाइयो। अच्छी तरह याद रखो कि सीता, सावित्री और दमयन्ती तुम्हारी जाति की देवियॉं है।"[३]

द्विवेदी युग के निबन्धकारो ने नारी जाति की महानता का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। सरदार पूर्व सिह अपने निबन्ध - 'कन्यादान' मे इसी भाव का वर्णन करते हुये लिखते है-" सीता ने बारह वर्ष का वनवास कबूल किया, महलों में रहना न कबलू किया। दमयन्ती जगल-जगल नल के लिये रोती रही ,सावित्री ने प्रेम के बल से यम को जीतकर अपने पति को वापस किया । गाधारी ने सारी उम्र अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर बिता दी ।"[४] इस कथन के द्वारा लेखक नारी जाति के प्रेम, त्याग व समर्पण का उदात्त वर्णन करता है ।

स्वामी विवेकानन्द नारी जाति के प्रति आदर्श परक विचार रखने के साथ ही उनकी कमियो को दूरकर, उन्नति का मार्ग भी दर्शाते हैं । प्रत्येक नारी का शिक्षित होना उसके विकास की पहली सर्त है इसलिये स्वामी जी नारी शिक्षा पर सबका ध्यान आकृष्ट करते हैं । द्विवेदी युगीन साहित्यकारो को भी नारी शिक्षा का अभाव बहुत ही अखरा । इसलिये इस भावना से युक्त होकर

१	सरस्वती	वर्ष १९०३	अक - फरवरी, मार्च	पृ० ४६
२	माधव मिश्र निबन्धमाला - १ - परमहस रामकृष्ण देव जी			पृ० २४९
३	कलम तलवार और त्याग			पृ० १३५
४	सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध	स० प्रभात शास्त्री		पृ० ८७

इस युग मे अनेक निबध लिखे गये । ' स्त्री शिक्षा का उपाय' निबन्ध मे बाबादीन शुक्ल कहते है - '' यद्यपि इस ससार से मुक्त होने के लिये हमारे श्रद्धेय महर्षियों के बताये हुये जप, यज्ञादि अनेक साधन उपस्थित हैं, किन्तु विचारना होगा कि इन साधनों के कोई प्रधान साधन तो नहीं है,। बिना जप - यज्ञादि साधनो के सिद्ध करने में मनुष्य को असमर्थ होना पडे । भाइयों! उन सम्पूर्ण साधनों को सिद्ध करने में प्रधान कारणे मे से एक सबसे बडा कारण स्त्रियों का शिक्षित होना है। जो -जो साधन मनुष्य के लिये परलोक तथा इसलोक के लिये आवश्यक है, वे सम्पूर्ण साधन स्त्रियों के शिक्षित होने से ही प्राप्त हो सकते हैं ।''[१] इससे स्पष्ट होता है कि द्विवेदी युग मे स्त्री शिक्षा के प्रचार को पर्याप्त महत्व दिया गया है ।

भारतीय स्त्रियों में शिक्षा के अभाव से अन्य बातो में श्रेष्ठ होने के बाद भी इस कमी के कारण हमे अपना सिर नीचा करना पडता है । ' कामिनी कौतूहल' में इसी बात को व्यक्त करते हुये लिखा गया है -'' हमारे देश मे स्त्री शिक्षा की बडी आवश्यकता है । यहॉ की स्त्रियॉं और अच्छे गुणो में दूसरे देख के स्त्रियों की बराबरी कर सकती हैं । अनेक बातों में वे उनसे बढ़ी हुई भी हैं । यहॉं की स्त्रियों का सा पति प्रेम,यहॉं की स्त्रियो की सी शालीनता , यहॉं के स्त्रियों की सी ईश्वर भक्ति कहॉं है ? कहीं भी नहीं! परन्तु विद्या और कला कौशल की शिक्षा की बात निकलने पर हमको सिर नीचाा करना पडता है ।''[२] 'स्त्रियों की स्वतत्रता' नामक लेख मे स्त्रियों के ज्ञान प्राप्ति पर लिखा गया है -'' हे जगदीश्वर! हम अवलाओ के हृदय में कुछ ऐसा ज्ञान प्रदान कीजिये, जिससे कि हम लोग अपनी हानि - लाभ जान कर सर्वसुखदायिनी विद्या पाने के योग्य होकर अपना सर्वस्व तन- मन- धन परोपकार में अर्पण करें याद रहे जब इसी प्रकार की स्वतत्रता और ऐसी ही शिक्षा हमारी ललनाओ को मिलेगी तभी सब बातो का सुधार होगा।''[३] स्त्रियों की सामाजिक स्थिति व उनकी शिक्षा तथा सम्मान के सम्बन्ध में ' स्त्रियों के विषय में अत्यल्प निवेदन '[४] निबन्ध में भी भली भॉंति प्रकाश डाला गया है।

१	इन्दु	सवत १९६६ वि०	किरण - ११	पृ० १९१
२	सरस्वती	वर्ष १९०३	अक - मार्च	
३	वही	वर्ष १९१०	अक - जून	पृ० २७९
४	वही	वर्ष १९१३	अक - जुलाई	पृ० ३८४

स्त्रियो की अशिक्षा एव उनकी दयनीय स्थिति का वर्णन ' भारतीय नवयुवको के कर्तव्य' नामक निबन्ध में करते हुये दुर्गा प्रसाद शुक्ल कहते हैं -" हमारे समाज में स्त्रियो की दशा कितनी दयनीय है । हम उन्हें अशिक्षित और सब प्रकार अपने अधीन रखकर उन पर कौन-कौन से जुल्म करते है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है ।"[१]

स्त्री की शिक्षा में सुधार के साथ- साथ उसके ऊपर होने वाले दमन एव अत्याचार तथा उसकी पराधीनता के सम्बन्ध में भी द्विवेदी - युग के निबन्धकारों ने ध्यान आकृष्ट किया है । इस सम्बन्ध मे सरदार पूर्ण सिह अपने निबन्ध ' पवित्रता' मे लिखते हैं -" जब तक आर्य कन्या इस देश के घरो और दिलो पर राज्य नहीं करती, तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आ सकती । अब तो पहला सस्कार भारत कन्याओं को राजतिलक देना है ।"[२] स्वतन्त्रता के अभाव मे स्त्रियो का विकास नहीं हो सकता । ' स्त्रियों की स्वतन्त्रता' नामक निबन्ध द्वारा इस तरफ ध्यान आकृष्ट कराते हुये कहा गया है -" हमारा अभिप्राय केवल यह है कि हम लोगो को वैसी ही स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए जैसी कि प्रताप के समय में क्षत्राणियों को तथा पूर्व समय में ऋषि पत्नियो को मिलती थी जिससे वे अपने कर्तव्य का भली - भाँति पालन करती थी ।"[३]

स्त्रियों की अवनति एव उनके अन्धकारमय जीवन का एक प्रमुख कारण-स्वामी विवेकानन्द बाल-विवाह को मानते हैं । बाल विवाह का धर्म के अन्तर्गत व्याख्या करने पर स्वामी जी प्रश्न करते हैं -" आठ वर्ष की कन्या के साथ ३० वर्ष के पुरुष का विवाह आठ वर्ष की लडकी की गर्भाधान की जो लोग वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, उनका धर्म कहाँ का धर्म है ।" प्रेमचन्द अपने निबन्ध 'स्वामी विवेकानन्द ' में, स्वामीजी के द्वारा बाल विवाह के विरोध को दर्शाते हुए लिखते हैं -"बाल विवाह और जनसाधारण गृहस्थ जीवन की अत्यधिक प्रवृत्ति को वह घृणा की दृष्टि से देखते थे । अत रामकृष्ण मिशन की आरे से जो विद्यालय स्थापित किये गये, उनमे पढने वालों के माँ-बाप को यह शर्त भी स्वीकार करनी पडती है कि बेटे का व्याह १८ साल के पहले न करेंगे ।"[४]

१	प्रभा	वर्ष १९१५	अक - अप्रैल	पृ० ११८
२	सरदार पूर्ण सिह अध्यापक के निबन्ध			पृ० १०७
३	सरस्वती	वर्ष १९१०	अक - जून	पृ० २७९
४	कलम तलवार और त्याग			पृ० १३२

बाल विवाह के सम्बन्ध मे वर्षो से चली आ रही परम्परा और अज्ञानता पर व्यग करते हुय चन्द्र धर शर्मा ' गुलेरी', 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' निबन्ध में लिखते है -'' एक मुरादाबादी पण्डितजी लिखते हैं हमारे पडदादा के पुस्तकालय मे जो चरक की पोथी है उसमे लिखा है - बारह वर्ष से कम की कन्या और पच्चीस से कम कर वर'- लिजीये चरक तो बारह वर्ष पर ही 'एज आफ कन्सेक्ट' बिल देता है । बाबा जी क्यों सोलह कहते हैं, चरक की छपी पोथियो मे कहीं यह पाठ न मूल मे है न पाठान्तरों मे - न हुआ करे, हमारे पडदादा की पोथी में तो है।''[१]

बाल विवाह व अनमेल विवाह की आलोचना करने हुए दुर्गा प्रसाद शुल्क अपने निबन्ध ' वर्तमान युग में भारतीय नवयुवकों के कर्तव्य' में इसे सामाजिक कुरीति की सज्ञा देते हुए लिखते है -'' कहीं बाल व वृद्ध का विवाह या अनमेल विवाह हो रहा है । कहीं लडकियॉ देवदासी बनायी जा रही हैं इन कुरीतियों को दूर भगाना होगा ।''[२] इसी युग के एक अन्य निबन्ध ' भारत की स्त्री जाति'[३], मे स्त्री समाज की त्तकालीन बुराइयों का वर्णन किया है ।

आर्थिक भाव–धारा

मूलत सन्यासी होते हुए भी स्वामी विवेकानन्द आर्थिक महत्व तथा राष्ट्र और जन के उत्थान हेतु इसकी उपादेयता को अच्छी तरह समझते थे । आर्थिक उन्नति के बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता । वे अर्थ को भोग और विलासित से न जोडकर भूँख और रोटी से जोडकर देखते हैं । उनके लिए आर्थिक उन्नति, भारत के कोटि-कोटि क्षुधार्थ नर- नारी के लिये रोटी की व्यवस्था करने से है । ईसाई मिशनरियो द्वारा भारत में धर्म प्रचार करने पर स्वामी जी उन्हे धिम्कारते हुए कहते हैं - ''भारत में धर्म का अभाव नहीं हैं, अभाव है तो रोटी का । भूँख से त्रस्त भारतवासी रोटी - रोटी चिल्ला रहे हैं और तुम उन्हें बदले मे देते हो पत्थर । भूखे व्यक्ति को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है। हो सके तो उनके लिए रोटी की व्यवस्था करो ।''

१	प्रतिभा	वर्ष १९२०	अक - सितम्बर	
२	प्रभा	वर्ष १९१५	अक - अप्रैल	पृ० ११८
३	वही	वर्ष १९१५	अक - मई, जून	पृ० ३६५

विवेकानन्द की आर्थिक भावधारा का पर्याप्त प्रभाव द्विवेदी युग के निबन्धो मे देखा जा सकता है । भारत के लोगों में आर्थिक उन्नति करने की भावना अब अत्यन्त प्रबल हो चुकी थी । पश्चिमी देशो मे औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी, जिसका प्रभाव भारत पर भी पडने लगा था । इस तरह से भारतीयो ने अपनी आर्थिक व्यस्था सँभालने के लिए उद्योग धन्धो की उन्नति की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया । इस कार्य के लिए साहित्यकारो ने जानता को प्रोत्साहन देने हेतु उद्योग, शिल्प, व्यापार, व्यवसाय से सम्बन्धित विषयो पर निबन्धों की रचना की । सरस्वती के लेखों की विषय सूची में एक वर्ग कला - कौशल, व्यापार और व्यवसाय सम्बन्धी लेखो का मिलता है ।

देश की वर्तमन आर्थिक अवदशा को देखकर विवेकानन्द ने कहा था कि देश को अब धर्म की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है आर्थिक उन्नति की । इसी भाव से अनुप्राणित होकर द्विवेदी युगीन निबन्धकार मनोरथजी ' भारतवर्ष की शोचनीय दशा' नामक निबन्ध मे लिखते हैं -" हिन्दू भाइयो को यह समय मत-मतान्तर के झगडों में पडने का नही है, और न सन्तोष का है, और न वेदान्ती बनकर उदासीन होकर बैठने का है । भाइयों, ऐसे घोरकाल में कुछ धार्मिक कार्य नहीं हो सकता, न वह शास्त्रविहित ही है कवेल देश को बचाने के लिए जिस तरह हो सके, कटिवद्ध हो कर यत्न करो । यह समय देश - विदेश व जाति - पाँति के विचार का नहीं है जैसे हो सके शिल्प का प्रचार करो, जैसे बन पडे वैसे कला - कौशल सीखने का यत्न करो । सब का प्रायश्चित केवल मरते हुए देश भाइयों को बचाना ही परम् धर्म है ।"[१]

स्वामी विवेकानन्द भारत में आर्थिक उन्नति के लिए विदेशी आविष्कार और उसके प्रयोगों से सीख लेकर - विकास करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं - कि भारत को पाश्चातय जगत से आर्थिक उन्नति की सीख लेनी चाहिए । इसी बात को व्यक्त करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध ' देश की बात मे' लिखते हैं - " विद्या व विज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ नये-नये यन्त्र बनते जा रहे है, उनके उपयोग से श्रम की उत्पादकता की तरह पूँजी की भी उत्पादकता बढती हैं । कलों की बराबरी हाथ नहीं कर सकते । जिस देश में कलों का अधिक प्रचार है, उस देश में पूजी की उत्पादक शक्ति बहुत बढ जाती है ।"[२] इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी जी

---

१ इन्दु कला - ४ खण्ड - २ किरण - ७ पृ० २४०
२ सरस्वती वर्ष १९१४ अक - जुलाई

आर्थिक विकास के लिए आधुनिक व वैज्ञानिक प्रयोगों का समर्थन करते हैं ।

देश की निर्धन जनता एव उसकी दयनीय दशा तथा उसके सुधार के प्रति शिक्षित जनो को सजग करते हुए आचार्य द्विवेदी अपनी पुस्तक 'सम्पत्ति शास्त्र' की भूमिका मे लिखते हैं -" हिन्दुस्तान सम्पत्तिहीन देश है । यहाँ सम्पति की बहुत कमी है । जिधर आप देखेगे उधर ही आँख को दरिद्र देवता का अभिनय किसी न किसी रूप मे अवश्य ही दीख पडेगा परन्तु इस दुर्दमनीय दारिद्र्य को देखकर भी कितने आदमी ऐसे हैं, जिनको उसका कारण जानने की उत्कठा होती है ? यथेष्ठ भोजन, वस्त्र न मिलने से करोडो आदमी जो अनेक प्रकार से कष्ट पा रहे हैं, उसका दूर किया जाना क्या किसी तरह सम्भव नहीं ? हर गाँव और हर शहर में जो अस्थि चर्मावशिष्ट मनुष्यो के समूह आते जाते दीख पडते हैं, उनकी अवस्था उन्नत करने का क्या कोई साधन नहीं है ? बताइये तो सही कितने आदमी ऐसे है जिनके मन में इस तरह के प्रश्न उत्पन्न होते है ।"[१]

भारत की आर्थिक दुर्वस्था को सुधारने का उपाय बतलाते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - " अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारना ही इस समय हम लोगो का प्रधान कर्तव्य है । अनेक रोगों से पीडित और अभिशप्त इस हिन्दुस्तान के लिए इस समय यही सबसे बडी औषधि है । यदि यह औषधि उपयोग मे न लायी गयी तो हमारी और अधिक दुर्दशा होने मे कोई भी सन्देह नहीं है । अतएव भारतवासियों को यदि दुनिया की अन्यान्य जातियों में अपना नाम बनाये रखने की जरा भी इच्छा हो तो उन्हे चाहिए कि वे सम्पत्ति - शास्त्र का अध्ययन करें और सोंचे कि कौन बाते ऐसी हैं जो हमारी उन्नति में बाधा डाल रही हैं ।"[२] पूँजी और उसके उपयोग के सम्बन्ध मे इसी भावना से प्रेरित होकर हरिहर नाथ लिखते हैं -" विदेशी पूँजी के रहते जितनी हानि है उससे कहीं अधिक हानि विदेशियों के हाथ मे व्यवसाय होने से है । हमको केवल मजदूर न रहना चाहिए वरन व्यवसाय के प्रत्येक अग का सचालन करके उसका पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । इस प्रकार हमको विदेशी व्यवसाय का नौकर न बनना चाहिए वरन् व्यवसाय के मुनाफे का भागी भी होना चाहिए ।"[३]

---

१ सम्पत्ति शास्त्र - महावीर प्रसाद द्विवेदी - भूमिका से
२ वही
३ श्री सारदा सवत १९८० वि० अक - वैशाख

द्विवेदी युग के निबन्धो मे भारत की आर्थिक अवदशा एव उसकी उन्नति से सम्बन्धित विचार प्रचुरता से मिलते हैं। जिनमे, 'स्वदेशी वस्त्र के व्यापार की उन्नति'[१] 'हिन्दुस्तान का व्यापार'[२] 'भारतीय आर्थिक और व्यापारिक स्थिति'[३] 'भारत की व्यापार नीति'[४] आदि प्रमुख हैं।

द्विवेदी युग के निबन्धों में शिल्प शिक्षा के प्रचार तथा कला कौशल सीखने पर पर्याप्त महत्व दिया गया है, जिनमे 'हमारी शिल्प कला का ह्रास'[५] 'शिल्प कला तथा राष्ट्रीय धन'[६] 'भारत की अपनी शिल्प पद्धति'[७] 'ग्राम शिल्प का पुनस्त्थान'[८] आदि उल्लेखनीय हैं। भारत मे उद्योग धन्धो की कमी यहाँ के लोगों को बहुत खटक रही थी। इसी बात को 'भारत में औद्योगिक शिक्षा'[९] 'उद्योग धन्धे की शिक्षा'[१०] निबन्ध के द्वारा व्यक्त किया गया है।

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के निबन्धों में विवेकानन्द की आर्थिक भावधारा का प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो रूपों में व्यक्त हुआ है। द्विवेदी युग के समग्र निबन्धो और लेखों का व्यापक अध्ययन करने पर यह देखा जा सकता है कि इस युग के निबन्धकार रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा से पूर्णत प्रभवित हैं, एव उन्होने, उनके धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक तथा आर्थिक विचारों को ही अपनी लेखनी के द्वारा जन -जन तक प्रसारित करने का महती कार्य किया। उनका यह अपूर्व योगदान न केवल निबन्ध के क्षेत्र में अपितु समस्त हिन्दी साहित्य के उत्थान मे मील का पत्थर साबित हुआ।

१	विचार विमर्श - महावीर प्रसाद द्विवेदी			पृ० ३४४
२	सरस्वती - महावरी प्रसाद द्विवेदी	वर्ष १९०७		अक - अक्टूबर
३	मर्यादा - रामकृष्ण शर्मा	वर्ष १९१७		अक - मार्च
४	वही - लक्ष्मी शकर अवस्थी	वर्ष १९१३		अक - अप्रैल
५	इन्दु - परमेश्वर प्रसाद वर्मा	वर्ष १९१४		अक - दिसम्बर
६	मर्यादा - श्याम सुन्दर पाण्डेय	वर्ष १९१९		अक - अप्रैल
७	इन्दु सवत १९७० वि०	कला -४	खण्ड - २	किरण - ५
८	साहित्य - छविनाथ पाण्डेय सवत १९७९ वि०	माह - कार्तिक		
९	सरस्वती - महावीर प्रसाद द्विवेदी	वर्ष १९१३		अक - फरवरी
१०	वही - कृष्णानन्द जोशी	वर्ष १९१५		अक - जुलाई

(ख) भावधारा का उपन्यास पर प्रभाव

लोक-मगल और लोककल्याण ही साहित्य का मूल उद्देश्य है। व्यक्ति एव समाज के मध्य पारस्परिक सम्बधों का विश्लेषण कर उनकी न्यूनताओं की ओर ध्यान दिलाते हुए उसमें सुधार करके उन्हें प्रगति और उन्नति की ओर प्रेरित करने में ही साहित्य की सार्थकता है । हिन्दी साहित्य मे गद्य विधा का आरम्भ भारतेन्दुयुग से हो चुका था । द्विवेदी युग तक आते- आते इसका विकास होने लगा था । उपन्यास की दृष्टि से द्विवेदी युग अन्य गद्य - विधाओं की तुलना में समृद्ध कहा जा सकता है किन्तु इस क्षेत्र में लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति साहित्य के मूल उद्देश्यो से दूर, कुतूहल रहस्य और रोमाच के माध्यम से मनोरजन करने में ही अधिक रही है । सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर गम्भीर उपन्यासो की रचना इस युग में कम ही हुयी है । रहस्यमयी अद्भुत घटनाओं को श्रृखलाबद्ध करके एक अपरिचित ससार में पाठकों को भटकाते रहना , लेखकों का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है ।

द्विवेदी युग के (१९००-१९२०ई०) उपन्यासो पर व्यापक दृष्टि डालने पर पहला तथ्य यह सामने आता है कि इसी अवधि में हिन्दी उपन्यास को अपने पैरों पर खडा होने के लिए मजबूत जमीन मिली । इसके पहले हिन्दी उपन्यास, हिन्दी साहित्य के उत्थान कर्ताओ के उत्साह पर निर्भर था । उसके पाठक न के बराबर थे । देवकी नन्दन खत्री ने हिन्दी उपन्यास को पाठकों का एक बडा वर्ग प्रदान कर ,उसे अपने पैरों पर खडा किया । बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक पूरी तरह से पाठकों के निर्माण का दशक है और इसके एक मात्र अभियता देवकी नन्दन खत्री हैं । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में खत्रीजी के अतिरिक्त गोपाल दास गहमरी और किशोरी लाल गोस्वामी ने हिन्दी उपन्यास के पाठकीय आधार को सुदृढ करने का प्रयत्न किया । इन्हीं के मार्ग पर चलने वाले ऐयारी , तिलिस्म प्रधान, अपराध प्रधान ,जासूसी और रूमानी कथाकारों ने पाठक वर्ग के विस्तार में योगदान किया । इस प्रकार द्विवेदी युग की समाप्ति तक हिन्दी जगत में एक ऐसा विशाल पाठक वर्ग निर्मित हो गया जो मुख्यत मध्यमवर्गीय था । यही मध्य - वर्ग आगे चल कर उपन्यास का आश्रयदाता ही नही उसका प्रधान विषय वस्तु भी बना ।

द्विवेदी युगीन हिन्दी कथा सहित्य का लेखक और पाठक समाज तिलिस्म ऐयारी

और जासूसी के जाल में उलझा हुआ था। अद्भुत कौशल और अनोखी सूझबूझ के सम्मिलन से इन उपन्यासों की सृष्टि हुयी । 'चन्द्रकाता' और 'चन्द्रकाता सतति' पढने के पश्चात हिन्दी का पाठक वर्ग उन्हीं जैसी पुस्तकों की खोज करने लगा । कुछ ही वर्षो में हिन्दी उपन्यास साहित्य तादृश उपन्यासो से भर गया । गोपाल दास गहमरी के उपन्यासों और जासूस - पत्र ने जासूसी उपन्यासो को विशेष प्रोत्साहन दिया । तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यास तो प्रेम प्रधान हैं ही , जासूसी उपन्यास में भी प्राय प्रेम का सन्निवेश हुआ है । विज्ञान और दर्शन के विषय में भी कुछ उपन्यासों की रचना हुई है । 'हवाई नाव' 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'बेलून बिहारी' आदि मे वैज्ञानिक सत्य के साथ जासूसी, जातकी,की स्वच्छन्द कल्पना का सयोग हुआ है ।

प्रवृत्ति भेद के आधार पर द्विवेदी युगीन उपन्यासों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है - तिलिस्मी ऐयारी उपन्यास ,जासूसी उपन्यास,अद्भुत घटना प्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और सामाजिक उपन्यास । तिलिस्मी ऐयारी उपन्यासों की परम्परा देवकी नन्दन खत्री द्वारा भारतेन्दु युग में ही आरम्भ हो गयी थी और द्विवेदी युग में इसका विकास होता गया। खत्री जी के 'काजर की कोठरी'(१९०२), 'अनूठी बेगम'(१९०५), 'गुप्त गोदना' (१९०६), 'भूतनाथ' प्रथम छ भाग- (१९०६), आदि उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए । खत्री जी के परम्परा का निर्वाह जौहर जी ने 'मयक मोहनी या माया महल' (१९०१), 'कमल कुमारी' (१९०२), 'निराला नकाबपोश' (१९०२), 'भयानक खून' (१९०३) आदि तिलिस्मी उपन्यासों की रचना द्वारा किया । किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'पुतली महल' (१९०८), भी इसी वर्ग की रचनाएँ हैं । आगे चल कर देवकी नन्दन खत्री के सुपुत्र दुर्गा प्रसाद खत्री ने भूतनाथ के शेष भागों को लिखकर इस परम्परा को आगे बढाया ।

जासूसी उपन्यासों का प्रर्वतन गोपालदास गहमरी ने किया था। गहमरी जी अग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार आर्थर कानन डायल से प्रभावित थे– उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'ए स्टडी फार स्कारलेट' को उन्होने 'गोविन्दराम' (१९०५), शीर्षक से हिन्दी में रुपान्तरित भी किया । गहमरी जी के जासूसी उपन्यास द्विवेदी युग मे अत्यन्त लोकप्रिय हुए। 'सरकटी लाश' (१९००), 'चक्करदार चोरी' (१९०१), 'जासूस की भूल'(१९०१), 'जासूस पर जासूसी'(१९०४), 'जासूस चक्कर में'(१९०६), 'इन्द्रजालिक जासूस'(१९१०), 'गुप्त भेद'(१९१३), 'जासूस की ऐयारी'(१९१३)आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं ।

अद्भुत घटना प्रधान उपन्यास की रचना तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासो से भिन्न तकनीक पर की जाती थी । इसमें इसी लोक के किसी रहस्यमय कोने का वर्णन किया जाता था। विट्ठलदास नागर का 'किस्मत का खेल'(१९०५), बाँके लाल चतुर्वेदी का 'खौफनाक खून'(१९१२), निहाल चन्द्र वर्मा का 'प्रेम का फल या मिस जौहरा'(१९१३), प्रेम विलास वर्मा का 'प्रेम माधुरी या अनग कान्ता'(१९१५), दुर्गा प्रसाद खत्री का 'अद्भुत भूत'(१९१६), इस शैली के मुख्य उपन्यास हैं ।

प्रस्तुत युग के ऐतिहासिक उपन्यास प्राय मुस्लिम काल से सामग्री लेकर लिखे गये किन्तु उनमे इतिहास तत्व की कमी है। लेखकों ने इतिहास की ऐसी घटनाओ का चयन किया है जो पाठको के कुतूहल एव रहस्य रोमाच वृत्ति को पुष्टि कर सके । किशोरी लाल गोस्वामी, गगा प्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त और मथुरा प्रसाद शर्मा इस काल के उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यासकार है। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी'(१९०२), 'सुल्ताना रजिया बेगम के रग महल में हलाहल'(१९०४), 'मल्लिकादेवी वा बग सरोजनी'(१९०५), और 'लखनऊ की कब्र व शाही महलसरा'(१९१७), आलोच्य युग के चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास हैं । उपयुक्त विधाओं के उपन्यासों का अध्ययन करने पर पाया जाता है कि ये सभी उपन्यास केवल पाठकों के मनोरजन को केन्द्र में रख कर लिखे गये हैं, इसका कोई सामाजिक प्रदेय नही है ।

तिलिस्म ऐयारी और जासूसी प्रधान कथा साहित्य के इस युग में समाज की नींव से जुडे कुछ ऐसे सामाजिक उपन्यासों का प्रणयन किया गया जिसमें वर्तमान सामाजिक समस्याओं के वर्णन के साथ - साथ उनके समाधान के मार्ग भी दिखलाये गये है । आलोच्य - कालीन सामाजिक उपन्यासो मे सुधारवादी जीवन दृष्टि ही प्रधान है । किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा और गगा प्रसाद गुप्त सनातन धर्म के समर्थक थे। नवीन सुधारवादी आन्दोलनों के विरुद्ध होते हुए भी ये लेखक जीवन मे नैतिकता की प्रतिष्ठा के लिए प्रयासरत दिखते हैं । किशोरीलाल गोस्वामी जी ने सती साध्वी देवियों के आर्दश प्रेम के साथ ही अवैध प्रेम, विधवाओ के व्यभिचार वेश्याओं के कुत्सित जीवन और देवदासियों की विलासिता का अपने उपन्यास के माध्यम से विरोध किया है ।

द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा (१८६३-१९३१),

किशोरीलाल गोस्वमी, अयोध्या सिह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, राजा राधिकारमण प्रसाद सिह और मन्नन द्विवेदी उल्लेखनीय हैं । लज्जाराम के 'आदर्श -दम्पति' (१९०४), 'बिगडे घर का सुधार अथवा सती सुखदेवी'(१९०७), और 'आर्दश हिन्दू'(१९१४), उपन्यासो का विशेष महत्व है । किशोरीलाल गोस्वामी के 'लीलावती का आर्दश सती'(१९०१), 'चपला वा नव्य समाज'(१९०३-१९०४), 'पुनर्जन्म वा सौतिया डाह'(१९०७), 'माधवी माधव वा मदन मोहनी'(१९०३-१९१०), और 'अगूठी का नगीना'(१९१८), उपन्यासों मे सामाजिक सदर्भो की प्रमुखता से व्याख्या की गयी है। अयोध्या सिह उपाध्याय ने 'अधखिला फूल' उपन्यास के माध्यम से अन्धविश्वास पर कुठाराघात किया। इनकी एक अन्य औपन्यासिक कृति 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' मे सामाजिक आदर्श का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया गया है ।

मेहता लज्जाराम शर्मा के उपन्यास एक प्रकार से समस्यामूलक कहे जा सकते हैं । उनके उपन्यासो मे हिन्दू समाज की समस्याओं को व्यापक महत्व दिया गया है, परन्तु उनकी दृष्टि सनातनी हिन्दू परम्परा तक ही सीमित थी । 'आदर्श हिन्दू' मे लेखक अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का विरोध करता है। लेखक विधवा विवाह को तो व्यभिचार के समकक्ष मानता है। 'आदर्श हिन्दू' मे एक ऐसी पतिव्रता स्त्री का चित्रण किया गया है जो पति के दाहिने अँगूठे की नित्य पूजा करती है, पति जिस कार्य से प्रसन्न रहे वही कार्य करती है और उसकी इच्छा को अपनी इच्छा समझती है। मेहता जी जातिगत भेद - भाव और छूआ - छूत को कोई सामाजिक समस्या नही मानते। 'आर्दश हिन्दू' मे उन्होने उस वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है जिसमें ब्राह्मण, 'ब्राह्मण' और शूद्र, 'शूद्र' बनें रहें । इस दृष्टि से मेहता लज्जाराम शर्मा का सामाजिक दृष्टिकोण दुराग्रही और समय से पिछडा हुआ माना जा सकता है किन्तु इस उपन्यास मे ईश्वर - परायणता ,परोपकार, नैतिकता ,चरित्र , सेवा, सयम व राष्ट्रीय भावना आदि से युक्त, ऐसे उज्ज्जवल पक्ष भी हैं जिनमे रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा के आदर्शों की झलक देखी जा सकती है ।

देश की वर्तमान दशा एव सामाजिक मूल्यों के ह्रास के प्रति जो पीडा स्वामी विवेकानन्द मे थी वही पीडा 'आदर्श हिन्दू' में भी देखी जा सकती है । उपन्यास की भूमिका में ही उपन्यासकार नैतिक मूल्यों की गिरावट की बात लिखता है - ''अब थोडों को छोडकर न कहीं वह

मगलाचरण है, न वह वन्दना है और न वह क्षमा प्रार्थना । अब है, प्राय देशोउन्नति की डीगे, परोपकार का आभास और आत्मश्लाघा की झलक।''[१]

समाज की अवनति एव अवदशा के मध्य उसकी उन्नति के प्रति जो आशावादी दृष्टि स्वामी विवेकानन्द मे थी वही आशावाद मेहता जी के उपन्यास में देखा जा सकता है - ''नहीं - नहीं। ऐसा न कहो। यह कहो कि जो अस्त होता है, उसका सूर्य भगवान की तरह उदय भी होता है।''[२]

रामकृष्ण देव के मानवतावादी चिन्तन एव विवेकानन्द के नववेदान्त की भावना को अपने उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' में मेहता जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है - ''मोक्ष होने का केवल एक यही साधना नही है (पुत्र - प्राप्ति)। बडे-बडे साधन हैं और मैं मानता हूँ कि सबसे बढ कर साधन चार हैं । एक परोपकार दूसरा किसी को कष्ट न पहुँचाना तीसरा सच्चाव्यव हार और चौथा परमेश्वर की अनन्य भक्ति ।''[३]

स्वामी रामकृष्ण देव धर्म के वाह्य - क्रियाकलापों की अपेक्षा ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण एव भाव तन्मयता को ही ईश्वर लाभ पाने का श्रेष्ठ साधन बतलाते थे । वे कहते हैं कि वाह्य क्रिया - कलापों की अपेक्षा सच्चे हृदय से अपने मन को ईश्वर में लीन कर देना ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। मेहता जी रामकृष्ण देव की इस भावधारा से प्रभावित होकर अपने उपन्यास 'आर्दश हिन्दू' मे जैसे वे उन्हीं की बात को दुहरा रहे हैं - ''हजार वर्ष तक माला फेरने से क्या ? समस्त जप-तप से, जन्म भर खाक रमाने, माला फेरते-फेरते मनका घिस डालने का परिणाम नही है । यदि एक मिनट भी इस तरह परमेश्वर के चरणो में अपना मन लीन होकर अपनी सुधि - बुधि जाती रहे तो होगया काम। सब जप और तप, तीर्थ और पूजा, सब ही इसके साधन है।''[४]

मेहता लज्जाराम शर्मा के एक अन्य उपन्यास 'आर्दश दम्पति' में भी रामकृष्ण

---

१ 'आर्दश हिन्दू' मेहता लज्जाराम शर्मा, भूमिका से,
२ वही पृष्ठ ८,
३ वही पृष्ठ १३
४ वही पृ० ९८

विवेकानन्द भावधारा का प्रभाव स्पष्टत देखा जा सकता है। इस उपन्यास मे स्त्री के आर्दश और चरित्र का उदात्त वर्णन किया गया है। रामकृष्ण देव सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति मातृभाव रखते थे। वे जीव की सेवा को मानव का परम कर्तव्य मानते थे, उनका यह भाव तथा उनकी धार्मिक दिव्यता का प्रभाव इस युग के उपन्यास में सहज ही देखा जा सकता है - "जो धर्म को प्राण से भी बढकर समझते हैं, जिन्हें धर्म रक्षा के लिए विष पीना भी अमृत से अधिक मीठा जान पडता है जो पुरुष पर स्त्री को माता के समान मानते हैं जो परोपकार के लिए अपना प्राण तक दे देना अपना प्यारा धर्म समझते है वे ही जानेगें ।"[१]

रामकृष्ण देव व विवेकानन्द नारी को दीन हीन एव अबला के रूप में नहीं देखते। उनकी यह भावना 'आर्दश दम्पति' उपन्यास मे अभिव्यन्जित होती है -"वो अबला इस समय प्रबला बन कर महिषासुरमर्दिनी का रूप धारण कर चुकी थी।"[२]

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास 'गुलबहार' (यह उपन्यास 'सरस्वती' १९०२ के जुलाई अक कहानी के रूप में प्रकाशित की गयी है परन्तु लेखक एव 'वृहद उपन्यास कोष' के सम्पादक डा० गोपाल राय के द्वारा इसे उपन्यास मानने पर इसका विवेचन उपन्यास के रूप में ही किया जा रहा है) मे मीर कासिम की राष्ट्रभक्ति एव उसकी वीरता का ओजस्वी वर्णन किया गया है तथा उसके बेटे बहार एव उसकी बेटी गुल की राष्ट्र भक्ति एव वीरता का वर्णन किया गया है। 'गुल बहार' में मीर कासिम, बहार एव गुल की राष्ट्रीय भावना में विवेका नन्द की राष्ट्रीयता का भाव देखा जा सकता है।

मेहता लज्जा राम शर्मा के उपन्यास 'हिन्दू गृहस्थ' मे देश की अर्थिक उन्नति के लिए उद्योग एव व्यापार के विकास एव किसान मजदूर के उत्थान के लिए जो विचार विवेकानन्द रखते थे, उनके उन्हीं विचारों का अनुमोदन किया गया है। इस उपन्यास में गॉवो के औद्योगीकरण, नये ढग से उन्नत खेती, किसानों को कर्ज की सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था, देशी व्यापार तथा देशी कारीगरी की उन्नति, जुलाहो के लिए नये ढग के लाइ-शटल से हैण्डलूम पर कपड़ा बुनने

---

१ आदर्श - दम्पति मेहता लज्जाराम शर्मा, पृष्ठ १६४
२ वही पृष्ठ १५

की शिक्षा, स्वदेशी भण्डार की स्थापना आदि का समर्थन किया गया है ।

अयोध्यासिह उपाध्याय के उपन्यासों - 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' में रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है । 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' मे प्राचीन रूढियों का विरोध जाति - प्रथा का कुपरिणाम एव मानवीय सवेदनाओं का व्यापक वर्णन मिलता है । नायक देवनन्दन और नायिका देवबाला का विवाह हर दृष्टि से उचित एव सभी तरह से मेल खाते हुए भी केवल इसलिए नही हो पाता कि नायक, नायिका से उपजाति में थोडा नीचे का है । इस सम्बन्ध मे नायिका देवबाला का पिता रमाकान्त अपनी दुराग्रह इस तरह व्यक्त करता है - "देवनन्दन का व्याह हमारी लडकी के साथ नही हो सकता । यह मै जानता हूँ, देवनन्दन का बाप बडा धनी है, देवनन्दन भी देखने - सुनने, पढने-लिखने, सब बातों में अच्छा है पर हाड मे तो अच्छा नही है ।"

उक्त कथन के द्वारा वर्तमान समाज की जातिगत विसगतियों को देखा जा सकता है और इसी जातीय विंसगतियों के कारण नायिका देवबाला का विवाह एक ऐसे सजातीय किन्तु निठल्ले और अयोग्य व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है, जिसके कारण उसे उम्र भर दु ख भोगते हुए जीवन व्यतीत करना पडता है। यहॉ लेखक स्वामी विवेकानन्द की तरह जाति व्यवस्था की सकुचित विचारधारा का अपने उपन्यास के कथानक के माध्यम से विरोध करता है ।

जिसे तरह से स्वामी विवेकानन्द ने समुद्र यात्रा करके सडी गली पुरानी मान्यताओं का विरोध किया था उसी प्रकार उपन्यास में नायिका की मॉ हेमलता औचित्यहीन पुरानी मान्यताओं का विरोध करती है । अपने पति रमाकान्त के इस कथन पर - " तुम्हारी समझ ही कितनी । तिरिया ही न हो । बाप - दादे से जो बात होती आयी है उसको कोई कैसे छोड सकता हैं ।" इसके जबाब में हेमलता कहती है –"बाप दादे जो कर गये हैं, वही करना चाहिए पर बाप दादे ने जो भूल की हो, कोई बुरा काम किया हो तो उसको न करना ही सब लोग अच्छा समझते हैं ।"

इस तरह हम देखते है कि अयोध्या सिह उपाध्याय इस कथन के माध्यम से विवेकानन्द के सदृश अन्धी परम्पराओं को अपनाने एव गलत परम्पराओं के प्रति विरोध व्यक्त करते हुए समाज को नयी चेतना का सन्देश देते हैं । उपन्यासकार अपने कथानक में नया मोड देते हुए लम्पट एव मक्कार पति के द्वारा दु ख भोग रही देवबाला का मिलन सन्यास ब्रत धारण किये देवनन्दन से कराते हैं जिन्होंने अपने जीवन का मूल उद्देश्य जन कल्याण - एव लोकमगल की भावना को बना लिया था । सन्यासी वेशधारी देवनन्दन द्वारा पीडित देवबाला प्रश्न करती है - तुम कौन हो ? इसके उत्तर मे देवनन्दन कहता है -''हम कोई होवें, पर विपत में पडे को उबारना ही हमारा धरम है, इस माटी के पुतले के लिए इससे अच्छा कोई दूसरा काम नही हो सकता। विपत पडने पर किसी को सहारा देना ही मानुष का काम है, जो दु खियों के दु ख को नहीं जानता, पराई पीर से जिसका कलेजा नही कसकता, दु ख में पडे को जो नहीं उबारता, भूखो कगालों पर जो नहीं पसीजता वह मानुख नही पिशाच है।'' इस तरह हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव की दीन दुखियों के प्रति सेवाभाव एव मानवतावादी दृष्टि तथा विवेकानन्द के नव वेदान्त का प्रभाव नायक देवनन्दन में स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

आगे नायक द्वारा एक धनी व्यापारी की प्राण रक्षा करने पर बदले में जब व्यापारी धन देने लगता है तो देवनन्दन कहता है - ''रुपया लेकर मैं क्या करूँगा तुम इन रूपयों को अपने पास रखो, इनको किसी धरम के काम में लगाओ । भूखों कगाला में इनको बॉटो, इसी से मेरे जी को सुख मिलेगा धरती पर इससे बढकर कोई दूसरा काम नही है ।''यहाँ यह द्रष्टव्य है कि रामकृष्ण देव द्वारा तीर्थ यात्रा प्रसग मे मथुरबाबू से दीन -दुखियों को अन्न , धन ,वस्त्र बॉटकर उनके दु ख को बॉटने की बात कही गयी थी, और जब तक ऐसा नहीं हो गया वे आगे नहीं बढे। इससे उन्हें काफी सुख और सन्तोष की प्राप्ति हुयी । इसी तरह नायक द्वारा भी दीन - दु खी की सेवा मे सुख व्यक्त करने पर यहाँ रामकृष्ण देव का प्रभाव देखा जा सकता है ।

कथानक के अन्त मे सन्यासी वेश धारी नायक देवनन्दन अपना मानवतावादी दृष्टिकोण इस कथन के द्वारा व्यक्त करता है—"भभूत लगाने से क्या होगा? गेरुआ पहनने से क्या होगा ? घर द्वार छोडने से क्या होगा ? साधू होने से ही क्या जो दूसरे का दु ख, मैं न दूर कर सकूँ, दु खिया को सहारा मैं न दू जिस काम को करने से दस का भला हो उसमें जी न लगाऊॅ देश के बुरी रीत के दूर होने के लिए जतन करना ,लोगों के झूठे घमण्डो को समझा बुझाकर छुडाना जिससे एक को कौन कहे लाखों का भला होगा क्या मेरा काम नहीं है ।"

यहाँ तक आते-आते नायक देवनन्दन रामकृष्ण देव के शिष्य युगनायक विवेकानन्द के रूप मे मूर्तमान हो उठता है एव अपने विचारों के द्वारा वह प्रकारान्तर से विवेकानन्द की ही भावधारा का प्रत्यक्षत अनुमोदन करता है ।

अयोध्या सिह उपाध्याय के दूसरे उपन्यास 'अधखिला फूल' में भी लोकहित एव जनकल्याण की भावना विस्तृत रूप में देखी जा सकती है । कथानक का नायक देवस्वरूप अपने सत्कर्मों एव सद्विचारों से कामिनी मोहन (धनी रईस) द्वारा बहुत सा धन प्राप्त होने पर अपने ठाट-बाट मे ने खर्च करके दीन - दुखियों के उद्धार एव उनके कल्याण के कार्यों मे सारा धन खर्च करता है । इन पैसो से उसने एक धर्मशाला खुलवाया जिसके दरवाजे पर लिखा था -

"आप आकर रहे यहाँ पर आज
भाग ऐसे कहाँ हमारे है ।"

इसमे यात्रियो के रहने और एव भोजन की नि शुल्क सुविधा थी । इससे कुछ दूर बिना माँ - बाप के सैकडों लडके- लडकियों हेतु एक अनाथालय बनवाया गया था । उन अनाथों के माँ बाप, कथानक की नायिका देवहूती व नायक देवस्वरूप है । इस अनाथालय के द्वार पर लिखा था -

"है सहारा जिसे नही, उस पर
कौन आसू नही बहावेगा।"

इसके अलावा उनके द्वारा एक पाठशाला भी खोली गयी जिसमें गॉंव के सभी जातियों के लडके पढते थे। उसके द्वार पर लिखा था -

"जिसने कुछ भी नही पढा लिखा,
खो दिया हॉथ का रतन उसने।"

इसके आगे गॉंव के दीन दु खी और बेसहारा को भोजन कराने केलिए नि शुल्क भोजनालय की व्यवस्था की गयी थी। उसके द्वार पर लिखा था—

"मत कभी पेटजलो को भूलो,
भूख की पीर बुरी होती है।"

गॉंव के रोगी व्यक्तियो की देख भाल के लिए नि शुल्क चिकित्सालय की व्यवस्था भी की गयी थी। उसके द्वार पर लिखा था—

"हम उन्हें भूला समझते है बहुत,
रोगियो पर जो दया करते नहीं।"

इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यासकार, नायक के जन कल्याणकारी कार्यो के माध्यम से विवेकानन्द के मानवतावादी सन्देशों का प्रचार करवाते हैं।

हिन्दी उपन्यास के कथा सम्राट प्रेमचन्द्र का आविर्भाव द्विवेदी युग के अन्तिम चरण में होता है। यद्यपि वे उर्दू में दो उपन्यासों की रचना पूर्व में कर चुके थे परन्तु हिन्दी में इनका प्रथम उपन्यास १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ। द्विवेदी युग में प्रकाशित इनका एक मात्र उपन्यास 'सेवा सदन' ही है। इनके शेष उपन्यास इस काल खण्ड की समय सीमा के बाहर लिखे गये। 'सेवा सदन' समाज सुधार की भावना को केन्द्र मे रख कर लिखा गया पूर्णत सामाजिक उपन्यास है। इसमें तद्‌युगीन समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को उद्‌घाटित करते हुए उसके समाधान का मार्ग भी दिखलाया गया है। रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा का प्रभाव 'सेवा सदन' में अनेक स्थलो

पर देखा जा सकता है ।

'सेवा सदन' का कथानक सुमन नाम की एक ऐसी महिला को केन्द्र में रख कर लिखा गया है, जिसका सम्पन्न परिवार में पालन पोषण के बाद परिस्थितियों वश अपेक्षाकृत गरीब युवक से शादी कर दी जाती है । नैतिकता एव विलासिता के उहापोह में डूबते उतराते घर के ठीक सामने रहने वाली वेश्या की वैभवपूर्ण जीवन शैली पर आकृष्ट होकर वह अपने वर्तमान से असन्तुष्ट रहने लगी। इसकारण पति से सुमन का आये दिन विवाद होने लगा और एक दिन बात अधिक बढने पर परिस्थितिया सुमन को दाल मडी के कोठे तक पहुॅचा देती हैं । समर्पित समाजसेवी बाबू विठ्ठल दास तथा पद्मसिह के सार्थक प्रयासों से सुमन को वहाँ से बाहर निकाला जाता है। अनके घटनाओ के बाद अन्तत सुमन अपना जीवन समाज सेवा के कार्यों में समर्पित कर देती है ।

उपन्यास के चरित्र विट्ठल दास समर्पित समाज सेवी हैं । वे निजी स्वार्थो को भूल कर दीन - दु खियों की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे । उनकी समाज सेवा की यह भावना एव दीन - दु खी को उपर उठाने का सद्प्रयास स्वामी विवेकानन्द के जीवन एव उनके आदर्शों से प्रभावित है। विट्ठल दास के चरित्र का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "विट्ठल दास जाति सेवा की धुन में अपने सुख एव स्वार्थ को भूल गये थे । कही अनाथालय के चन्दा जमा करते फिरते है। कही दीन विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति का प्रबध करने में दत्तचित्त है । जब जाति पर कोई भयकर सकट आ पडता तो उनका देश प्रेम उमड पडता था । अकाल के समय सिर पर आॅटे का गट्ठर लादे गॉव-गॉव घूमते थे । हैजे और प्लेग के दिनो में उनका अत्मसमर्पण और विलक्षण त्याग देख कर आश्चर्य होता है । अभी पिछले दिनों जब गगा में बाढ आयी थी तो महीनों घर की सूरत नही देखी । अपनी सारी सम्पत्ति देश को अर्पण कर चुके थे, पर इसका तनिक भी अभिमान न था ।"[१] यहॉं हम देखते हैं कि विट्ठल दास रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की मानवीय सवेदना एव सेवाभाव से ओत - प्रोत है ।

देश के गौरवपूर्ण अतीत,यहाँ की आदर्श मयी नारी और सस्कृतिक विराटता का

---

१ सेवा सदन - प्रेमचन्द पृ० ६५

जो भाव विवेकानन्द में था वही भाव व्यक्त करते हुए विट्ठल दास सुमन से कहते हैं -"सुमन तुम सच कहती हो बेशक हिन्दू जाति अधोगति को पहुँच गयी और अब तक उसकी मर्यादा की रक्षा की है । उन्हीं के सत्य और सुकीर्ती ने उसे बचाया है । केवल हिन्दुओ का लाज रखने के लिए लाखो स्त्रीयॉ आग मे भस्म हो गयी हैं । यही वह विलक्षण भूमि है जहॉ स्त्रियॉ नाना प्रकार के कष्ट भोगकर अपमान और निरादर सह कर पुरुषो की अमानुषिक क्रूरता को चित्त में न लाकर हिन्दू जाति का मुख उज्ज्जवल करती थी।"[१] विवेकानन्द की सेवा और सन्तोष की भावना को व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द सुमन के द्वारा कहलवाते हैं -- "वह इन्द्रियो के सुख को ,अपने आदर को ,जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती थी, उसे आज मालुम हुआ कि सुख, सन्तोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा भाव से।"[२]

दासता एव गुलामी की भावना का स्वामी विवेकानन्द मुखर विरोध करते थे । वे किसी भी स्तर पर एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को अपने अधीन रखने के विरुद्ध थे । उनकी इस भावना को व्यक्त करते हुए कथानक के पात्र कुँवर कहते हैं– "जो कुत्ते पालते हैं और अपने देशवासियो को नीच समझते हैं गुलामी के मानसिक ,आत्मिक, शरीरिक ,आदि विभाग करना भ्रान्तिकारक है । गुलामी केवल आत्मिक होती है और दशायें इसी के अन्तर्गत है।"[३]

देश के किसानों के प्रति स्वामी विवेकानन्द की तरह सवेदना व्यक्त करते हुए कुॅवर आगे कहते है, "वे हमारे दीन कृषक हैं जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं,अपने जातीय भेष - भाषा और भाव का आदर करते हैं और किसी के सामने सिर नही झुकाते है ।"[४] यहॉ द्रष्ट्रव्य है कि स्वामी विवेकानन्द ने किसानों के द्वारा दु ख सहते हुए भी मौन रहकर लगातार काम करते रहने के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त किया था । स्वामी विवेकानन्द नारी उत्थान की बात सदैव किया करते थे एव उनके प्रति आदर भाव रखने के लिए जन मानस को प्रेरित किया करते थे । नारी के प्रति उसी आदर भाव की इच्छा कथानक के पात्र गजानन्द के द्वारा इस तरह व्यक्त हुयी है-"ईश्वर वह दिन कब लावेगा कि हमारे जाति मे स्त्रियों का आदर होगा आदर या प्रेमविहीन महिला,महलों

१ सेवा सदन - प्रेमचन्द पृ० ६६
२ वही पृ० ६८

मे भी सुख से नही रह सकती।''[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सेवा सदन' मे रामकृष्ण - विवेकानन्द की मानवता , राष्ट्रगौरव, देशगौरव, नारीउत्थान स्वाधीनता का महत्व एव कृषकों के प्रति प्रेम - आदि भाव भरे पडे हैं ।

द्विवेदी युगीन उपन्यासों का समग्र अध्ययन करने पर हम यह देखते हैं कि इस युग के उपन्यासो मे तिलिस्म एव जासूसी की प्रवृत्ति की प्रधानता होने के बाद भी, अच्छे सामाजिक उपन्यासो का प्रणयन हुआ । अल्प सख्या में होने के बाद भी इनकी सार्थकता एव सामाजिक उपादेयता को कम करके नहीं देखा जा सकता । इस युग के सामाजिक उपन्यासों मे समाज एव देश की विभिन्न समस्याओं के प्रति ध्यान आकृष्ट कराते हुए रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित होकर उनके समाधान का समुचित एव प्राशगिक मार्ग भी दर्शाते हैं । इस तरह द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासों में रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है ।

---

१ सेवा सदन - प्रेमचन्द पृ० २४५

(ग) भावधारा का कहानी पर प्रभाव

हिन्दी साहित्य में कहानियो का प्रारम्भ द्विवेदी युग मे ही हुआ। भारतेन्दु युग मे कहानियाँ नही लिखी गयीं । 'सरस्वती' (सन्१९००) के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानियों का जन्म मान्य है। इस पत्रिका में शेक्सपियर के अनेकों नाटकों का अनुवाद कहानी रूप मे प्रकाशित हुए। 'सिम्बलीन'(Cymbeline)[1], 'एथेन्स वासी टाइमन'(Tkimon of Athens)[2], 'पेरीक्लीज'(pericles)[3], 'कौतुकतमय मिलन'(Comedy of Errors)[4], जैसी रूपान्तरित कहानियाँ 'सरस्वती' के प्रारम्भिक अको मे प्रकाशित हुई । इसके साथ ही साथ इसमें बहुत से सस्कृत नाटक भी कहानी रूप में प्रकाशित हुए जिनमें 'रत्नावली' तथा 'मालविकाग्निमित्र'की कहानियाँ उल्लेख्य हैं ।

'सरस्वती' में हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी का प्रकाशन 'इन्दुमती'[5] नाम से किया गया । यह पूर्णतया मौलिक कृति नही कही जा सकती क्यों कि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' (The tempest) की छाप बहुत स्पष्ट है परन्तु इसके लेखक किशोरीलाल गोस्वामी ने इसे पूर्णतया भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को वर्तमान शताब्दी की सर्व प्रथम मौलिक हिन्दी कहानी माना गया है। शुक्ल जी लिखते हैं –

''यदि मार्मिकता की दृष्टि से भाव प्रधान कहानियों को चुने तो तीन मिलती हैं 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय', और 'दुलाईवाली' है। यदि इन्दुमती किसी बगला कहानी की छाया नही है तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर दुलाईवाली का नबर आता है।''[6]

---

१ सरस्वती वर्ष - १९०० अक - जनवरी
२ वही अक - फरवरी
३ वही अक - मार्च, अप्रैल
४ वही अक - सितम्बर, अक्टूबर
५ वही अक - जनवरी पृ० १७८
६ हिन्दी साहित्य का इतिहास - राम चन्द्र शुक्ल पृ० ६०३

'इन्दुमती' कहानी की नायिका इन्दुमती अपने पिता के साथ विन्ध्याचल के सघन वन में निवास करती है। उसने अपने छोटे से जीवन काल में केवल अपने पिता को देखा और प्यार किया था, सहसा एक दिन एक पेड के नीचे उसने देखा एक सुन्दर नवयुवक (अजय गढ का राजकुमार चन्द्रशेखर)जो पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी का काम तमाम कर भाग निकला था और भूखा प्यासा पेड के नीचे पडा था। प्रथम दर्शन में ही दोनो के हृदय में प्रेम का सचार हो उठता है । अनेक कठिनाईयों के बाद दोनो का विवाह सम्पन्न हो जाता है। इस तरह प्रेम को केन्द्र में रखकर हिन्दी की प्रथम कहानी की सृष्टि हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय'[१] में दो मित्रों के भावपूर्ण आपसी सवाद एव मित्र का उसकी स्त्री से सयोगपूर्ण मिलन एव सामाजिक पीडा का कारुणिक चित्रण किया गया है। इस कहानी मे मानवीय सवेदनाओ की उदात्त अभिव्यक्ति है । बग महिला कृत 'दुलाई वाली' दो मित्रों के हास परिहास व हॅसी मजाक का वर्णन है । वशीधर का मित्र नवल किशोर नाना प्रकार के कार्यो द्वारा हॅसने हॅसाने का कार्य करता था । वशीधर को रेल से साथ चलने का पत्र लिखकर समय पर वह स्वय ही नही आता है जिससे वशीधर उद्विग्न होता है। अत मे वशीधर को पता चलता है कि रास्ते मे जो महिला मुॅह ढके उसके पास बैठी थी वह और कोई नही नवलकिशोर ही था ।[२]

वृन्दालाल वर्मा कृत 'राखी बन्द भाई'[३] मे रुद्र सिह को भीलों को भगाने पर सम्राट द्वारा ढेर सारा सोना व चॉदी मिलता है जिसके बटवारे को लेकर नागौर राज दिलीप सिह से उनकी दुश्मनी हो जाती है । नागौर राज पर गयासुद्दीन के आक्रमण से उन पर विपत्ति आ पडती है जिससे बचने के लिए उनकी पुत्री पन्ना रुद्र सिह के पास राखी भेजती है और रुद्र सिह दुश्मनी भूल कर एक स्त्री (बहन) की याचना पर नागौर राज की सहायता करता है। इस सम्बन्ध मे रुद्र सिह कहता है - ''एक स्त्री विपत मे फॅसी है वह निस्सहाय है । उसने एक वीर से अपना रक्षक बनने की प्रार्थना की है ।''[४]

१	सरस्वती	वर्ष-१९०३	अक-सितम्बर	पृ० ३०८
२	वही	वर्ष-१९०७	अक-जनवरी	पृ० १७८
३	वही	वर्ष-१९०९	अक-सितम्बर	पृ० ३९०
४	वही	वर्ष-१९०९	अक-सितम्बर	पृ० ३४३

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द दीन दुखी असहाय एव नारी के सहायता के लिए सदैव प्रेरित करते थे, साथ ही साथ दुर्बलता और कायरता को त्याग कर वीर पुरुष बनने की बात करते थे। 'राखी बन्द भाई' कहानी में उनके इस भाव का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

गिरिजा दत्त बाजपेई कृत 'पति का पवित्र प्रेम'[१] मे पूर्णत प्रेम का ही वर्णन है। इसका कोई सामाजिक प्रदेय नही है, मात्र पाठकों का मनोरजन ही इसका अभीष्ट है। इनकी एक अन्य कहानी 'पडित और पडितानी'[२] में बेमेल विवाह का वर्णन किया गया है। इसमें पडित जी की उम्र ४५ वर्ष एव पडितानी की २५ वर्ष है। पडित जी गभीर रचना करना चाहते हैं और पडितानी उनसे तोते के लिए जिद करती है। इस तरह से इस कहानी मे विचार एव उम्र से बेमेल विवाह का विरोध किया गया है। गोपाल राम की कहानी 'चौबे जी की ध्रुपद'[३] केवल मनोरजन को ध्यान में रख कर लिखी गयी है।

हिन्दी कहानियों में कथ्यऔर शिल्प की दृष्टि से चरम उत्कर्ष चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के 'उसने कहा था'[४] नामक कहानी मे प्राप्त होता है। हिन्दी कहानियो में पूर्वदीप्तीपद्धति (Flash Back) का सर्वप्रथम प्रयोग इसी से प्रारम्भ होता है। इस कहानी में मानवतावाद की आत्मा का चरम स्पर्श है। अपने साथी सूबेदार सिह एव उसके पुत्र बोधासिह के प्रति अतीव प्रेम व मानवता का प्रदर्शन करते हुए जमादार लहनासिह युद्ध के समय मोर्चे पर उनकी रक्षा में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। यहाँ स्वामी विवेकानन्द के त्याग विशुद्ध प्रेम एव मानवता के भाव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। लहनासिह के प्रेम एव त्याग की भावना को इस कथन के द्वारा समझा जा सकता है - ''सुनिये तो सुबेदारीनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैने कर दिया।''[५]

१	सरस्वती	वर्ष - १९०३	अक - जलवरी	पृ० १५
२	वही	वर्ष - १९०३	अक - दिसम्बर	पृ० ४१९
३	वही	वर्ष - १९१४	अक - अगस्त	पृ० ४४९
४	वही	वर्ष - १९१५	अक - जून	पृ० ३४१
५	वही	वर्ष - १९१५	अक - जून	पृ० ३४७

गुलेरी जी की एक अन्य कहानी 'घटा घर'[१] मे समाज की कुरीति व अध - विश्वास पर तीक्ष्ण प्रहार किया गया है। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए धर्म व पूण्य के नाम पर लोगों को भ्रमित करने पर चोट करते हुए गुलेरी जी कहानी में लिखते हैं – "पहले स्थल फिर जगह फिर दीवाल और फिर कौन सी दीवाल (उत्तर या दक्षिण) छूने से अधिक पूण्य होगा और अन्त में अपने व्यावसायिक लाभ के लिए वहॉ के लोगों ने कहा कि घटाघर के घटे की आवाज सुनने से ही पूण्य होगा।"[२] यहॉ हम देखते हैं कि धर्म के वाह्य आडम्बर, कुरीति एव अन्धविश्वासों के प्रति जो विरोध स्वामी विवेकानन्द के स्वर मे मुखरित हुआ है कहानी के कथन से ही वही भाव अभिव्यजित हो रहा है। तर्क और ज्ञान की कसौटी पर कसे बिना किसी भी मान्यता को मानने का स्वामी विवेकानन्द विरोध करते थे। 'घटाघर' कहानी में उन्ही अधी मान्यताओं का विरोध गुलेरीजी ने भी किया है। 'घटाघर' पर अधी आस्था रखने वाले लोगो पर व्यग करते हुए वे लिखते हैं - "यात्रा का चरम उद्देश्य बाहर की दीवाल को स्पर्श करना ही रह गया क्यो कि वह भी भाग्यवानो को ही मिलने लगा। और भी समय बीता घटाघर सूर्य से पीछे रह गया। सूर्य क्षितिज पर आकर लोगो को उठाता और काम में लगाता घटाघर कहता कि अभी सोये रहो।"[३]

गुलेरी जी की एक अन्य कहानी 'धर्म परायण रीछ' में दुष्ट व्याध की लगातार स्वार्थ के बाद भी रीछ का सेवा - भाव भी कम नही होता। इसमें रीछ भारतीय जनता एव व्याध अग्रेजी शासन का प्रतीक है। व्याध द्वारा यह कहने पर कि उसके पत्नी और बच्चे भूॅखे है रीछ ने हाथ जोड कर कहा - "नाथ। आज आपकी छुरिका त्रिवेणी में यह देह स्नान करके स्वर्ग को जाना चाहता है। यदि इस दुर्मास से माता और भाई तृप्त हों और इस जड चर्म से उनकी जूतिया बने तो आप तत् सद्य करें व्याध ने बर्छी उठाकर रीछ के हृदयमे भोंक दी।"[४] रीछ द्वारा सेवा उदारता व त्याग का महान प्रदर्शन व्यक्त किया गया है जो स्वामी रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की भावधारा से मेल खाता है। 'सुखमय जीवन'[५] एव 'बुद्धू का कॉटा'[६] में प्रेम का सच्चा एव सरल

१	वैश्योपकारक	वर्ष - १९०४	सख्या - ८
२	वही	वही	वही
३	वही	वही	वही
४	वही	वही	वही
५	भारत मित्र	वर्ष - १९११	
६	पाटलिपुत्र	वर्ष - १९१४	

वर्णन किया गया है । गुलेरी जी की अन्तिम किन्तु अधूरी कहानी 'हीरे का हीरा'[१] में नायक फौज का सिपाही है। चीन से लडाई में एक पैर कट जाने पर लकडी के पैर से ठक ठक की आवाज करते हुए घर आने कारुणिक चित्रण किया गया है । नायक के माध्यम से लेखक ने कहानी मे स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रप्रेम एव देश के प्रति समर्पण भाव को व्यक्त किया है ।

ज्वाला दत्त शर्मा की कहानी 'अनाथ बालिका'[२] मे डाक्टर (राजाबाबू) की मानवता एव सेवा भाव का व्यापक वर्णन किया गया है। अनाथ बालिका (छोटी) की मृत्यु शय्या पर पडी रुग्ण माँ अपनी बालिका का हाथ डाक्टर को पालन पोषण एव परवरिश के लिए पकडवाती हुयी कहती है - ''राजाबाबू! तुम दीनबन्धु हो इसलिए ईश्वरवत पूज्य हो ।''[३] यहाँ स्वामी विवेकानन्द का जीव की सेवा करना ही ईश्वर की सेवा है तथा जीव ही शिव है - भाव कहानी के कथन के माध्यम से व्यक्त होता है । डाक्टर का भतीजा सतीश भी दीन - दुखी की सहायता एव परोपकार की भावना से युक्त है। उसके व्यवहार के सम्बन्ध में कहानी कार लिखते है - ''परोपकार के लिए दत्त चित्त रहना उसका स्वभाव सा हो गया है । — अनेक गरीब विद्यार्थियों की उसने आर्थिक सहायता की है। किसी लडके के रोगग्रस्त होने पर सहोदर वत उसने उसकी सुश्रुषा भी की है।''[४]

कहानीकार ने एक अन्य कहानी 'भाव परिर्वतन'[५] के माध्यम से यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि नि स्वार्थ सेवा भाव से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है तथा क्रूर तम व्यक्ति का भी हृदय परिर्वतन हो सकता है। कहानी में राजाराम नाम का पात्र एक कूर और निष्ठुर जमींदार है जो किसानों और मजदूरों पर अनेक जुल्म और अत्याचार करता है । उसे प्लेग का रोग होने पर सभी ने उससे मुँह मोड लिया । उसकी इस दयनीय अवस्था में मदन मोहन नाम का गरीब छात्र नि स्वार्थ भाव से उसकी सेवा सुश्रुषा करता है। प्लेग के सकामक रोग होने के कारण डाक्टरों द्वारा रोगी से दूर रहने की सलाह पर भी मदनमोहन अपने प्राणो की परवाह न करते हुए राजाराम के प्लेग के गाठों की मवाद तक साफ करता था ।

१	गुलेरी रचनावली - १	स० डॉ मनोहर लाल		
२	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - फरवरी	पृ० १०७
३	वही	वही	वही	पृ० १०८
४	वही	वही	वही	पृ० ११०
५	वही	वर्ष - १९१६	अक - मई	पृ० ३१३

यहाँ स्मरणीय है कि जब रामकृष्ण देव गले के असाध्यकैंसर रोग से ग्रस्त थे और उनके गले के घाव से निकलने वाले सक्रामक रोगाणुओं के द्वारा रोग ग्रस्त होने की सभावना के डर से डाक्टरो ने स्वामी विवेकानन्द को उनसे दूर रहने के लिए कहा तब स्वामी विवेकानन्द ने इन बातो का तीव्र प्रतिकार करते हुए अदम्य सेवा भाव से अपने गुरू की सुश्रुषा की। विवेकानन्द के इसी सेवा भाव से अनुप्राणित मदन मोहन की सेवा से क्रूर जमींदार का हृदय परिर्वतित हो जाता है। राजाराम जैसा स्वार्थी और निकृष्ट व्यक्ति भी दीन - दुखियों की सेवा की इच्छा करने लगा। वह कहता है – ''यदि इस बिमारी से छुटकारा मिला तो दीन दुखियो की सेवा करने का मैं भी सौभाग्य प्राप्त करूँगा।''[१]

राजाराम के इस हृदय परिर्वतन पर लेखक उसके मन में उपजे मानवीय गुणों का वर्णन करते हुए लिखता है – ''अब उसका हृदय पर - पीडन से कोसों भागने लगा। दीनों की सहायता करना किसानो की रक्षा करना विधवाओं का पोषण करना और रोगियों की परिचर्या करना उसके मुख्य उद्देश्य बनें।''[२]

विवेकानन्द के रुग्ण होने पर डाक्टरों द्वारा स्वास्थ्य लाभ के लिए दार्जिलिग भेजे जाने पर अचानक बगाल में प्लेग फैलने का समाचार सुन कर वे अपना प्रवास स्थगित कर प्राण - प्रण से रोगीयों की सेवा में लग जाते हैं, स्वामी विवेकानन्द की सेवा भाव का प्रत्यक्ष प्रभाव इस कहानी में देखा जा सकता है।

ज्वाला दत्त की एक अन्य कहानी 'विरक्त विज्ञानानन्द'[३] मे भी मानव प्रेम, दीन दुखी की सहायता, भूखों को भोजन देना व अशिक्षितों में शिक्षा का प्रसार करना आदि भावनाएँ होने के कारण इसमें स्वामी विवेकानन्द की मानवता तथा जीव सेवा का प्रभाव परिलक्षित होता है। कहानी के नायक विज्ञानानन्द गॉव मे रह कर इनके उत्थान के लिए सेवा कार्य करते थे। सेवा भाव की व्याख्या करते हुए विज्ञानानन्द कहते हैं - ''मनुष्य समाज की सेवा करना भी ईश सेवा करना ही है। मनुष्य प्रेम और ईश्वर प्रेम में कुछ भी भेद नही है।''[४] स्वामी विज्ञानानन्द का यह कथन स्वामी विवेकानन्द की भावधारा से अनुप्राणित है।

१	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - मई	पृ० ३१६
२	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - मई	पृ० ३१६
३	वही	वही	अक - फरवरी	पृ० ८५
४	वही	वही	वही	पृ० ८७

कहानी के नायक विज्ञानानन्द के चरित्र का विश्लेषण करते हुए लेखक लिखते हैं -"वे अन्न धन से भूखों की सहायता करते और रोगियों की परिचर्या करते और भूले भटको को सदुपदेश से सुमार्ग पर ले आते। इसलिए स्वामी जी सर्वप्रिय हो गये थे।"[१]यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ बातों को छोड कर कहानीकार ने कहानी के नायक स्वामी विज्ञानानन्द के चरित्र का सयोजन स्वामी विवेकानन्द के चरित्र से प्रभावित होकर दिया है।

हिन्दी साहित्य मे कहानी विधा का चरमोत्कर्ष प्रेमचन्द के हिन्दी प्रागण में पदार्पण करने से होता है। 'सरस्वती' मे प्रकाशित इनकी कहानी ईश्वरीय न्याय"[२] मे जमीदार भृगुदत्त व उनके मुशी सत्यनारायण का वर्णन है। जमींदार की मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति की देख भाल का गुरुतर दायित्व उनकी पत्नी द्वारा सत्य नारायण को सौप दी जाती है। मानवीय दुर्गुण के कारण सत्यनारायण के मन में लालच आ जाता हैऔर वह जमींदार के एक बडे भू-भाग को हस्तगत करने के लिए कुटिल चाले चलने लगता है। विवाद बढने पर बात न्यायालय तक पहुँच जाती है। साक्ष्य सत्यनारायण के पक्ष में होने पर न्यायालय द्वारा उसे जमीन का मालिक घोषित किया जाता है और यहीं कहानी में मार्मिक मोड आता है। न्यायाधीश द्वारा जमीन सत्यनारायण को सौपे जाने के बाद जमींदारनी उनसे कहती हैं - अब तो जमीन का आपके पक्ष में डिग्री हो गया किन्तु अब आप इतना कह दीजीए की जमीन किसकी है। इतनी बडी कुटिलता इतना बडा छल करके जमीन प्राप्त करने के बाद भी सत्य नारायण अपनी आत्मा की आवाज को मार कर केवल इतना ही नही कह सका कि हॉ जमीन मेरी है। उसकी सुषुप्त आत्मा जाग उठती है और वह कह उठता है कि जमीन आपकी है। असत्य पर सत्य की विजय होती है। कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने मानव मन की दुर्बलता एव कमजोरियों का सशक्त ढग से उद्घाटन करते हुए पाठक को सन्देश दिया है कि अपनी सत्यनिष्ठा एव ईमानदारी, तुच्छ भौतिकपदार्थों के समक्ष डिगने न दें। यहॉ हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द मे सत्यनिष्ठा के प्रति अपूर्व आग्रह था।

प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी 'पच परमेश्वर"[३] में न्याय, सत्य निष्ठा एव दीन के

१	सरस्वती	वर्ष-१९१६	अक-फरवरी	पृ० ८८
२	सरस्वती	वर्ष-१९१७	अक-जनवरी	पृ० २८
३	वही	वर्ष-१९१६	अक-जून	पृ० ३८५

प्रति करुणा का भाव सशक्त रूप में व्यक्त किया गया है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढी मित्रता है। जुम्मन अपनी बूढी मौसी का धन, जमीन लेने के बाद उसका अनादर करने लगता है। न उसे भोजन मिलता है और न ही वस्त्र। दीन दुखी बुढिया अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए न्याय प्राप्त करने के लिए पचो को बुलाती है। जुम्मन के प्रभाव के कारण कोई भी पच उसके विरोध में बोलने का साहस न रखता था। पचायत मे बुढिया अलगू चौधरी को ही अपना पच चुन लेती है। पच का दायित्व पाने के वाद अलगू मित्रता से बढ कर न्याय का पक्ष लेता है और वह कहता है - ''अगर जुम्मन को खर्च देना मजूर न हो तो हिबहनामा रद समझा जाये दोस्ती, दोस्ती की जगह है मगर धर्म का पालन करना मुख्य है।''[१]

कुछ समय व्यतीत होने पर अलगू चौधरी ने अपना एक बैल समझू सेठ को बेचा। समझू द्वारा बैल से अत्यधिक कार्य लेने पर बैल मर गया। फलत समझू ने बैल का मूल्य देने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि बैल रोगी था। विवाद बढने पर पचायत बुलाई गयी। अलगू और जुम्मन की पुरानी दुश्मनी को देखकर समझू ने जुम्मन को पच चुना। पच का गुरुतर दायित्व पाते ही जुम्मन का हृदय परिवर्तित हो गया। वह अपनी पूर्व शत्रुता को भूलते हुये न्याय व धर्म का पक्ष लेता है और फैसला अलगू के हक मे देता है। कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द मानवीय मूल्यों एव सत्यनिष्ठा की उदात्त विवेचना की है जिसमें विवेकानन्द का प्रभाव देखा जा सकता है।

'सज्जनता का दण्ड'[२] में प्रेमचन्द ने शिव सिह की सज्जनता, सत्यनिष्ठा एव ईमानदारी का प्रेरणास्पद वर्णन किया है। शिवसिह की ईमानदारी से भ्रष्ट लोग त्रस्त थे। इस पर पत्नी ने टोका तो वे बोले - ''ससार जो चाहे कहे पर परमात्मा तो देखता है।'' यहॉ हम शिवसिह की ईश्वरपरायणता तथा सत्य के प्रति दृढ आस्थाभाव में रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की भाव धारा का प्रभाव देखते हैं।

'बलिदान'[३] नामक एक अन्य कहानी मे प्रेमचन्द ने एक गरीब किसान की दीनता व असहायता तथा जमींदार के शोषण एव अत्याचार का जीवन्त चित्रण किया है। मगल

१	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - जून	पृ० ३८९
२	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - मार्च	पृ० १४०
३	वही	वर्ष - १९१८	अक - मई	पृ० २४२

सिह (जमींदार) के शोषण से गिरधारी(कृषक) अन्तत इतना टूट जाता है कि कुँए में कूदकर आत्म हत्या कर लेता है । कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द मानवीय पीडा का कारुणिक वर्णन करते हुए प्रकारान्तर से दया एव सेवा की प्रेरणा देते हैं ।

'पुत्र प्रेम' [१] शीर्षक कहानी में पुत्र के रुग्ण होने पर पिता धन के मोह के कारण पुत्र का समुचित इलाज नहीं कराता है । रोग असाध्य होने के कारण वह इलाज कराना तथा धन व्यय करना अनुचित समझता है । पुत्र की मृत्यु के पश्चात वह अपने इन विचारों पर लज्जित होकर पश्चाताप करता है । कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने मानवता की रक्षा को भौतिकता की रक्षा से श्रेष्ठ सिद्ध किया है ।

विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने इस युग में अनेक सशक्त कहानियों का प्रणयन करके कहानी विधा को एक नयी ऊँचाई प्रदान की । 'रक्षा बधन' [२] कहानी में मॉ -बहन से विछडे पुत्र तथा भाई की कारुणिक कहानी है, जिनका सयोग से अन्त में मिलन हो जाता है । 'बन्ध्या' [३] नामक एक कहानी में 'कौशिक' जी ने स्त्री के सतानहीन होने की पीडा का सजीव चित्रण किया है।

'ताई' [४] कौशिक जी की मानवीय सवेदना, प्रेम एव अपनत्व से परिपूर्ण एक सशक्त कहानी है जिसमें स्वकेन्द्रित जीवन दृष्टि पर चोट करते हुए समष्टि के प्रति प्रेम भाव का प्रकटन किया गया है। श्यामजी दास की पत्नी रामेश्वरी देवी पुत्र न होने से दु खी हैं । श्याम जी अपने छोटे भाई के पुत्र मनोहर से अतिशय प्रेम करते हैं जिससे उनकी पत्नी चिढती हैं । एक दिन मनोहर पतग की लालच में आगन के मुडेर पर लटक जाता है तथा ताई (रामेश्वरी देवी) की ओर बचाने के लिए कारुणिक दृष्टि से देखकर चिल्लाता है । ताई चाहती तो उसे बचा लेती किन्तु प्रेम एव निष्ठुरता में अन्तर्द्वन्द्व के कारण बचाने में विलम्ब होने से मनोहर नीचे गिर जाता है । अपनी इस अमानवीयता पर ताई को गहरा आघात लगता है। इस घटना से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है । अब वह मनोहर को पराया पुत्र न समझ कर अपने हृदय का टुकडा समझने लगी । कहानी के

१	सरस्वती	वर्ष - १९२०	अक - जून	पृ० ३२२
२	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - अक्टूबर	पृ० २१५
३	वही	वर्ष - १९१७	अक - फरवरी	पृ० ६२
४	वही	वर्ष - १९२०	अक - जुलाई	पृ० ३१

माध्यम से लेखक, स्वामी विवेकानन्द के समष्टिवाद एव विश्वप्रेम का अनुमोदन करता दिखता है।

'विधवा'[१] कहानी के माध्यम से विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने दो मित्रों के प्रेम आदर्श एव त्याग का सजीव वर्णन किया है। डाक्टर रघुवीर आदर्शवादी है जिसके हृदय में समाज सेवा के प्रति उच्च विचार है । मित्र इन्दजीत की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी चन्द्रकला द्वारा डा रघुबीर से विवाह करने के आग्रह पर वह मना कर देता है और चन्दकला को समाज सेवा का परामर्श देते हुये जीवन ब्यतीत करने के लिए कहता है - "ससार मे परोपकार से बढकर कोई मार्ग नही है। उसी से हृदय को सच्ची शाति मिल सकती है। मेरा विचार एक अनाथालय खोलने का है।"[२]

कहानी के माध्यम से कौशिक जी ने रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द के मानववाद का अनुकरण किया है, जो चन्द्रकला के इस कथन में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हुआ है - "बडी सुन्दर बात है निस्सदेह इस प्रकार मैं अपना जीवन और भी अधिक शातिपूर्वक विता सकॅगी । मैं तुम्हारे अनाथालय मे आमरण, अनाथों की सेवा करूॅगी ।"[३]

'शाति'[४] नामक कहानी के माध्यम से कौशिक जी ने यह बतलाने की कोशिश की है कि अपने समाजिक दायित्वों एव कर्तब्यों से विमुख होकर शाति की प्राप्ति नहीं की जा सकती। राय रामचन्द्रदत्त धन एव मान सम्मान से परिपूर्ण होने के बाद भी अशात होकर शाति की तलाश में इधर उधर भटक रहे हैं । एक दिन एक भिखारी से मुलाकात होने पर भिखारी उनसे कहता है – "यदि शाति चाहते हो तो तुम्हारे सहस्रों भाई निर्धन हैं उन्हें धनवान बनाने की चेष्टा करो । उनको उद्योग धधे सिखलाओ, विद्यालय पाठशालाएॅ खुलवाओ, अनाथों के लिए अनाथालय, विधवाओं के लिए विधवा आश्रम खुलवाओ । गरीब किसानों को उनके खेती के व्यवसाय में सहायता दो । तुम्हे शाति मिलेगी।"[५] कौशिक जी ने भिखारी के इस कथन के माध्यम से विवेकानन्द की

१	सरस्वती	वर्ष-१९२०	अक-मार्च	पृ० १६५
२	सरस्वती	वर्ष-१९२०	अक-मार्च	पृ० १७०
३	वही	वर्ष-१९२०	अक-मार्च	पृ० १७०
४	वही	वर्ष-१९२०	अक-फरवरी	पृ० ९८
५	वही	वर्ष-१९२०	अक-फरवरी	पृ० १०२

समाजिक भावधारा का निचोड कहलवा दिया है । स्वामी जी उद्योग धन्धों के विकास शिक्षा के प्रसार एव अनाथ असहाय के प्रति जो चिन्तन रखते थे कहानी के माध्यम से लेखक ने उसी चिन्तन को ब्यक्त किया है ।

भिखारी की इन बातों का रामचन्द्रदेव पर गहरा प्रभाव पडा और उनकी जीवन दृष्टि बदल गयी । अब उनका धन व समय अनाथालय व पाठशाला खोलने, में शिक्षा के प्रसार, किसानो की आर्थिक सहायता आदि कार्यो मे व्यय होने लगा । इन कार्यो को करके अब वे परम शाति का अनुभव करने लगे ।

'भ्रम'[१] कहानी के माध्यम से कौशिक जी ने वाह्य एव स्थूल प्रेम की तुलना में आन्तरिक एव सूक्ष्म प्रेम की महत्ता प्रतिपादित की है। पढे लिखे नौजवान का विवाह कुरूप महिला से होने पर वह उससे घृणा करता था। रोगग्रस्त होने पर महिला के त्याग एव सेवाभाव से उसका ह्दय परिवर्तन हो जाता है तब वह समझ पाता है कि प्रेम वाह्य सौन्दर्य में नही अपितु त्याग एव सेवाभाव मे है । विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों का अवलोकन करने के पश्चात हम पाते है कि उनमें रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा का गहरा प्रभाव है ।

बदरीनाथ भट्ट ने अपनी कहानी 'हिन्दी का काम कौन सम्भालेगा' [२] के माध्यम से देश मे ब्याप्त अभाव व बेकारी को दूर करने के लिए कर्म करने की शिक्षा दी है, जो विवेकानन्द के कर्मवाद से प्रभावित है। 'गूगी' [३] कहानी के माध्यम से पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी एक अनाथ असहाय गूगी बालिका का कारुणिक चित्रण करके असहायों के प्रति दया एव सहयोग करने का भाव पैदा करते है जो रामकृष्णदेव एव विवेकानन्द की भावधारा से अनुप्राणित है ।

द्विवेदी - युगीन समग्र कहानियों का अवलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि द्विवेदी युग कहानी विधा का प्रारम्भिक युग होने के कारण शुरुआती कहानियों में न तो कोई सामाजिक सदेश है और न ही रचना विधान की गरिमा । पाठकों का मनोरजन मात्र ही

१	सरस्वती	वर्ष - १९१९	अक - दिसम्बर	पृ० १६५
२	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अक - अप्रैल	पृ० २३६
३	वही	वर्ष - १९१७	अक - अप्रैल	पृ० १९६

नयी दिशा देने का प्रयत्न करते हैं, जो रामकृष्ण - विवेकानन्द की भावधारा से ओत - प्रोत है। यद्यपि जयशकर प्रसाद की पहली कहानी पुस्तक 'छाया (१९१२) आलोच्य युग मे ही प्रकाशित हुयी किन्तु इन कहानियों में ऐतिहासिक एव प्रेमपरक कथानकों की प्रमुखता होने के कारण वर्ण्य विषय मे इनका स्थान नहीं आता।

अन्तत हम कह सकते हैंकि द्विवेदीयुगीन कहानीकारो ने रामकृष्ण एव विवेकानन्द के मानवतावाद, जीवसेवा, अनाथ एव दीन - दु खी के उद्धार, नारी उत्थान, शिक्षा का प्रसार, कृषक मजदूरो का कल्याण, निस्वार्थ सेवा भाव, अधविश्वास एव कुरीतियों का विरोध आदि भावनाओ को अपनी कहानी का वर्ण्य विषय बना कर समाज को प्रगति के पथ पर ले जाने का सार्थक प्रयत्न किया।

(घ) भावधारा का नाटक पर प्रभाव

द्विवेदी युग को नाटक के विकास की दृष्टि से अन्धकार युग कहा जा सकता है। जहॉ भारतेन्दु ने सुरुचिपूर्ण साहित्यिक नाटको के लोकप्रिय बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया था और उनके सहयोगी साहित्यकार नाटक-रचना को साहित्यिक प्रतिभा की कसौटी मानते थे, वहॉ भारतेन्दु के बाद लगभग पच्चीस वर्षो की कालावधि में हिन्दी नाटक साहित्य -ह्रासोन्मुख रहा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद जयशकर प्रसाद के द्वारा पुन नाटक का विकास आरम्भ किया जाता हैं।

द्विवेदी युग के नाटककारों की असफलता के अनेक कारण थे। उस समय भाषा का स्वरूप निश्चित हो रहा था। लेखकों को अनायास ही यशस्वी बन जाने की चाह थी। कहानी, उपन्यास, निबन्ध आलोचना आदि अपेक्षाकृत कम कष्टसाध्य थे। अत अधिकाश लेखको का उस ओर झुक जाना सर्वथा स्वाभाविक था। नाटक अधिक दुस्साध्य था। उस समय महत्वाकाक्षी या यशोभिलाषी नाटकार के लिये यह अनिवार्य था कि वह उपयोगिता तथा कथा की दृष्टि से सुन्दर नाटक लिखे और विभिन्न स्थानों में उसका सफल अभिनय भी किया जाय। अभिनय की आवश्यकता इसलिये थी कि तत्कालीन हिन्दी पाठक समाज ने नाटक को सर्वांश में ही दृश्य काव्य मान रखा था। साधारण कोटि के नाटकों को पढने में उन्हें कोई आनन्द नहीं मिल सकता था। उन्होने नाटक कम्पनियो द्वारा अभिनीत नाटकों को देखने मे ही अधिक मनोरजन समझा। इन कठिनाइयों के कारण श्लाघ्य नाटककार होना अति कष्टसाध्य था और उदीयमान लेखक इतनी कठोर साधना के लिये प्रस्तुत न थे।

इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भॉति कोई भी पथ प्रदर्शक सिद्ध नाटककार नहीं हुआ। युग नायक द्विवेदी जी का प्रभाव उस युग के केवल भाव पक्ष पर ही नहीं अभाव पक्ष पर भी पडा है। उन्होंने, कविता, कहानी, जीवनचरित, निबन्ध, आलोचना आदि विषयों की ओर ध्यान दिया और फलस्वरूप उनके द्वारा शिक्षित, प्रेरित या प्रोत्साहित कवियो तथा लेखकों ने उन विषयो की सुन्दर रचनाऍ की, परन्तु नाटक के क्षेत्र में केवल नाट्यशास्त्र नामक नन्ही सी पुस्तिका लिखने के उपरान्त उन्होंने उसकी ओर फिर कोई ध्यान नहीं दिया। युग के साहित्य नेता की इस उदासीनता के कारण उनके अनुगामी साहित्यकारों ने नाटक रचना को विशेष महत्व नहीं दिया।

सख्या की दृष्टि से आलोच्य काल मे लिखें गये नाटकों की सख्या कम नही है, किन्तु महत्व की दृष्टि से वे नगण्य हैं। इस युग के नाटकों में पौराणिक एव ऐतिहासिक प्रभाव ज्यादा हैं । पौराणिक पात्रों मे 'कृष्ण चरित' एव 'राम-चरित' सम्बन्धी अनेक नाटकों का प्रणयन किया गया 'कृष्ण-चरित' सम्बन्धी नाटको मे राधाचरण गोस्वामी कृत'श्रीदामा' (१९०४), शिवनन्दन सहाय कृत 'सुदामा' (१९०७), बनवारी लाल कृत- 'कृष्ण कथा' व 'कस वध ' (१९०९) , ब्रजनन्दन सहाय कृत 'उद्धव' (१९०९) और नारायण मिश्र कृत, 'कसवध'(१९१०) उल्लेखनीय हैं ।

रामचरित सम्बन्धी नाटकों में राम नारायण मिश्र कृत 'जनक बाडा ' (१९०६), गगा प्रसाद मिश्र कृत, 'रामाभिषेक' (१९१०) गिरधर लाल कृत 'राम-वनयात्रा' (१९१०) नारायण सहाय कृत 'रामलीला'(१९११) और राम गुलाम लाल कृत 'धनुष यज्ञ लीला' (१९१२) महत्वपूर्ण हैं । अन्य पौराणिक पात्रों एव घटनाओं को लेकर लिखे गये नाटकों में महावीर सिह का 'नलदमयन्ती (१९०५), गौरचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (१९०६) सुदर्शनाचार्य का'अनर्ध नल चरित' (१९०६) बॉके बिहारी का 'सावित्री नाटिका' (१९०८) बालकृष्ण भट्ट का 'वेणुसहार'(१९०९), लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (१९१०), जयशकर प्रसाद का 'करुणालय', हरिदास मणिक का 'पाण्डव-प्रहार' (१९१७), बदरीनाथ भट्ट का कुरुवन दहन (१९१५) तथा माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (१९१८) उल्लेखनीय हैं ।

उपर्युक्त नाटको में पौराणिक आख्यानों एव चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने की प्रवृत्ति ही प्रधान है एव इनमें सामाजिक मूल्यों एव समस्याओं की कोई चर्चा नहीं की गयी है, जिससे इन नाटकों का समाज तथा साहित्य में कोई महत्व नहीं है । समस्त पौराणिक नाटक मे बदरी नाथ भट्ट के 'कुरुवन दहन' (१९१५) को थोड़ी सी ख्याति प्राप्त हुयी है। इसमें दुर्योधन की मृत्यु महाभारत के आधार पर दिखाई गयी है । इस नाटक की मूल कथा का प्रारम्भ महाभारत के उद्योग पर्व से होता है । कचुकी भीम को यह सूचित करता हैं कि दुर्योधन की सभा में कृष्ण का सन्धि प्रस्ताव लेकर जाना निष्फल हो गया है । वहॉ से लेकर कौरवों के पूर्ण पराजय तथा दुर्योधन के अन्तिम क्षण की कथा का वर्णन इस नाटक मे किया गया है। नाटक का मूल कथ्य सत्य की असत्य पर विजय हैं ।

द्विवेदी युग का सर्वाधिक सफल एव महत्वपूर्ण नाटक, माखन लाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (१९१८) हैं। इसमे एक आश्रित निरपराधी जीव की प्राण रक्षा के लिये कृष्ण व अर्जुन के मध्य युद्ध का वर्णन किया गया हैं। ऋषि गालव गगा स्नान के बाद सूर्य को जल देने के लिये अजुलि मे जैसे ही जल लेते है, वायु मार्ग से जा रहे गन्धर्व के पान का पीक भूलवश उस जल मे गिर जाता है। ऋषि गालव क्रुद्ध होकर कृष्ण के पास पहुँचते हैं और कहते हैं - " जो राजा प्रजा के दुखों का स्मरण नहीं रखता वह राज्य को नाश की ओर दौडाता है।"[१] इस सूक्त वाक्य के आधार पर वे कृष्ण को सारी कथा सुनाते हैं, जिसे सुनकर वे क्रुद्ध होकर गन्धर्व को एक दिन के अन्दर मृत्युदण्ड देने की घोषणा कर देते हैं। गन्धर्व यह बात सुनकर, अत्यन्त भयभीत होकर नारद के पास जाता है और अपनी भूल के लिये दु ख प्रकट करता है, जिससे नारद उसे बचाने का सकल्प ले लेते है।

विभिन्न घटनाओ के बाद अतत कृष्ण से गन्धर्व को बचाने के लिये अर्जुन उनसे युद्ध करते हैं तथा शकर, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती आदि देवगण अर्जुन का साथ देते हैं। नाटक के माध्यम से कमजोर व दीन दु खी की सहायता का सन्देश दिया गया है जो रामकृष्ण एव विवेकानन्द की सेवा व सहायता की भावना से अनुप्राणित है। इसके साथ इस नाटक में वर्तमान राजनीतिक समस्याओं का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। तत्कालीन भारत की राजनैतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुये कूटनीतिक चालबाजी का वर्णन करते हुये नाटक का पात्र 'यम' 'इन्द्र' से कहता हैं, " देवराज' मैं, सब महत्वाकाक्षी मदाधों को आपस में लडवाता हूँ। आपसी डाह से युद्ध की अग्नि सुलग उठती है और उनका नाश हो जाता है- जैसा कि अभी महाभारत के युद्ध में हुआ"[२] इस कथन के द्वारा लेखक देश में व्याप्त ईर्ष्या व द्वेष का वर्णन करता हैं। यहाँ यह द्रटव्य है कि स्वामी विवेकानन्द देश की अवनति व दुर्दशा का कारण ईर्ष्या व आपसी द्वेषभाव को भी मानते हुये इसे दूर कने के लिये देशवासियों को प्रेरित करते थे। लेखक पर वह प्रभाव देखा जा सकता है।

'दीन-दु खी' व 'पीडित-शोषित' की सहायता करना, रामकृषदेव स्वामी

---

१ माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, स० श्री कान्त वर्मा, भाग १ पृ० २३७

२ वही पृ० २४६

विवेकानन्द मानव का प्रथम कर्तव्य बतलाते हुये इनकी सेवा एव सहयोग के लिये जन मानस को प्रेरित करते रहते थे। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक में लेखक ने 'इन्द्र', 'नारद', 'पार्वती' व 'सरस्वती' के माध्यम से यही भाव व्यक्त किया है। नाटक में नारद, इन्द्र से कहते हैं -, " जो दु खी के दु ख को न बॉटे,ऐसे ह्दय को धिक्कार, आश्रित की रक्षा न करे ऐसे नीचों को धिक्कार, अत्याचारो को दृढ होकर हटा न सके तो क्यो न इन्द्र से होये, उसको गिन कर लाख बार धिक्कार।"[१] दीन दु खी की सेवा एव मानवता से अभिप्रेरित होकर नाटक के पात्र इन्द्र कहते है-"दु खी का दु ख देखकर न पसीजे वह भी कोई ह्दय है ? आश्रितों की रक्षा न कर सके वह भी कोई जीवन है। ?"[२]

अनाथों की पीडा की अनुभूति, एव विधवाओं के ऑसू देखकर जो भाव विह्वलता रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द मे पायी जाती है वही भाव विह्वलता माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के पात्र 'पार्वती' के माध्यम से व्यक्त कर अपने ऊपर रामकृष्ण एव विवेकानन्द की भावधारा के प्रभाव को प्रकट किया है -" अनाथों की पुकार विधवाओं के ऑसू घायलो का कराहना और भू प्रदेशों की दुर्दशा मुझे विह्वल करती है।"[३] रामकृष्णदेव एव विवेकानन्द ने कभी भी किसी धर्म, जाति एव वर्ग आदि का विरोध नही किया और न ही अपने धर्म आदि की सर्वोत्कृष्टता के प्रति गर्वोक्तिपूर्ण दुराग्रह ही रखा। सभी के प्रति निष्पक्ष रूप से समानता के भाव के कारण ही इस सत्य के भाव की अभिव्यक्ति नाटक में 'सरस्वती' के माध्यम से इस तरह हुई है - " पक्षपात, स्वार्थ, जातीयता, गर्व आदि के कारण बडे-बडे विद्वान भी केवल एकागी बातें सिद्ध करने में अपनी शक्ति खर्च किया करते हैं और सत्य पर कुठार चलाते हैं।"[४]

रामकृष्णदेव एव विवेकानन्द के धर्म तथा चरित्र के महत्व को दर्शाते हुए नाटककार सरस्वती के माध्यम से कहता है-" बिना धार्मिक उन्नति के चरित्रबल नही प्राप्त हो सकता और चरित्रबल के अभाव में बडे से बडा विद्वान भी इन विकारों की बलि हो जाता है।"[५]

स्वामी विवेकानन्द दीनों एव निर्बलों में अन्तर्निहित असीम सामर्थ्य एव अदम्य

---

१ माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, स० श्री कान्त वर्मा, भाग १ पृ० २५०
२ वही पृ० २४९
३ वही पृ० २७३
४ वही पृ० २७५
५ वही पृ० २७५

शक्ति को पहचानते थे । वे कहते थे -'' सत्तू खाकर जो शान्तभाव से रात-दिन अपने काम मे लगे हैं, उन्हें यदि भर पेट भोजन मिला तो ये पूरी दुनिया को उलट देंगे ।'' स्वामी विवेकानन्द का यह भाव नाटक में नारद के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त हुआ है- '' बडी सी बडी शक्ति की स्वेच्छारिता को रोकने की समार्थ्य निर्बलों में भी उत्पन्न हो सकती है।''[१]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के सर्वोत्कृष्ट एव लब्धप्रतिष्ठ नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' में रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द की राष्ट्रीय, धार्मिक एव सामाजिक भाव धारा का व्यापक प्रभाव पडा है ।

द्विवेदी युगीन ऐतिहासिक नाटको में गगाप्रसाद गुप्त का 'वीर -जयमल' (१९०३), वृन्दाबन लाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' (१९०९), बद्रीनाथ भट्ट का 'चन्द्रगुप्त'(१९१५), कृष्ण प्रकाश सिह का 'पन्ना' (१९१५), जयशकर प्रसाद का 'राजश्री'(१९१५) आदि उल्लेखनीय हैं । इन नाटको में 'राजश्री' को छोडकर न तो ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण ही हुआ है और न ही इतिहास तत्व की रक्षा ही । इन नाटकों के द्वारा ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से जनता मे राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, न्यायप्रियता एव साहस, पराक्रम जैसे मानवीय गुणों का जनमानस में प्रसार करने का प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक पात्रों द्वारा व्यक्त मानवीय गुणों में रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव को देखा जा सकता है ।

इस युग के सामाजिक उपादानों पर आधृत नाटको में प्रताप नारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा' (१९०२), भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध विवाह' (१९०५), जीवानन्द शर्मा कृत 'भारत-विजय' (१९०६), कृष्णानन्द जोशी कृत 'उन्नति कहॉ से होगी'(१९१५), बदरी नाथ भट् कृत 'चुगी की उम्मीदवारी' (१९१४) और मिश्र बन्धु कृत 'नेत्रोन्मीलन (१९१५) उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामयिक , सामाजिक राजनीतिक जीवन की विकृतियों को उभारने की चेष्टा की गयी है । इन नाटको का लक्ष्य समाज सुधार करना है ।

प्रतापनारायण मिश्र के नाटक 'भारत दुर्दशा' में तत्कालीन समाज में अग्रेजी दासता

---

१ माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, स० श्री कान्त वर्मा, भाग १ पृ० २८०

वकीलो का पेशा कैसा होता है, वादी प्रतिवादी किस प्रकार उनके चगुल में फॅस जाते हैं और अन्त में उनकी क्या दशा होती है, आदि विषयों पर इस नाटक मे अच्छा प्रकाश डाला गया है । झगडे और मार - पीट से अपव्यय, वकीलों और गवाहो की सिफारिश, अधिकारियों की रिश्वत खोरी से परेशान होकर, विजेता और पराजित दोनो पक्ष जब अपव्यय के कारण निर्धन हो जाते हैं , तब उनकी ऑखें खुलती हैं । इस नाटक के माध्यम से प्रछन्न रूप से प्रेम, सामानता एव भाईचारे का सदेश दिया गया है, जो रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द, भाव-धारा का उत्स है ।

बेचन शर्मा 'उग्र' के नाटक 'महात्मा ईशा' (१९१८) में भारत की गौरवपूर्ण सास्कृतिक परम्परा पर प्रकाश डालते हुए उसके महत्व दर्शाया गया है । 'महात्मा ईशा' एक ऐतिहासिक सिद्ध पुरुष हैं और उनकी अहिंसा, विश्व प्रेम, शाति , अतिमानवता, जन-कल्याण आदि भव्य भावनाओ पर भारतीय सस्कृति एव यहॉ के महापुरुषों का प्रभाव, नाटक मे दर्शाया गया है । भारत की विशिष्टता का वर्णन करते हुए ईशा कहते हैं - ''क्या पृथ्वी के अन्य किसी भाग मे ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं ? कदापि नहीं। यहाँ का एक -एक प्राणी देवता है , एक -एक स्थान स्वर्ग है ।''[१]

नाटक के एक अन्य पात्र ' सन्तोष' पाश्चात्य देशो की तुलना में भारत की विशिष्टता का वर्णन करते हुए कहते हैं - ''ईश, यह आर्य भूमि सज्जनता, उदारता, और मित्रता की जननी है । यहॉ के लोग अतिथियों को देवता से भी श्रेष्ठतर मानते हैं । अभी तुम्हारे पश्चिम देश के दूषित वायु का सचार इधर-उधर नहीं हुआ ।''[२]ईशा एव सन्तोष के कथन के आलोक में स्वामी विवेकानन्द के देश -प्रेम, राष्ट्रीय एव सास्कृतिक गौरव, पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय चिन्तन एव विचारो की विशिष्टता का प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है ।

द्विवेदी-युग नाटक की दृष्टि से अन्धकार युग होने के बाद भी इस काल में जो भी पौराणिक, ऐतिहासिक एव सामाजिक नाटकों का प्रणयन किया गया उन पर रामकृष्णदेव एव विवेकानन्द की मानवता, समानता, दीन-दुखी की सेवा, नारी उत्थान, राष्ट्रीय चेतना, सास्कृतिक गौरव आदि का प्रभाव प्रत्यक्षत दृष्टिगोचर होता है ।

---

१ महात्मा ईशा बेचन शर्मा 'उग्र' पृ० ४
२ वही पृ० ६

षष्टम् अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

सामान्यत मनुष्यों में दो तरह के व्यवहार देखे जाते हैं। एक तो पूर्णत ससार में रच-पच कर सासारिक सुखोपभोग की प्राप्ति करने की चेष्टा करता है और दूसरा समाज से दूर, गुफाओं और कन्दराओं मे बैठकर आत्मोत्थान की साधना करता है । जीवन के इन दो धाराओं के बीच कुछ ऐसे सत्पुरुष भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो अपने विशिष्ट जीवन-शैली एव विचारो से, एक नयी तीसरी धारा प्रवाहित करते हैं, जिसमें जनकल्याण में ही स्वकल्याण की भावना निहित होती है।

रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द ऐसे ही सत्पुरुष हैं जो धर्म की ऊँचाइयों पर अवस्थित होने के बाद भी मानव मूल्यों की अवहेलना नहीं करते । जीवन के उस पार के गूढ रहस्यो को तत्व से जान लेने के बाद, ये महापुरुष अपनी प्रबल सवेदनाओं के कारण, वर्तमान जीवन की उपेक्षा नहीं करते। मानवमात्र की पीडा को इन्होंने अपनी पीडा बनाकर जीवन पर्यन्त उसे दूर करने का सतत् प्रयत्न किया।

रामकृष्ण देव ने विभिन्न धर्मों की साधना करने के पश्चात् यह जान लिया कि सभी धर्म तत्वत एक ही हैं। उसके वाह्य क्रिया - कलाप धर्म के मूल तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न रास्ते हैं। समाज में धर्म को जहॉ, विभिन्न पन्थों, मतों एव सम्प्रदायों में विभाजित कर द्वन्द्व का विषय बना दिया गया था, एसे बिखराव के युग में रामकृष्ण देव अपने विचारों के द्वारा सभी धर्मो का समन्वय करते दीखते हैं । रामकृष्ण देव ईश्वर को दूरस्थ किसी लोक का वासी मानने की अपेक्षा प्रत्येक जीव में ही उनका दर्शन करते हैं। इनके अनुसार प्रत्येक जीव ही शिव है। जीव की सेवा ही ईश्वर की पूजा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव जीव की सेवा को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द अपने गुरू की जीव सेवा की भावना से अनुप्राणित होकर जीवनपर्यन्त मानव के कल्याण में निरत रहे। ये धर्म एव वेदान्त का, प्रत्येक जीव के कल्याण से

जोडकर 'नववेदान्त' के रूप मे उसकी नवीन व्याख्या करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने मानव कल्याण की भावना के साथ-- साथ राष्ट्र गौरव और राष्ट्र-उत्थान की भावना को भी पर्याप्त महत्व दिया। इनका मत है कि राजनीतिक चेतना एव स्वतन्त्रता के बिना मानव का हित नहीं हो सकता। मानव मात्र के प्रति किसी भी तरह की परतत्रता और बन्धन का ये विरोध करते हैं। अपनी मातृभूमि के प्रति इनके मन में अतीव प्रेम है।

विदेश प्रवास के समय वे अपने देश का स्मरण कर रोने लगते थे। मूलत सन्यासी होने के कारण इन्होंने राजनैतिक आन्दोलन मे प्रत्यक्ष रूप से भाग तो नहीं लिया परन्तु तद्‌युगीन सभी राजनेता, जो राजनीति को प्रभावित कर रहे थे, इनके कार्यो और विचारों से पूर्णत प्रभावित थे। लोकमान्य तिलक, महात्मा गॉधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, सुभाषचन्द्र बोस आदि अग्रगण्य नेताओ ने स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित होने का, समय-समय पर वर्णन किया है।

स्वामी विवेकानन्द ने तद्‌युगीन समाज में व्याप्त कुरीति, कुप्रथा, अन्धविश्वास एव जडता का विरोध किया। समुद्र यात्रा करके स्वामी जी ने इसके प्रति व्याप्त अन्धविश्वास का विरोध करते हैं। मानव जाति के प्रति, जाति व वर्ण के आधार पर ये किसी भी तरह के भेद - भाव का विरोध करते हैं। जाति का आधार ये जन्मगत् न मानकर कर्मगत् मानते हैं। इनके अनुसार ब्राह्मण सर्वोत्कृष्ट जाति है और सभी को ब्राह्मण बनने का अधिकार है। नारी जाति के प्रति रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द के मन में आदर का भाव था। रामकृष्ण देव समस्त नारी जाति में मातृभाव का दर्शन करते हैं। स्वामी विवेकानन्द नारियों को उनके आदर्श का बार-बार स्मरण कराते हुए कहते हैं कि मत भूलो, तुम सीता, सावित्री और दमयन्ती के देश की नारी हो।

स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र के विकास के लिए आर्थिक प्रगति की महत्ता को भली-भॉति समझते थे। उनका मत है कि रोटी के लिए आर्तनाद करने वाले लोगों को धर्म का उपदेश देना, उनका अपमान करना है। भूँखे को रोटी देना सबसे बडा धर्म है। देश के लिए अन्न पैदा करने वाले किसानों की दयनीय अवस्था के प्रति भी वे लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। स्वामी विवेकानन्द धर्म और अर्थ के समन्वय की बात करते हैं। अर्थ प्रधान पाश्चात्य देशो को वे धर्म की तथा भारत जैसे धर्म प्रधान देश को आर्थिक उन्नति करने की प्रेरणा देते हैं। इस तरह हम देखते हैं

कि रामकृष्ण देव एव विवेकानन्द अपने धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एव आर्थिक विचारो के द्वारा तद्युगीन समाज को नयी दिशा दे रहे थे।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए इन सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से तद्युगीन साहित्य पर भी पडा, जिसका अवलोकन द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में करने पर, रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव सहज रूप से देखा और समझा जा सकता है।

द्विवेदी-युगीन हिन्दी साहित्य को श्रृगारिकता से राष्ट्रीयता, जडता से प्रगति, रूढि से स्वच्छन्दता के द्वार पर ला खडा करने का श्रेय रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द को दिया जा सकता है। द्विवेदी युग से पूर्व कविता के क्षेत्र मे मुख्यत श्रृगार, समस्यापूर्ति, आदि प्रवृत्तियों का ही जोर था। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होते हवा बदलने लगी। परिविर्तित जन-रुचि को श्रृगार का पृष्टपेषण बेस्वाद प्रतीत होने लगी। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शकर', मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचरित उपाध्याय, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' और रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने धार्मिक तथा राष्ट्रीय चेतना से युक्त अनेक कविताओं के माध्यम से ईश्वर - भक्ति, समर्पण एव ईश्वर के लिये व्याकुलता जैसी भावना को सुन्दर ढग से व्यक्त किया है। विवेकानन्द के दर्शन एव नववेदान्त को भी द्विवेदी-युगीन कविताओ में देखा जा सकता है। राम नरेश त्रिपाठी की कविता— 'अन्वेषण' में विवेकानन्द का नववेदान्त सुन्दर ढग से व्यक्त किया गया है—

"मैं ढूढता तुझे था, जब कुज और वन में,
तू खोजता मुझे था, जब दीन के वतन में।
तू आह बन किसी की, मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता, सगीत में भजन में।।"

त्रिपाठी जी की इस भावना को 'राम कहॉ मिलेंगे' कविता में भी देखा जा सकता है—

"ना मन्दिर में ना मस्जिद मे,
ना गिरजे के आस-पास में।
खोज ले कोई राम मिलेगे,
दीन-जनों की भूँख प्यास में।।"

द्विवेदी युग के कवियों ने विवेकानन्द की राष्ट्रीय भावधारा से अनुप्राणित होकर देश-भक्ति, राष्ट्रप्रेम, अतीत गौरव, स्वतन्त्रता की इच्छा आदि विषयों पर अनेक कवितायें लिखी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' मे अपने राष्ट्रीय चिन्तन को सुन्दर ढग से व्यक्त किया है। महाबीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शर्मा, 'शकर', श्रीधर पाठक आदि ने राष्ट्रीय भावना से युक्त होकर अनेक कविताओं का प्रणयन किया।

स्वामी विवकानन्द की समाज सुधार की भावना व इसमें व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा को इस युग के कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। जातिप्रथा व वर्णभेद, छुआ-छूत, बाल - विवाह का निषेध तथा शिक्षा का प्रसार, नारी उत्थान, मानवतावाद एव सेवाभाव के सम्बन्ध में जो विचार स्वामी विवेकानन्द व उनके गुरू रामकृष्ण देव का था, उन्हीं विचारों को महाबीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा, राम नरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिह उपाध्याय आदि कवियों की कविताओं में सहज ही देखा जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के आर्थिक चिन्तन को भी द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाया है। मैथिली शरण गुप्त की 'भारत-भारती' व अन्य कवियों की कविताओं में स्वामी जी का आर्थिक चिन्तन व्यक्त हुआ है।

द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य की गद्य विधा में भी रामकृष्णदेव एव स्वामी विवेकानन्द का प्रत्यक्ष एव परोक्ष दोनों रूपों में व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस युग के निबन्धकारों ने रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द पर प्रत्यक्ष रूप से अनके लेख लिखे। महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में रामकृष्ण देव के जीवन की विशिष्टता दर्शाते हुये 'महात्मा रामकृष्ण' नाम से लेख लिखा। माधव मिश्र ने 'माधव मिश्र निबन्धमाला' में— 'परमहस श्री रामकृष्णदेव जी का जीवन चरित' नाम से निबन्ध लिखकर उनके जीवन की विशिष्टता पर प्रकाश डाला है। युग के सशक्त गद्यकार प्रेमचन्द ने अपने निबन्ध सग्रह— 'कलम, तलवार और त्याग' में 'स्वामी विवेकानन्द' नाम से लेख लिखकर विवेकानन्द के विचारों को सुन्दर ढग से व्यक्त किया हैं। अध्यापक पूर्ण सिह ने अपने निबन्ध 'पवित्रता' में 'रामकृष्ण देव' के जीवन की पवित्रता का वर्णन किया है। इस युग के निबन्धों में उक्त दोनों महापुरुषों के प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ-साथ इनके

विचारों का वर्णन सहज ही सर्वत्र देखा जा सकता है।

इस युग के उपन्यासों में विवेकानन्द की राष्ट्रीय एव सामाजिक भावधारा का प्रभाव व्यापक रूप से पडा। मेहता लज्जा राम शर्मा के उपन्यास—'आदर्श हिन्दू', 'आदर्श दम्पति' एव 'आदर्श गृहस्थ' में विवेकानन्द के सामाजिक भावना का प्रकटन जगह-जगह पर किया गया हैं। अयोध्या सिह उपाध्याय के उपन्यास 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' व 'अधखिला फूल' में जाति व्यवस्था की सकीर्णता, मानवता की सेवा, परोपकार, शिक्षा का महत्व, नारी उत्थान आदि विषयों का वर्णन किया गया है, जो रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द की भावधारा से प्रभावित है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवा-सदन' में सामाजिक कुरीतियों एव नारी के प्रति सामाजिक चिन्तन को प्रमुखता से व्यक्त किया गया है। उपन्यास के पात्र विवेकानन्द से प्रभावित है, जो समाज के कल्याण के लिये रात-दिन तत्परता से लगे रहते हुये अपने सुख - दु ख की चिन्ता को भूल गये हैं।

द्विवेदी युग के कहानीकार— चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', ज्वालादत्त शर्मा, प्रेमचन्त्त शर्मा, प्रेमचन्द, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी आदि ने रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय एव सामाजिक चिन्तन को अपनी कहानी के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 'उसने कहा था' के माध्यम से मानवीय सवेदना का चरम उद्घाटन किया है। कहॉनी का नायक लहना सिह दूसरे के लिये अपना प्राण उत्सर्ग कर देता है। प्रेमचन्द की कहानियों 'ईश्वरीय न्याय', 'पच परमेश्वर', 'बलिदान', आदि में मानवता का उदात्त वर्णन किया गया है। कौशिक की कहानी 'ताई' व 'विधवा' में मानव मन की कमजोरी व उसे दूर करने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है। 'शान्ति' नामक कहानी में कौशिक जी 'शान्ति' पाने के लिये निर्धनो की सेवा तथा सहायता, विधवाओं व अनाथों का सहारा बनने आदि ऐसे कार्यों को करने का उल्लेख करते हैं, जो विवेकानन्द की भावधारा से पूर्णत प्रभावित हैं।

नाटक के विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग को अन्धकार युग कहा जाता है, परन्तु इस युग मे सामाजिक भावभूमि पर जो भी नाटक लिखे गये, उन पर रामकृष्ण देव एव स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस युग के सबसे उल्लेखनीय नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' (माखनलाल चतुर्वेदी) में न्याय, सेवा एव दीन - दु खी की सहायता की भावना से उक्त

महापुरुषो की सामाजिक भावधारा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। 'भारत-दुर्दशा', 'नेत्रोन्मीलन', 'चुगी की उम्मीदवारी', 'उन्नति कहाँ से होगी' आदि नाटकों में स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय एव सामाजिक चिन्तन के प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है।

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के काव्य एव गद्य पर रामकृष्णदेव एव स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एव आर्थिक भावधारा का व्यापक प्रभाव पडा। इस युग के कवियों व लेखकों ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रुप से इन दोनों महापुरुषों की भावधारा को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने का सार्थक प्रयत्न किया है।

---

१ युगनायक विवेकानन्द - ३
२ विवेक ज्योति, वर्ष - ३१,अक - ३

परिशिष्ट

परिशिष्ट

क रामकृष्णदेव व स्वामी विवेकानन्द साहित्य

- रामकृष्ण लीलामृत (दो भाग) - प्रथम सस्करण
- विवेकानन्द साहित्य (दस भाग) - तृतीय सस्करण १९९३
  प्रकाशक—स्वामी मुमुक्षानन्द, अध्यक्ष - अद्वैत आश्रम, पिथौरागढ, हिमालय
- युगनायक-विवेकानन्द (तीन भाग) - तृतीय सस्करण
  लेखक-स्वामी ब्रह्मस्थानन्द अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तौली, नागपुर
- विवेकानन्द- चरित - प्रथम सस्करण
  लेखक- सत्येन्द्र नाथ मजूमदार
- स्वामी विवेकानन्द ग्रन्थमाला (भाग-६) प्रथम सस्करण
- शिक्षा, सस्कृति व समाज प्रथम सस्करण
- योद्धा सन्यासी विवेकानन्द प्रथम सस्करण
  लेखक हसराज रहबर
- श्रीरामकृष्ण सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश चतुर्थ सस्करण
  लेखक- स्वामी अपूर्वानद
  प्रकाशक- स्वामी व्योमरुपानन्द
  अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, घतोली, नागपुर
- स्वामी विवेकानन्द सक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश द्वादश सस्करण
  लेखक- स्वामी अपूर्वानन्द
  प्रकाशक- स्वामी ब्रह्मस्थानन्द
  अध्यध, रामकृष्णमठ, धतोली, नागपुर

(ख) द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य

- हिन्दी साहित्य का इतिहास -डा० नागेन्द्र — द्वितीय सस्करण
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग- डा० उदय भानु सिह — प्रथम सस्करण
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- डा० राम विलास शर्मा प्रथम सस्करण
- द्विवेदी काव्यमाला - महावीर प्रसाद द्विवेदी - — प्रथम सस्करण
- सम्पति शास्त्र - महावीर प्रसाद द्विवेदी - — प्रथम सस्करण
- लेखाजलि — महावीर प्रसाद द्विवेदी - — प्रथम सस्करण
- शकर सर्वस्व — नाथूराम शर्मा 'शकर' — प्रथम सस्करण
- द्विवेदी युगीन काव्य - पूनम चन्द्र तिवारी — प्रथम सस्करण
- भारत-भारती- मैथिलीशरण गुप्त — छत्तीसवॉ सस्करण
- जय भारत - मैथिलीशरण गुप्त — प्रथम सस्करण
- जयद्रथ वध - मैथिलीशरण गुप्त — प्रथम सस्करण
- मानसी - रामनरेश त्रिपाठी — प्रथम सस्करण
- पथिक- रामनरेश त्रिपाठी — प्रथम सस्करण
- मिलन- रामनरेश त्रिपाठी — प्रथम सस्करण
- वायस विजय - नाथूराम शर्मा 'शकर' — प्रथम सस्करण
- भारत-गीत- श्रीधर पाठक — द्वितीय सस्करण
- भारत दुर्दशा- श्रीधर पाठक — प्रथम सस्करण
- चुभते - चौपदे- अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रथम सस्करण
- ठेठ हिन्दी का ठाठ- अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रथम सस्करण
- अधखिला फूल- अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रथम सस्करण
- स्वदेशी कुण्डल- राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' — प्रथम सस्करण
- 'देवदूत' - रामचरित उपाध्याय — प्रथम सस्करण
- देवसभा- रामचरित उपाध्याय — प्रथम सस्करण
- कृषक-क्रन्दन- गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' — द्वितीय सस्करण
- आर्द्रा - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम सस्करण
- करुणा-कादम्बिनी - गया पसाद शुक्ल 'सनेही' — द्वितीय सस्करण
- मौर्य्य विजय - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम सस्करण
- आत्मोत्सर्ग - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम सस्करण
- नोआखाली - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम सस्करण
- जगत् सच्चाई सार - श्रीधर पाठक — प्रथम सस्करण
- प्रिय - प्रवास - अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' — द्वितीय सस्करण
- साकेत - मैथिलीशरण गुप्त — चतुर्थ सस्करण

- माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली (दस भाग) — प्रथम सस्करण
  सम्पादक - श्री कान्त वर्मा
- सरदार पूर्ण सिह 'अध्यापक' के निबन्ध — प्रथम सस्करण
  सम्पादक - प्रभात शास्त्री
- माधव मिश्र निबन्ध माला - माधव मिश्र — प्रथम सस्करण
- गुलेरी रचनावली (दो भाग) — प्रथम सस्करण
  सम्पादक - डा० मनोहर लाल
- द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य - गगा बख्श सिह — प्रथम सस्करण
- कथा चक्र - पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी — प्रथम सस्करण
- हिन्दी उपन्यास का इतिहास - डा० गोपाल राय — प्रथम सस्करण
- हिन्दी नाटक - बच्चन सिह — द्वितीय सस्करण
- हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - दशरथ ओझा — द्वितीय सस्करण
- कलम, तलवार और त्याग - प्रेम चन्द — प्रथम सस्करण
- सस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिह 'दिनकर' — पचम सस्करण

(ग) पत्र – पत्रिका

- विवेक - ज्योति — रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म० प्र०)
  सम्पादक - स्वामी विदेहात्मा नन्द

- सरस्वती — इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद (उ० प्र०)
  सम्पादक - महावीर प्रसाद द्विवेदी

- प्रभा — खण्डवा (म० प्र०)
  सम्पादक - कालूराम गगराडे

- समालोचक — जयपुर (राजस्थान)
  सम्पादक - चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

- इन्दु — काशी (उ० प्र०)
  सम्पादक - अम्बिका दत्त ब्यास

- मर्यादा — प्रयाग (उ० प्र०)
  सम्पादक - कृष्णकान्त मालवीय